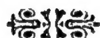
प्रकाशक
पो० कंठमणि शास्त्री 'विशारद'
संचालक
विद्याविभाग काँकरोली

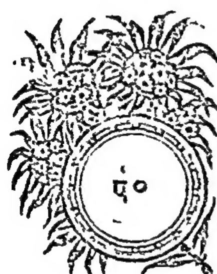


मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

कविवर पं० कुमारमणि शास्त्री

(जीवनी और उनके ग्रन्थ)

जन्म



कुमारमणि शास्त्री के पिता का नाम शास्त्री हरिवल्लभ भट्ट था। यह श्रीवत्सगोत्री पंचप्रवरान्वित ऋग्वेदी शाकल-शाखाध्यायी तैलंग ब्राह्मण थे। इनका 'पोतकृन्ति' उपाह्व था। कुमारमणि ने अपने वंश का परिचय इस प्रकार दिया है—

"माधव पण्डितराजं रुद्रगण-शिष्टं मनीषि वल्लभद्रम्।
मधुसूदन कवि पण्डित मुख्यान्प्रणमामि पूर्वभवान्॥
हरिवंशजं, चतुर्भुज—पौत्रं, बुधरुद्रगणस्य नप्तारम्।
श्रीमत्पितामहमहं कण्ठमणिं नौमि महितगुणम्॥
पितुरग्र्यं सहपित्रा नत्वा निरवद्यविद्यवेदमणिम्।
विरचयति सूक्तिसंग्रह मान्ध्रकुलीनः कुमारमणिः॥

इनके पिता पं० हरिवल्लभ शास्त्री माधव पण्डितराज के

---

* अप्रकाशित 'रसिक रंजन' सप्तशती।

वंशज, प० कण्ठमणि शास्त्री के द्वितीय पुत्र थे। यह हरिवल्लभजी प्रसिद्ध पौराणिक, धर्मशास्त्रज्ञ तथा हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं†। इनके पूवपुरुष दक्षिण-भारत से १४ से १५वीं शताब्दी के बीच में आकर उत्तर-भारत मध्यप्रान्त में बस गए थे।

कुमारमणि कवि का जन्म सं० १७२० से ८५ के भीतर मानना चाहिये। यद्यपि 'शिवसिंह सरोज' के आधार पर मिश्रबंधु विनोद के प्रथम संस्करण म इनको दास-काल (सं० १७६१ से १८१०) का कवि माना गया था, पर वह मेरे संशोधन उपस्थित करने पर द्वितीय संस्करण में सुधार दिया गया है। उक्तजन्म संवत् मानने में इनकी ग्रन्थ-रचना का काल ही मुख्य है, जो कवि की प्रौढावस्था का द्योतक है। कवि के रचित 'रसिक-रञ्जन' तथा 'रसिक रसाल' की रचना क्रमशः सं० १७६५ और १७७६ में पूर्ण हुई है। प्रस्तुत विषय में ग्रन्थकार यह लिखते हैं—

"कथिता 'कुमार' कविना प्रथिता रसिकानुरञ्जने प्रथिता।
सप्तशती शरषण्मुखमुखसिंधुविधिश्रिते (१७६५) राधे॥" र० र०
रससागररवितुरगविधु (१७७६) सम्वत मधुर बसन्त।
विकस्यौ "रसिक रसाल" लखि हुलसत सुहृद व सन्त॥" र० र०

कवि का उक्त ज० स० मानने में दूसरा कारण कम से कम सं० १७७९ तक उनकी उपस्थिति भी है। कवि का स्वहस्त लिखित 'किरणावलि' नामक ग्रंथ प्राप्त होता है, जो उक्त

† देखो—"आन्ध्रजातीय हिन्दी कवि" नामक शीघ्र प्रकाशित होनेवाला ग्रन्थ

सं० में लिखा गया है। उक्त आधारों से यह निःसंदिग्ध हो जाता है कि—कवि कुमारमणि का जन्म सं० १७२० से २५ के भीतर हुआ है।

अध्ययन और पांडित्य

पं० कुमारमणि का शास्त्राध्ययन वाजपेयी उपनामक भारद्वाजगोत्री मंडन कवि के तृतीय पुत्र पं० पुरुषोत्तम जी के पास हुआ था। 'रसिक रंजन' में कवि ने अपने गुरु का स्मरण इस प्रकार किया है—

"मण्डन-तनूजमनुजं जयगोविदस्य, वन्द्य गुणवृन्दम्।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तममिव गुरु पुरुषोत्तमं वन्दे॥"

'रसिक रसाल' में कवि ने इसी विषय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"सुर-गुरुसम मंडन-तनय बुध जयगोविंद ध्याइ।
कवित-रीति गुरु-पद परसि अरु पुरुषोत्तम पाइ॥"

उक्त दोनों पद्यों के आलोचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि—कवि कुमारमणि के हिंदी-भाषा-शास्त्र के पं० जयगोविंद वाजपेयी और संस्कृत-साहित्य के गुरु उनके लघु भ्राता पं० पुरुषोत्तम वाजपेयी थे। कवि मंडनजी तथा उनके उक्त दोनों पुत्र हिंदी एवं संस्कृत-साहित्य के प्रकाण्ड पंडित और कवि हुए हैं *।

---

* देखो:—"आन्ध्रजातीय हिंदी काव' नामक शीघ्र प्रकाशित होनेवाला ग्रन्थ।

'रसिक रसाल' एवं 'रसिकरंजन' के परिशीलन से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि—कुमारमणि का पाण्डित्य दोनों भाषाओं में समान रूप से प्रकाशमान था। उनके स्वार्थ स्वहस्त-लिखित आकरग्रंथों से उनके अन्य शास्त्रीय प्रकाण्ड वैदुष्य का भी परिचय मिलता है। पौराणिक वृत्ति इनकी वंशपरंपरागत थी, अतः तद्विषयक विद्वत्ता में सन्देह तो हो ही नहीं सकता। कहने का तात्पर्य यह कि—कवि कुमारमणि की प्रतिभा जिस प्रकार काव्य में आबाध रूप से धावमान होती थी, उसी प्रकार वह अन्यविषयक शास्त्रों में भी कुण्ठित न थी। दोनों भाषाओं के पाण्डित्य से तो उन पर 'सोना सुगन्ध' ही कहावत चरितार्थ होती है। हिन्दी-भाषा-विषयक साहित्य के रीति-ग्रन्थ-निर्माण से हम उन्हें भाषा का आचार्य कह सकते हैं। जिस पद पर अभी तक हिंदी-साहित्य ने उन्हें समासीन नहीं किया है। इसका एकमात्र कारण उनके ग्रन्थ 'रसिक रसाल' का प्रचारा-भाव ही कहा जा सकता है। पर वह दिन दूर नहीं है, जब इस ग्रन्थ के प्रकाशित होते ही कवि को उक्त पद साहित्य-जगत द्वारा सहर्ष प्रदान किया जायगा।

परिवार

कवि कुमारमणि के लघु भ्राता का नाम 'वासुदेव' था उनके नाम का स्मरण उन्होंने 'रसिकरंजन' में किया है।

यह वासुदेव भट्ट अच्छे पौराणिक एवं साहित्यज्ञ होने के साथ ही साथ कवि भी थे। *

वासुदेव भट्ट का स्वर्गवास अल्प वय में ही हो गया था जिसके मर्मान्तक शोक से सन्तप्त कुमारमणि की लेखनी अपना उद्गार इस प्रकार प्रकाशित करने को बाध्य हुई थी—

हा! विनयशील शालिन् शीलितशास्त्रार्थ, गण्यसामर्थ्य!
भ्रातर्जातः किमु मां प्रविहाय विहायसः पथिकः। र० र० ५८०
काव्यसखे! पदवाक्यप्रमाणपरिहीन दीन निखिलगते।
विकलमिव भवसि लोके शोके नव वासुदेवस्य॥ र० र० ५८१

उक्त दोनों आर्याओं का भाव सहृदय पाठकों के कोमल हृदय पर सीधी ठेस पहुँचाता हुआ कवि की वियोग-जन्य व्यथा का निदर्शन कराता है। उक्त वासुदेव कवि की निर्मित एक 'सप्तशती' थी, जिसके उदाहरण देकर कुमारमणि ने "अनुजसप्तशत्याः" इस पद से उसका स्मरण किया है। कवि ने 'रसिकरसाल' में भी एक स्थान पर अपने भ्रातृ-वियोग का उल्लेख किया है—

मन सदा मिलि कीन्हौ निवास,
'कुमार' विलास हुलास घनेरो;
संग मिले निसिवासर ध्यान,
न आन गन्यो सुख दुःख निवेरो।

* देखो—'आन्ध्रजातीय' हिन्दी कवि नामक ग्रन्थ।

भाई चले, परलोक तुम्हें,
नहिं दीरन भौ हिय मेरो करेरौ ;
जानि घनौ अपमान मनौं,
दृग मूंदि न देखत आन मेरौ ॥ ८ । ६२

उक्त सवैया में कवि को हार्दिक भ्रातृ-वियोग का शोक उच्छलित हो रहा है। उत्प्रेक्षालंकार के साथ कवि ने क्या ही अच्छे ढंग से इस वियोग को परिदर्शित किया है! उक्त दोनों आर्या तथा सवैया से यह विदित होता है कि कुमारमणि का अपने अनुज पर कितना सहज स्नेह था। इसके साथ यह भी विज्ञात होता है कि कवि के अनुज वासुदेव साधारण व्यक्ति नहीं, प्रत्युत शास्त्र के कृतश्रम विद्वान् थे। आर्याओं के विशेषण इस कथन की पुष्टि के लिये पर्याप्त हैं।

इन्हीं वासुदेव अनुज के स्वर्गवास हो जाने पर कवि कुमारमणि ने 'रसिकरंजन' का संग्रह किया है, जो उनकी स्मृति के अर्थ किया गया विज्ञात होता है। इस विषय में ग्रन्थकार की एक आर्या इस प्रकार है —

अनुजन्मवासुदेवाभिधबुधतोपाय विविधिरसपोषम्।
मरसार्यासूक्तिमयं 'रसिक-मनोरंजनं' कुर्मः ॥ २० रं०

इसी सूक्ति-संग्रह से 'कुमारमणि' तथा 'वासुदेव' कवि की स्वतंत्र आर्या सप्तशतियों के साथ 'मधुसूदन-सप्तशती' तथा अन्य कवियों की स्वतंत्र आर्याओं का भी हमें पता लगता

है इस ग्रंथ में उल्लिखित २-३ कवियों को छोड़ शेष का तो नाम भी साहित्य-संसार में प्रकट नहीं हुआ है। प्रस्तुत संग्रह से हमें बहुत कुछ साहित्य का परिज्ञान हुआ है, जो कालवश या तो लुप्त हो गया है, अथवा किसी निभृत-कोण में छुपा हुआ पड़ा है।

प० कुमारमणि को अपने लघु भ्राता के वियोग के समान अपनी धर्मपत्नी का वियोग भी सहना पड़ा था, जो रसिक-रंजन की निम्नलिखित आर्याओं से ज्ञात होता है—

अयि गेहैकान्तपात्र ! नव्यदशे ! सुमुखि ! संवृतस्नेहे !
मद्गेह दीपकलिके ! कथमुपयातासि निर्वाणम् ॥ र-रं २८२
त्वां हरता हतविधिना हृदयं मे व्यरचि शैलसारमयम्।
गृहिणि ! वदेति च गृहशुकरागवज्रणापि तदभेदि ॥ २७६

प्रथम आर्या यद्यपि 'लीलावतीकार' की है, तथापि प्रकरण-वश द्वितीय आर्या के साथ उसका सामञ्जस्य बैठाते हुए कहना पड़ता है कि—कवि कुमारमणि ने अपने पत्नी-वियोग को लक्ष्य कर ही ऐसा लिखा है। द्वितीय आर्या तो स्वयं ग्रंथ-कर्ता की ही है। अतः तद्विषय में कोई सन्दिग्ध प्रसंग नहीं रह जाता। कवि की धर्मपत्नी किस गोत्र की थीं, कुछ पता नहीं चला है।

प्रथम पत्नी के दिवंगत हो जाने पर कुमारमणि ने अपना द्वितीय विवाह किया या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता।

कवि के भोजराज और कृष्णदेव नामक दो पुत्र हुए। उक्त

दोनो पुत्रों का जन्म सं० १७६०-६५ के लगभग निर्धारित होता है। ॐ

कुमारमणि ने अपने 'रसिकरंजन' में 'मातुल जनार्दन' की आर्याओं का संग्रह किया है जिससे कहना पडेगा कि उनके तन्नामधेय एक मामा थे। उत्तर-भारतीय आन्ध्र - जाति में तत्कालीन जनार्दन नामक दो कवि हुए है जिनमें एक पद्माकर के पितामह जनार्दन, तथा दूसरे गोस्वामी जनार्दन (बीकानेर) थे। इनका जन्म-समय १७१८-२० के लगभग निर्धारित किया गया है। *

उक्त कवि के क्षेमनिधि नामक शिष्य थे, जो पद्माकर के पितृव्य एवं मोहन भट्ट के लघु भ्राता थे। इन्होंने स्वहस्त-लिखित ग्रंथ में प्रस्तुत प्रकरण इस प्रकार लिखा है —

"इति श्रीसंक्षेपभागवतामृते श्रीकृष्णचैतन्यचरिते श्री-कृष्णामृतं नाम पूर्वखण्डं समाप्तम्। सं० १८८० आषाढ शुक्लाष्टम्यां बुधवासरे। श्रीमद्गुरुकुमारमणि-लिखितानुसारेण क्षेमनिधिना लिखितम्।

पौषे वलक्षपक्षे पक्षतिभृगुवासरेऽलेखि
नेत्राङ्कसिन्धुसिन्धुज (१८४२) वर्षे ... . प्रभोः प्रीत्यै ॥

क्षेमनिधि के शिष्य होने से यह भी अनुमान होता है कि उनके बड़े भ्राता मोहनभट्ट (पद्माकर के पिता) भी कुमार-मणि के समीप अध्ययन करते रहे हों।

* देखो—'आन्ध्रजातीय हिंदी कवि' नामक पुस्तक।

राज्याश्रय

यह हम पहले कह चुके हैं कि—कुमारमणि का सर्वव्यापी पाण्डित्य था, यह जिस प्रकार काव्य-कला के मर्मज्ञ एवं सिद्ध-हस्त कवि थे, उसी प्रकार संस्कृत के प्रत्येक विषय के शास्त्रों में भी इनकी अबाध गति थी। पौराणिक वृत्ति इनकी वंश-परंपरागत थी। अतः यत्र तत्र इनके परिभ्रमण करते रहने में कोई सन्देह नहीं है। इसी प्रसंग तथा अपने काव्य-चमत्कार के कारण इनका अनेक राज्यों में आवागमन और सम्मान होता रहा होगा। मेरे स्व० पितृव्य श्रीकृष्णशास्त्रीजी द्वारा मुझे यह ज्ञात हुआ था कि कुमारमणि को 'झारखंड' में सम्मान से कुछ भूमि प्राप्त हुई थी, जो आगे चलकर वंशजों की उपेक्षा तथा राज्य-क्रान्ति के कारण हस्तान्तरित हो गई।

कुमारमणि ने 'रसिकरसाल' में कईवार 'रामनरेंद्र' का गुण गाया है। तद्विषयक कुछ पद्य इस प्रकार हैं—

'रामनरपाल को निहारि रन ख्याल रूगा—
 खुलैं विकराल दिगपाल कलकात हैं॥'

''रामनरिंद की फौज पयान०'' ''रामजू की उसलता०''

''रामनरिंद तिहारे पयान०'' इत्यादि

इससे अवगत होता है कि किसी 'राम' नामधारी नरेश के यह आश्रित थे, अथवा उसके यहाँ इन्हें सम्मान प्राप्त होता रहता था। संभव है 'रसिक रसाल' उन्हीं 'राम' नामधारी

नरेन्द्र की आज्ञा से बनाया गया हो, पर प्रारंभ में इसका कुछ संकेत न होने से इसे सत्य नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

यहाँ प्रस्तुत 'रामनरेंद्र' के विषय में कुछ विचार कर लेना असङ्गत न होगा। निम्न-लिखित ग्रन्थकारों ने इस पर जो प्रकाश डाला है, वह इस प्रकार है—

(१) मिश्रबंधु-विनोद (पत्र ५६८) में नं० ६७२ पर 'राम राय'-नामक कवि का परिचय लिखा है, जिसका कविता-काल सं० १७६० लिखा है, साथ में यह भी लिखा है कि यह कहीं के राजा थे।

(२) हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (ना० प्र० सभा) प्रथम भाग में (पत्र २५) कुमारमणि का जन्म संवत् १८०३ तथा स्थान गोकुल, एव वल्लभ भट्ट का पुत्र और दतिया-नरेश का आश्रित लिखा है। इसमें उक्त सं० १८०३ ग़लत है, और वल्लभ भट्ट के स्थान पर हरिवल्लभ चाहिये। दतिया-नरेश के आश्रय का उल्लेख होने से संभव है रामराय, रामसिंह नामक कोई तत्कालीन वहाँ के राजा हुए हों।

(३) नं० २ की पुस्तक (पत्र ३?) में एक खण्डन कवि का परिचय दिया गया है, जिसका सं० १७८१—१८१६ के लगभग माना है, और उन्हें राजा रामचंद्र दतिया-नरेश के समकालीन बतलाया है।

उपस्थित उद्धरणों से यह निश्चित होता है कि कवि कुमार-मणि के समकालीन, हिन्दी-काव्य के प्रश्रयदाता ही नहीं

प्रत्युत स्वयं कवि रामराय अथवा रामचंद्र, किंवा रामसिंह नामक दतिया के राजा थे, संभवतः यही कवि कुमारमणि के आश्रयदाता रहे हों। दतिया राज्य के आश्रय की पुष्टि इस से और भी अधिक होती है कि– सम्प्रति भी कवि कुमारमणि के वंशज, इस लेखक के पितृचरण पूज्य बालकृष्ण शास्त्रीजी को भी दतिया से राजगुरु का सम्मान प्राप्त है। इसी प्रकार पूर्व में भी (सन् १८५७ के ग़दर के समय) वान पुर के उजड़ जाने पर कुमारमणि के वंशज पं० बिहारीलाल शास्त्रीजी * कवि भी दतिया में आकर बसे थे, और उन्हें राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। संभव है, वंशपरम्परा द्वारा इस राज-गुरु के सम्बन्ध और आश्रय को प्रचलित कराने का श्रेय पं० कुमारमणि को हो। अस्तु यह निःसन्दिग्ध है कि कवि कुमारमणि रामनरेंद्र के द्वारा सम्मानित हुए थे, अथवा वह उनके आश्रित होकर रहे हों। कुमारमणि के पूर्वपुरुषों को सागर जिले में धर्मसी, केनरा आदि ग्राम जयसिंहदेव राजा द्वारा प्रदान किये गये थे। जिनमेंसे प्रथम ग्राम अब भी उनके वंशजों के पास माफीरूप में है। सागर जिला और बुन्देलखंड ये दोनो परस्पर संयुक्त हैं—अतः स्थायी निवास-स्थान सागर जिले का गढ़-पहरा ग्राम होने पर भी कवि कुमारमणि का आवागमन बुन्देलखंड में चालू रहा होगा, और इसी कारण उन्हें वहाँ की रियासतों में राज्य-सन्मान समय-समय पर प्राप्त होता होगा।

* देखो—'आन्ध्रजातीय हिन्दी कवि'

इसी प्रसंग में दतिया रियासत में उनकी आवभगत हुई हो, और वहाँ के काव्य-कला-प्रेमी रामनरेंद्र ने उन्हें सम्मानित किया हो, और इसी लिये कवि ने इस सम्मान-गौरव से प्रभावित होकर यत्र-तत्र उदाहरणों में उनके यश का वर्णन किया होगा।

इसके अतिरिक्त कुमारमणि को अन्यत्र कहाँ-कहाँ राज्य-सम्मान प्राप्त हुआ, हम कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि तद्विषयक कोई प्रमाण उपस्थित नहीं होता। हाँ, स्वर्गवासी मेरे पितृव्यचरण पं० श्रीकृष्ण शास्त्रीजी के द्वारा मुझे ज्ञात हुआ था कि कविवर कुमारमणि को 'झारखंड' में कुछ भूमि प्राप्त हुई थी। इस 'झारखंड' का नामोल्लेख रसिक रसाल में भी एक स्थल पर हुआ है।

कुछ भी हो, पं० कुमारमणिशास्त्री कुछ तो अपनी पौराणिक आजीविका से, कुछ अपने पाण्डित्य से एवं कुछ अपनी वंशपरम्परा, प्राप्त भूमि की आजीविका से अपना योगक्षेम चलाने में परमुखापेक्षी नहीं थे, इस कारण यदि उन्हें किसी नृपति-विशेष के आश्रय की आवश्यकता न भी हुई हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। उन्होंने अपना काव्यमय जीवन बनाया था, और उसी की स्थायी स्थापना कर वह अपने नश्वर देह को छोड़ते हुए भी अजर अमर बन गये थे। वास्तव में एक संस्कृत-श्लोक के अनुसार कवियों का जरा-मरण-रहित यशःकाय ही उनका वास्तविक स्वरूप है।

कुमारमणि ने अपना पाञ्चभौतिक देह कब छोड़ा, इसका निश्चित काल ज्ञात नहीं हुआ है। हाँ, सं० १७७६ में उनकी हस्तलिखित, पूर्व वर्णित पुस्तक से उनकी इस समय तक की स्थिति मे कोई सन्देह नहीं रहता।

कवि के समकालीन और पूर्ववर्ती कुछ कवि

कविकुमारमणि-कृत 'रसिक रसाल' ग्रन्थ के दोष-प्रकरण मे कुछ हिन्दी के कवियों के उदाहरण दिये गये हैं, जिससे मानना पड़ेगा कि वे कवि कुमारमणि के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती थे। यह प्रथम ही कहा जा चुका है कि रसिक रसाल की पूर्ति स० १७७३ में हुई है। इस आधार पर जिन कवियों के नाम नीचे लिखे जाते हैं, उनका समय (कविता-काल) इसके पूर्व ही सिद्ध होगा, अधिक से अधिक ग्रन्थ-रचना के समय तक उनकी प्रसिद्ध मानी जा सकती है। निम्नलिखित कवियों के समय-निर्धार के विषय में हम मिश्रबंधु-विनोद के आधार पर उनका समय देते हैं—जिसमे कुछ कवियों का समय 'रसिक रसाल' की पूर्ति के बाद आता है। हम कह नहीं सकते कि मिश्र-बंधुओ का दिया हुआ समय ठीक है अथवा नहीं। संभव है, एक ही नामधारी दो कवि हुए हों, जिनमें एक का उदाहरण 'रसिक रसाल' मे दिया गया हो और दूसरे का पता विनोदकार को लगा हो, परन्तु जहाँ तक निश्चित है 'रसिक रसाल' में नामोल्लेख होने से 'विनोद' के प्रदत्त समय का सुधार होना चाहिये। उक्त कवियों की नामावली इस प्रकार है—

(१) 'जगदीश—रचना-काल सं० १८६२ ❀

(२) 'केशवदास'—जन्मकाल सं० १६१८

(३) 'वेनी'—प्रथम सं० १६६० के लगभग, द्वितीय का र सं० १७५५

(४) 'गंग'—प्रथम सं० १५६० से १६१०, द्वि० १६२७

(५) 'सविता'- जन्म-काल १८०३ कविता काल सं० १-३० (झारखंड के कृष्ण साहि के यहाँ)

(६) 'ब्रह्म'—स० १८०३

(७) मुरलीधर'—ज० सं० १७४० क० काल १७३०

(८) 'कासीराम'—ज० सं० १७१५ क० काल १७४०

(९) 'गदाधर'—सं० १७७५ के लगभग

(१०) 'मतिराम'—सं० १७१६ के लगभग

(११) 'केसवराय'—प्रथम बघेलखंडी सं० १७५४, द्वि० बुन्देलखण्डी सं० १७५३ (छत्रसाल के)

(१२) 'मनिकंठ'—सं० १७५४ के पूर्व।

प्रस्तुत कवियों के समय का वास्तविक निर्णय करना इतिहासज्ञ साहित्य-विद्वानों का कर्तव्य है। जहाँ तक इनके समय की रूप-रेखा मिली है उसे उद्धृत करने का यथासाध्य प्रयत्न किया गया है।

जिस प्रकार कुमारमणि के 'रसिक रसाल' से हिंदी कवियों

❀ रेखाङ्कित संवत् पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

की पृष्ठ-लिखित नामावली ली गई है, उसी प्रकार उनके 'रसिक-रंजन' नामक आर्यासप्तशती-संग्रह से संस्कृत के निम्न-लिखित कवियों का हमें पता लगता है, और उनकी सुमधुर काव्य-सुधा चखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। दुर्भाग्य यह है कि अभी तक एतन्नामधारी कवियों का न तो साहित्य-जगत् को पता ही था, और न उनके ग्रंथों की उपलब्धि ही। 'रसिक-रंजन' में निम्न-लिखित कवियों की आर्याओं का संग्रह स्थान-स्थान पर किया गया है, और उसके साथ ही साथ एक दो आर्यासप्तशतियों का भी पता लगता है—जिनकी यथा-स्थान संसूचना की गई है। शोक इस बात का है कि उक्त ग्रंथों का या कवियों के काव्यसंग्रहों का कुछ भी पता अभी तक नहीं लगा है। अस्तु। नामावली इस प्रकार है*—

(१) कुमारमणि—स्वतन्त्र आर्यासप्तशती, जिसे कवि ने "मदीयसप्तशत्याः" से सम्बोधित किया है।

(२) गोवर्धनाचार्य—सप्तशती उपलब्ध होती है।

(३) चिन्तामणि दीक्षित—कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता।

(४) मातुल जनार्दन— ,, ,,

(५) जयगोविन्द वाजपेयी—इनके तीन ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं—(१) कवि-कल्पद्रुम (संस्कृत हिन्दी),

* जीवनचरित्र के लिये देखो 'आन्ध्रजातीय संस्कृत कवि' नामक अप्रकाशित ग्रन्थ

(२) कविसर्वस्व (हिन्दी),
(३) रसकौस्तुभ (,,)।

(६) बालकृष्ण भट्ट—कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता।

(७) बाणभट्ट—प्रसिद्ध है।

(८) मधुसूदन कवि पण्डित—कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता।

(९) वासुदेव—अनुजसप्तशती का नाम मिलता है।

(१०) लीलावतीकार—प्रसिद्ध है।

(११) प्राञ्चः (केचन) अप्रसिद्ध है।

(१२) नव्यः (कश्चित्) ,, ,,

(१३) कश्चित् (अज्ञात) ,, ,,

उपरिलिखित सभी कवि आन्ध्रजातीय थे, यह भी ज्ञात होता है।

कुमारमणि और पद्माकर

कवि कुमारमणि के जीवनचरित्र में लिखा जा चुका है कि इनके शिष्य क्षेमनिधि थे, जो कवि पद्माकर के पितृव्य थे, अतः संभव है, पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट ने भी कुमारमणि के समीप हिन्दी-साहित्य-शास्त्र का अध्ययन किया हो, और इसी कारण पद्माकर को भी कुमारमणि के निर्दिष्ट पथ का अनुगामी बनना पड़ा हो। जगद्विनोद और पद्माभरण की रचना के समय पद्माकर के ध्यान-पथ में कुमारमणि का 'रसिक-रसाल' ग्रन्थ होगा, अथवा उन्होंने उसकी अख्याति

से लाभ उठाया होगा। 'रसिक-रसाल' काव्यप्रकाश का प्रायः अनुवाद है। अतः यह भी संभव है कि पद्माकर का पाठ्य ग्रन्थ ही वह रहा हो, पर यह निःसंदिग्ध है कि पद्माकर की कविता पर कुमारमणि के काव्य की छाया पड़ी है और अच्छी प्रकार पड़ी है—फिर चाहे वह इच्छाकृत हो अथवा अनिच्छा-कृत।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिये कुछ थोड़े से उदाहरणों का अवलोकन ही पर्याप्त होगा। पाठक देखें कि पद्माकर ने कुमारमणि के काव्य का किस प्रकार अपहरण किया है—

'रसिक-रसाल'—

दोऊ ढिग है बाल इक, आँखिन नाँखि गुलाल।
अक माल दूजी लई चूमि कपोलनि लाल॥ ४ ट० ६७॥

'जगद्विनोद'—

मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सुदृग मिचावनी के ख्यालनि हितै-हितै।
नैमुक नवाइ ग्रीवा धन्य-धन्य दूसरी को,
औचक अचूक मुख चूमत चितै-चितै॥ ७४॥

उक्त दोनों पद्य 'ज्येष्ठा-कनिष्ठा' नायिका के उदाहरण-स्वरूप हैं, जिनमें कवियों ने अपने कल्पना-कौशल का परिचय दिया है। यद्यपि दोनों ने ज्येष्ठा-कनिष्ठा के लक्षण पृथक्-पृथक् लिखे हैं, जो एक दूसरे से भिन्न हैं, जिसकी गहराई में हमें यहाँ उतरने की आवश्यकता नहीं है। हमें तो केवल यह कहना है कि

पद्माकर ने उक्त भाव में कुछ दूसरा चोला चढ़ाकर भावापहरण किया है। पद्माकर के पक्षपाती कवि यद्यपि उनके "सुहग-मिचावनी क ख्याल" में "नैसुक नवाई ग्रीवा" इत्यादि के कारण पद्माकर की वाहवाही के "औचक अचूक" पुल बाँध सकते हैं, पर 'रसिक-रसाल' में "आँखिन नाखि गुलाल" की सूक्ष्म विलक्षण है और नायक की तात्कालिक कृति का उदाहरण है, जिसमें उसे अपेक्षित समय प्राप्त हो जाता है। पद्माकर ने आधे कवित्त में उसकी भूमिका बाँधी है और कुमारमणि ने उसे दोहे के भीतर सुन्दर और अनुपम ढंग से कह डाला है। इसे हम भावापहरण कह सकते हैं।

कुछ पाठक इसे बलात्कार की धाँधली कहकर पद्माकर के लिये न्याय माँग सकते है, पर हम भी अपने कथन की पुष्टि करे विना नहीं रह सकते। लीजिये द्वितीय उदाहरण—

'रसिक-रसाल'—

खोर को राग छुट्यो कुच को, मिटि गौ
अधरारुन देख्यौ प्रकासहि;
अंजन गौ दृग कंजन ते तनु,
कंपत तेरो रुमंच हुलासहि।
नेकु हितू जन को हित चीन्हों न,
कीन्हों अरी ! मन मेरो निरासहि,
बावरी ! बावरी न्हान गई कै,
यहाँ न गई उहि पीव के पासहि॥ १ ऊ० ११॥

'जगद्विनोद'—

धाइ गई केसरि कपोल कुच गोलन की,
पीक-लीक अधर-अमोलनि लगाई है;
कहै 'पद्माकर' त्यों नैनहू निरंजन में
तजत न कंप देह पुलकनि छाई है।
वाद मति ठानैं झूठवादिनि भई री अब,
दूतिपनो छोड़ि धूतपन में सुहाई है;
आई तोहि पीर न पराई महापापिनि तू,
पापी लौं गई न कहूँ वापी न्हाइ आई है॥ १२८॥

उक्त सवैया और कवित्त में क्रमशः अर्थ का मिलान करते-करते अर्धांश तक भावानुवाद का परिज्ञान कर सकते हैं। आगे चलकर कुछ अभिप्राय बदल गया है, पर अन्तिम चरणों में केवल शब्दों का हेरफेर हो रह जाता है। क्या यह भावापहरण नहीं है? जगद्विनोद के उक्त पद्य पर क्या रसिक-रसाल के उक्त सवैया की छाया स्पष्ट नहीं झलकती? कौन इसे अस्वीकार कर सकता है? कहना पड़ेगा, पद्माकर ने कुमारमणि की सूझ से काम लेकर अपना काम बनाया है।

हाँ! स्मरण होता है, कई सहृदय व्यक्ति इसे अनुचित पक्षपात कह सकते हैं और तदर्थ एक संस्कृत का श्लोक उपस्थित कर सकते हैं, जिसके यह दोनों पद्य अनुवाद-स्वरूप हैं। वह श्लोक इस प्रकार है—

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो,
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः;

मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे,
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।

हमें इस कथन के मानने में कोई विप्रत्तिपत्ति नहीं है, और उसका कारण स्पष्ट है कि उक्त दोनों कवियों की यह सूक्ष मौलिक नहीं है। परन्तु कुमारमणि ने इसे ध्वनि के उदाहरण में लिखा है—जैसा कि 'रसिक-रसाल' के लिये काव्यप्रकाश का अनुवाद होने के कारण आवश्यक था, पर पद्माकर ने इसे 'अन्यसुरतिदुःखिता' नायिका के उदाहरण मे लिखा है, और उसे 'रसिक-रसाल' से लेकर परिवर्तित रूप में ला रक्खा है।

पद्माकर का कवित्त यद्यपि श्लोक का पूरा अनुवाद कहा जा सकता है और इससे उनकी पीठ ठोकी जा सकती है, परन्तु हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि ध्वनिप्रकरण का उदाहरण होने से कुमारमणि का उक्त सवैया पद्माकर के कवित्त और मूल श्लोक दोनों से ही बढ़-चढ़ गया है। "मिथ्यावादिनि! दूति बान्धवजनस्याज्ञात पीडागमे" इस वाक्य और उसके अनुवाद—"वाद मति ठानें झूठबादिनि भई री अब, दूतपनो छोड़ि धूतपन में सुहाई है" की अपेक्षा "नैकु हित् जन को हित चीन्हों न कीन्हों अरी मन मेरो निरासहिं" इस कुमारमणि के पद्यांश में कितनी मधुरता और ध्वनि है, जो काव्य को अतिशय चमत्कृत कर रही है। अस्तु। 'तुष्यतु०' न्याय से इस विवाद को छोड़कर भावपहरण

के दो उदाहरण और उपस्थित किये जाते हैं, जिसका अपलाप नहीं किया जा सकता है—

'रसिक-रसाल'—

रूप सौं विचित्र कान्ह मित्र को विलोकि चित्र
चित्रित भई तू चित्र पूतरी सुभाई है ॥ ३उ०२९ ॥

'जगद्विनोद'—

मोहन मित्र को चित्र लखें
भई चित्र हो सी तो विचित्र कहा है ॥३२७॥

पद्माकर के इस शब्द और भाव के अपहरण को कहाँ तक कोई छिपा सकता है—नीचे के पद्य के शब्द उच्चैर्घोष से अपने स्थान का परिचय दे रहे हैं। कवि ने कुछ शब्दों में परिवर्तन कर किस प्रकार 'रसिक-रसाल' के माल को उदरसात् कर लिया है। उक्त उदाहरण 'चित्र-दर्शन' के हैं। अतः कहना पड़ेगा कि पद्माकर ने निःसंकोच होकर इस सुंदर भाव-पूर्ण 'कान्ह-चित्र' को चुराया है—इसमें वह अपने लोभ का संवरण नहीं कर सके हैं।

प्रस्तुत भावापहरण प्रकरण में एक उदाहरण और दिया जा कर यह विषय समाप्त किया जायगा। आइये और देखिये—

'रसिक-रसाल'—

फूल बहार के भार भरी
इक डार है 'नंद-कुमार' नवाई ॥ ९ उ० १८ ॥

'जगद्विनोद'—

निज निज मन के चुनि सबै फूल लेहु इक बार ;
यहि कहि कान्ह कदंब की हरषि हिलाई डार ॥२९०॥

दिनदहाड़े की इस चोरी के लिये और क्या प्रमाण चाहिये ? वह उदाहरण स्वयं अपना प्रमाण है।

कदंब की डाल पर चढ़कर अपनी प्रियतमाओं को पक्षपात-हीन होकर प्रसन्न करने के लिये नायक की दक्षिणता की सुन्दर भावोत्पत्ति कुमारमणि के मस्तिष्क से ही हो सकती है, उसे चुराकर पद्माकर ने अपने लिये धन्यवाद का गठ्ठर बाँधा है। पर है यह 'पराया माल' ही। आखिर बरामद हो ही गया है।

इन्हीं कारणों से कहना पड़ता है कि पद्माकर ने कुमारमणि के सुन्दर भावों का अपहरण किया है और उससे ख्याति प्राप्त की है।

विज्ञ जनों के सम्मुख कुछ शब्दापहरण के निदर्शन रखकर हम यह और बतलाना चाहते हैं कि पद्माकर ने कुमारमणि के शब्दों को यथावत् अपने काव्य में स्थान ही नहीं दिया है, प्रत्युत उनके द्वारा अपने छंदों की पूर्ति भी की है। प्रथम एक उदाहरण अर्थापहरण का दे देना भी अप्रासंगिक न होगा।

'रसिक-रसाल'—

रचि मनाठ जो प्रेमबस तिय पहुँचै प्रिय पास।
निज पास पिय को बुलावे सोऊ अभिसारिका कहत हैं।

'जगद्विनोद'—

बोलि पठावै वियहि कै पिय पै आपुहि लाय ॥ २२७ ॥

'रसिक-रसाल' के उक्त पद्य और गद्यभाग को मिलाकर पद्माकर ने अपने दोहे का कलेवर बनाया है, जो छंद के आवरण से आवृत होने पर भी अपनी वर्णसंकरता को छिपा नहीं सका है। अस्तु। अब शब्दापहरण की झाँकी देखिये—

'नायक' के उदाहरण में पद्माकर का यह कवित्त प्रसिद्ध है—

ठौर ठकुराई को जु ठाकुर ठसकदार

नन्द को कन्हाई सो सुनन्द को कन्हाई है ॥ जग० २८० ॥

क्या इस पद्य के रेखांकित पद का अनुमान पाठक कर सकते हैं कि वह कहाँ का है? क्या यह पद्माकर का मौलिक शब्द है? नहीं। कुमारमणि 'रसिक-रसाल' में नायक के उदाहरण में ही इसे इस प्रकार लिख चुके हैं—

कुँवर कन्हैया लोक ठाकुर-ठसक को ॥ ४ उल्लास ६ ॥

'ठाकुर-ठसक' के नगीने को चुराकर पद्माकर ने अपने कवित्त के आभरण में यद्यपि फिर बैठा दिया है और ठकार के शब्दालंकार में छिपाकर उसे अपनाने की कोशिश की है, पर 'रसिक-रसाल' के अवलोकन से प्रकट हो जाता है कि यह 'ठाकुर-ठसक' का संयोग कुमारमणि-कृत है।

अब आगे चलकर एक दूसरा उदाहरण लीजिये—

'रसिक-रसाल'—

है उपमेय परसपरहिं सोई है उपमान ॥ ८ उ० १२ ॥

'पद्माभरण'—

उपमेयोपम परस्पर उपमेयहु उपमान ॥ २७ ॥

दोनों के रेखांकित पदों पर ध्यान देने से विदित हो जायगा कि 'रसिक-रसाल' के लक्षण में ही कुछ परिवर्तन कर 'पद्माभरण' का उक्त लक्षण बना लिया गया है।

एक अन्य उदाहरण दिया जाता है, जिसमें एक शब्द ही क्या दोहा का अर्धांश तक उड़ा लिया गया है—

'रसिक-रसाल'—

रतिरस सों पिय संग सों जाके कछु परतीति।
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत कविता रीति ॥ ५ उ० ५३ ॥

'जगद्विनोद'—

पति की कछु परतीति उर धरै नवोढा नारि।
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत विबुध विचारि ॥ ३८ ॥

'कछु परतीति' से लेकर 'बरनत' तक पद्यांश पद्माकर ने उड़ा लिया है। इस चोरी के समय उन्हें पुनरुक्ति का भी ध्यान नहीं रहा है—'नवोढा नारि' और 'नवोढ तिय' यह दोनों शब्द एक ही पद्य में दो बार आ गये हैं। इन प्रत्यक्ष उदाहरणों के सम्यगालोचन करने के बाद कौन साहित्यज्ञ समालोचक इससे नकार कर सकता है कि पद्माकर के काव्य पर कुमारमणि की छाया नहीं पड़ी है ?

उक्त उदाहरणों के अर्थ, भाव और शब्द सभी इसका संकेत करते हैं कि पद्माकर की सूझ या वर्णन-शैली स्वतंत्र न

होकर परतंत्र है—वह मौलिक नहीं है, कहीं से लाकर रक्खी गई है। गवेषणा-पूर्ण दोनों कवियों के काव्यावलोकन से और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, पर उससे ग्रन्थ के कलेवर बढ़ जाने का भय है. और परीक्षा के लिये एक दो दाने ही पर्याप्त हैं। पद्माकर के ऐसा करने अथवा उनसे ऐसा हो जाने का भी कारण है, वह है, उनके पाठ्य ग्रंथ में रसिक-रसाल की संभवता। कुमारमणि ने साहित्य-जगत् में उतनी अधिक प्रसिद्ध नहीं पाई, जितनी पद्माकर ने। वर्तमानकालीन साहित्य-पारखियों ने तो कुमारमणि का कोई स्थान साहित्य में निश्चित ही नहीं किया है, पर पद्माकर तो इस विषय में काफ़ी प्रख्यात हो चुके हैं, और वह भी अपने देशाटन, राजसम्मान तथा काव्यात्मक आजीविका से। 'रसिक-रसाल' की अनुपलब्धि अथच विशेष प्रख्याति का अभाव भी कुमारमणि को विस्मृति के पट में छिपाये रहा है। इन सब कारणों से पद्माकर के 'करतब' छिपे रह गये हैं और कुमारमणि को साहित्य में उचित स्थान न देने का अन्याय हो गया है।

कुमारमणि-कृत ग्रन्थ

(१) 'रसिक-रंजन'

कुमारमणि शास्त्री का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ रसिक-रंजन' है, जिसमें साहित्य के २१ विषयों पर सुन्दर, सरस संस्कृत-आर्याओं का संग्रह है। इसे सप्तशती शब्द से स्वयं

कवि ने सम्बोधित किया है। खेद है कि उक्त ग्रन्थ मध्य एवं अन्त भाग में कुछ अपूर्ण उपलब्ध होता है। ग्रन्थ के विषय-निदर्शनार्थ कवि स्वयं इस प्रकार लिखता है—

"काव्यं कृष्णस्तुतिरथ संयोगवियोगनायिकाभेदाः।
उद्दीपनरसचेष्टाशिक्षोपालंभनं प्रेम ॥ १३ ॥
सापत्न्यमानमंगं हास्यं ग्रामे गुणास्तथान्योक्तिः।
सदसज्जनदुःखनयाश्चित्रमिहोक्तैकविशंतिक्रमिकैः" ॥ १४ ॥

अर्थात् 'रसिक-रंजन' में काव्य, कृष्णस्तुति, संयोग, वियोग, नायिका-भेद, उद्दीपन, रसचेष्टा, शिक्षा, उपालंभ, प्रेम, सापत्न्य, मान, अङ्ग, हास्य, ग्रामगुन, अन्योक्ति, सज्जन, असज्जन, दुःख, नय (नीति) तथा चित्रकाव्य इन २१ विषयों पर आर्याओं का संग्रह है।

ग्रंथ में कुमारमणि-रचित कितनी ही आर्याएँ हैं, जिन्हें कवि ने अपनी स्वतंत्र सप्तशती से उद्धृत किया है। इसी प्रकार अन्य कवियों की आर्याओं का इतना सुन्दर संग्रह अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। हम यह प्रथम कह आये हैं कि इस आर्या-संग्रह से २-३ प्राचीन आर्या सप्तशतियों के साथ ही अन्य अज्ञात कवियों की कविता का भी पता लगता है, जिसमें एक ही श्रीवत्सवंश की तीन सप्तशतियों की नामावली जो इस प्रकार है—(१) मधुसूदन-सप्तशती, (२) कुमारसप्तशती, (३) वासुदेवसप्तशती। मधुसूदनजी को 'कविपण्डित' की उपाधि थी, और यह कवि

के पूर्वज थे। इनकी आर्याएँ इतनी ओज-पूर्ण एवं सुन्दर हैं, जिनके लिये गर्व किया जा सकता है।

प्रस्तुत विषय में इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि सम्प्रति जो गौरव आर्याओं के निर्माण के लिये गोवर्धनाचार्य को दिया जा रहा है, उससे अधिक नहीं, तो वही गौरव प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशित होने पर उसके रचयिता को भी दिया जा सकता है। हम विस्तार-भय से उन आर्याओं के कुछ उदाहरण यहाँ नहीं देते, और उनका यहाँ लिखना भी एक प्रकार से "गंगा की गैल में मदार के गीत" वाली कहावत को चरितार्थ करना है।

आर्यासंग्रह 'रसिक-रजन' में जहाँ तक मेरा विश्वास और ध्यान तथा निश्चय है, आंध्रजातीय संस्कृत - कवियों की ही आर्याओं का संग्रह है। इस विषय का स्पष्टीकरण मैंने "आंध्रजातीय संस्कृत-कवि" नामक ग्रंथ में कवियों का परिचय लिखते समय किया है—जो अभी तैयार किया जा रहा है, अतएव अप्रकाशित है।

प्रस्तुत 'रसिक-रंजन' की पूर्ति सं० १७६५ में हुई थी। यह ग्रंथ सौभाग्य से कुमारमणि के स्वहस्त से लिखा हुआ ही मेरे परंपराऽऽगत पुस्तकालय में उपलब्ध हुआ है।

(२) 'कुमार-सप्तशती'

कुमारमणि की रचित स्वतंत्र आर्यासप्तशती का नामोल्लेख हमें रसिकरंजन में मिलता है। कवि ने अपनी आर्याओं को

लिखते समय "मदीयाः" "मम" "मदीयसप्तशत्याः" इन शब्दों से उनका उद्धरण दिया है, अतः कवि की एक स्वतंत्र 'आर्या-सप्तशती' अवश्य ही होना चाहिये—जो अभी तक अप्राप्त है। यह सप्तशती—'रसिक-रंजन' से प्रथम बनाई गई थी। और इसी कारण इसका उसमें उल्लेख पाया जाता है। 'रसिक-रंजन' में उद्धृत कुमारमणि की आर्याओं से इस ग्रंथ की महत्ता, मधुरता एवं गंभीरता का सहज ही परिचय मिल जाता है। यदि यह ग्रंथ प्राप्त होता तो इसे गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती की प्रतिद्वंद्विता में अवश्य स्थान मिलता।

(३) 'रसिक-रसाल'

कवि कुमारमणि की अंतिम उपलब्ध किंतु सर्वप्रथम भाषा-काव्य-रचना का नाम 'रसिक-रसाल' है। इसकी पूर्ति सं० १७७६ में हुई है। ग्रंथकार ने इसके विषय में इस प्रकार लिखा है—

काव्य-प्रकाश विचार कछु भाषा मैं रचि हाल;
पंडित सुकवि 'कुमारमनि' कीन्हौ रसिक-रसाल।

प्रस्तुत ग्रंथ के परिचयार्थ मैं कुछ भी न लिखकर पाठकों का ध्यान अग्रिम लेख पर आकृष्ट करना चाहता हूँ, जिसे मेरे आदरणीय मित्र पं० आशुकरणजी गोस्वामी ने 'रसिक-रसाल' के लिये लिखा है। प्रस्तुत लेख विद्वतापूर्ण, गवेषणामय एवं बहुत कुछ वास्तविकता को लिये हुए है। कहना पड़ेगा कि मेरे मित्रवर ने इस विषय में अच्छा श्रम उठाया है और

काफ़ी बुद्धि-वैशद्य से कार्य लिया है। उक्त मित्र मेरे सजातीय बन्धु, हिन्दू-विश्वविद्यालय के स्नातक, एम्० ए० उपाधिधारी हैं। आपने अँग्रेज़ी, हिन्दी एवं संस्कृत में एम्० ए० किया है—सम्प्रति आप बीकानेर स्टेट की ओर से गंगानगर में सुपरिन्टेन्डेन्ट-पद पर कार्य कर रहे हैं। आपने काव्य-साहित्य का अच्छा परिशीलन किया है। 'रसिक-रसाल' के लिये इतना लम्बा-चौड़ा एवं गंभीर आलोचनात्मक परिचय लिखने का कष्ट आपने केवल मुझ अकिंचित्कर मित्र की एक बार की सूचना पर ही उठा लिया था, आपके आगत पत्रों से मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि आप इसे जिस उत्साह से जिस पैमाने पर लिखना चाहते थे, समयाभाव एवं साहाय्याभाव से उसे वैसा नहीं लिख पाये हैं। इस साहाय्याभाव में आपने जिन साहित्यिक महारथियों की परोत्कर्षा, सहिष्णुता का दिग्दर्शन मुझे कराया था, वह एक स्मरणीय होते हुए भी अप्रकाशनीय है। इस पत्र-व्यवहार से मुझे इस वस्तुस्थिति को मानने के लिये विवश होना पड़ा है कि सम्प्रति हमारे हिन्दी-साहित्य के वातावरण में वह सुखद समय नहीं आया है, जिसमें पारस्परिक गुण-ग्राहकता, सौजन्य एवं अनसूया से कार्य किया जाता हो। जो प्रसिद्ध साहित्य-प्रकाशक हैं, और जिन्हें साहित्यिक महारथी माना जाता है, वे स्वकीय प्रसिद्धि के आगे किसी को कुछ भी नहीं समझते, वे नहीं चाहते कि कोई व्यक्ति

ध्येय तात्त्विक विवेचन व सिद्धांत-स्थापन करना था, पर हिंदी में ऐसे ग्रंथ लिखनेवालों का ध्येय अपनी कवित्व-शक्ति तथा रसिकता दिखलाना था। संस्कृत में तो बहुत-से आचार्य बड़े ही भावुक और उच्च कोटि के कवि भी थे, परंतु हिंदी में ऐसे कवि आचार्य-कोटि को पहुँचे हों, इसमें बहुत संदेह है। कहा जा सकता है कि इस कमी के कारणों में, हिंदी-साहित्य की प्रारंभिक अवस्था, आश्रयदाताओं की रुचि की भिन्नता, तात्कालिक युग का वातावरण, हिंदी की साहित्यिक भाषा के स्थिर रूप का अभाव आदि-आदि थे, फिर भी, कारण चाहे जो हो, निष्पक्ष रूप से यह मानना पड़ेगा कि हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथ लिखनेवालों में अधिकांश आचार्यता का प्रायः अभाव ही था। इसका एक मोटा-सा सबूत यह है कि तद्विषयक ग्रंथों में जो लक्षण दिए हैं, वे बहुधा क्लिष्ट, अपूर्ण और ग़लत भी हैं, परंतु उन लक्षणों के जो उदाहरण दिए गये हैं, वे बहुधा बहुत सरस, भावपूर्ण एवं मँजे हुए हैं। कहीं-कहीं तो वे ऐसे हृदयग्राही हैं कि संस्कृत-ग्रंथों में वैसे उदाहरण कम पाये जाते हैं।

हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथों में शास्त्रीय दृष्टि से यदि मौलिकता कहीं दिखाई पड़ेगी, तो उदाहरणों में ही, लक्षणों व वार्त्ताओं में नहीं। जिसका कारण पहले बताया ही जा चुका है।

हम हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथों के स्थूल रूप से तीन विभाग कर सकते हैं—

१. जिनमें काव्य के सारे अंगों पर प्रकाश डाला गया है ;
२. जिनमें रस-भेद व भाव-भेद का ही वर्णन है ;
३. जिनमें केवल 'अलंकार' का विषय ही दिया हुआ है।

पहली श्रेणी में चिंतामणि त्रिपाठी का 'कविकुलकल्पतरु', कुलपति मिश्र का 'रसरहस्य', देव का 'शब्दरसायन', कुमारमणि का 'रसिक-रसाल', श्रीपति का 'काव्य-सरोज', भिखारीदास का 'काव्यनिर्णय', सोमनाथ का 'रसपीयूषनिधि', रूपसाहि का 'रूप-विलास', रतनकवि का 'फतेहभूषण', जगतसिंह का 'साहित्य-सुधानिधि', प्रतापसाहि का 'काव्यविलास' आदि ग्रंथ मुख्य हैं।

दूसरी श्रेणी में मतिराम का 'रसराज', केशवदास की 'रसिक-प्रिया', सुखदेव मिश्र का 'रसार्णव', उदयनाथ कवींद्र का 'रसचंद्रोदय', गजन का 'क़मरुद्दीनखाँ हुलास', भूपति का 'रस-रत्नाकर', सैयद ग़ुलामनबी का 'रसप्रबोध', करन कवि की 'साहित्य-चंद्रिका', देवकीनंदन का 'शृंगारचरित्र', थान का 'दल्लेल-प्रकाश', बेनीप्रवीन का 'नवरसतरंग', पद्माकर का 'जगद्विनोद', भौन का 'रसरत्नाकर', शिवनाथ का 'रसवृष्टि', ये मुख्य हैं।

तीसरी श्रेणी में केशव की 'कविप्रिया', मतिराम का 'ललित ललाम', भूषण का 'शिवराज-भूषण', जसवंतसिंह का 'भाषा-भूषण' सूरतिमिश्र की 'अलंकार-माला', श्रीपति की 'अलंकार-गंगा', ऋषिनाथ की 'अलंकार-मणिमंजरी,' रसिक-

सुमति का 'अलंकार-चंद्रोदय', भूपति का 'कंठाभरण', दत्त की 'लालित्यलता', दलपतिराय वंशीधर का 'अलंकार-रत्नाकर', रघुनाथ का 'रसिकमोहन', दूलह का 'कविकुल-कंठाभरण', शिव का 'अलंकार-भूषण', गुमान का 'अलंकार-चंद्रोदय', ब्रह्मदत्त का 'दीपप्रकाश', शंभुनाथ का 'अलंकार-दीपक', वैरीसाल का 'भाषाभरण', रामसिंह का 'अलंकारदर्पण', चंदन का 'काव्याभरण', कलानिधि का 'अलंकार-कलानिधि', देवकीनंदन का 'अवधूतभूषण', भान का 'नरेंद्रभूषण', बेनी का 'टिकैतराय-प्रकाश', भौन का 'शृंगाररत्नाकर', गुरुदीन का 'वाग्मनोहर', पद्माकर का 'पद्माभरण', रामसहायदास का 'वाणीभूषण', उत्तमचंद भंडारी का 'अलंकार-आशय', गदाधर-भट्ट का 'अलंकार चंद्रोदय' प्रतापसाहि का 'अलंकार-चिंतामणि', लेखराज का 'गंगाभूषण', और लछिराम का 'राम-चंद्रभूषण' आदि मुख्य हैं।

नायिका-भेद और अलंकार पर लिखे गए ग्रंथों की संख्या बहुत बड़ी है, और दशांग-काव्य पर लिखे हुए ग्रंथों की बहुत थोड़ी। दशांग-काव्य पर जो ग्रंथ लिखे गए हैं, उनमें चिंतामणि त्रिपाठी का 'कविकुल-कल्पतरु', श्रीपति का 'काव्य-सरोज', कुलपति का 'रस-रहस्य', भिखारीदास का 'काव्य निर्णय' और कुमारमणि का 'रसिक-रसाल' कविता तथा विवेचन-शैली की दृष्टि से बहुत अच्छे हैं। इनमें कुलपति मिश्र का 'रस-रहस्य' एवं भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' छप गया है।

दशांग-काव्य पर जो भी ग्रंथ लिखे गये हैं, उनमें किसी खास एक ही ग्रंथ का आश्रय नहीं लिया गया है। साधारण-तया काव्य लक्षण, उसके विभेद, शब्दशक्ति का विषय, काव्य के गुण दोषादि का विचार काव्यप्रकाश के आधार पर लिखा गया है, रस-भाव-भेद का प्रकरण साहित्यदर्पण, दशरूपक आदि के आधार पर और अलंकार का प्रकरण चंद्रालोक, कुवलयानंद के आधार पर।

कुमारमणि के 'रसिक-रसाल' में काव्य के लक्षण, प्रयोजन, गुण-दोष, शब्द-शक्ति आदि का विचार काव्यप्रकाश के मतानुसार दिया गया है, रस-भेद, भाव-भेद, नायक नायिका-भेदादि साहित्यदर्पण दशरूपक के आधार पर, और अलंकार का विचार कुवलयानंद की शैली व आधार पर।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिंदी-साहित्य में नाटक का शास्त्रीय रूप कभी प्रकट ही नहीं हुआ, और इसीलिये उनमें नाट्यशास्त्र के प्रकरण का प्रायः अभाव ही रहा है। रसिक-रसाल में भी इसीलिये इस प्रकरण का कोई अध्याय नहीं है। आधुनिक युग में नाटक की तरफ़ अवश्य कुछ लेखकों का ध्यान गया है, परंतु नाट्यशास्त्र पर अभी तक प्रामाणिक ग्रंथों का प्रायः अभाव ही है। प्रस्तुत ग्रंथ रसिक-रसाल में दश उल्लास हैं, और उनमें वर्णित विषय ये हैं—

१. त्रिविध काव्य-निरूपण

प्रथम उल्लास—काव्य-निरूपण

इसमे काव्य के प्रयोजन, हेतु और भेद बताए गए हैं। लक्षण और उदाहरण काव्यप्रकाश में दिये हुए लक्षण और उदाहरण के अनुवाद ही हैं* यथा—काव्य का प्रयोजन बताते हुए लिखा है—

अर्थ धर्म जस कामना लहियतु मिटत विषाद।
सहृदय पावत कवित में ब्रह्मानंद सवाद॥

---

*प्रस्तुत रसिक-रसाल ग्रंथ काव्यप्रकाश का प्रायः अनुवादरूप है ग्रंथकर्ता स्वयं इस बात को अपने शब्दों में इस प्रकार लिखता है, जिस पर लेखक ने प्रायः ध्यान देने का कष्ट नहीं उठाया है। और, इसीलिये स्थान-स्थान पर इसका उल्लेख किया है—

"काव्यप्रकाश विचार कछु भाषा में रचि हाल।
पंडित सुकवि कुमारमणि कीन्हौ रसिक-रसाल॥

—संपादक।

काव्यप्रकाश में यही प्रयोजन इस प्रकार लिखा है—

काव्यं यशसे ऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे ॥

इन दोनों का विचार करने पर ज्ञात होगा कि काव्यप्रकाश के 'कान्ता सम्मिततया उपदेशयुजे' इस एक प्रयोजन को कुमारमणि ने छोड़ दिया है। काव्य का एक प्रयोजन यह भी निर्विवाद है कि वह मनुष्य को स्त्री की तरह मधुरालाप से उपदेश देता है। रसिकरसाल में काव्य के इस प्रयोजन को स्थान न देकर एक बड़ी भारी कमी रख दी गई है।

इसके आगे ग्रंथ में काव्य की उत्पत्ति के साधन लिखे हैं। यथा—

शक्ति शास्त्र लौकिक सकल परवीनता समेत।
कवि शिक्षा अभ्यास भनि कवित उपज को हेत ॥

इसी साधन को काव्यप्रकाश में यों लिखा है—

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

यानी दोनों ग्रंथों में जो तीन कारण काव्योत्पत्ति के दिए हुए हैं—१. शक्ति, २. लोक और शास्त्र के अनुशीलन से प्राप्त की हुई निपुणता और ३. काव्य-मर्मज्ञ पुरुषों की शिक्षा के अनुसार अभ्यास करना—वे एक से हैं।

फिर काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

उपजत अद्भुत वाक्य जो शब्द-अर्थ-रमनीय।
सोई कहियतु कवित है सुकवि-कर्म कमनीय॥

यह लक्षण साहित्यदर्पण और रसगंगाधर के लक्षणों को मिलाकर बनाया हुआ है। साहित्यदर्पण में रसात्मक वाक्य को और रसगंगाधर में रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा गया है।

आगे चलकर काव्य के भेद किए हैं, और इसमें भी काव्य-प्रकाश का अनुकरण किया गया है। काव्य के तीन भेद किए हैं। यथा—१. ध्वनि, २. अगुरुव्यङ्ग्य-गुणीभूतव्यङ्ग्य और ३. चित्र। यही तीन भेद काव्यप्रकाश में भी किए गए हैं। इनके लक्षण भी काव्यप्रकाश में जो दिए गए हैं, वही रक्खे हैं, और उदाहरण भी काव्यप्रकाश में उदाहरण-स्वरूप दिए हुए पद्यों के अनुवाद हैं।

काव्यप्रकाश में ध्वनि (उत्तम काव्य) का लक्षण यह दिया हुआ है—'इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्यध्वनिर्बुधैः कथितः।' इसी को रसिकरसाल में यों दिया है—'वाच्य अरथ ते व्यंग जँह सुन्दर अधिक विशेष'।

काव्यप्रकाश में इसी का उदाहरण 'निःशेषच्युतचन्दनम्' इत्यादि पद्य दिया है, और उसी का अनुवाद रसिक-रसाल में "खौर को राग छुट्यो" इत्यादि पद्य दिया है।

मध्यम काव्य (अगुरुव्यङ्ग्य) का लक्षण काव्यप्रकाश में "अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये तु मध्यमम्" यह दिया

हुआ है, और इसी का अनुवाद "काव्य अरथ तें व्यंग जँह सुन्दर अधिक न लेष" रसिक रसाल में दिया हुआ है। इसका उदाहरण काव्यप्रकाश में "ग्रामतरुणं तरुण्या" इत्यादि पद्य है, और रसिकरसाल में इसी का अनुवाद "बैठी जहाँ गुरु नारि०" इत्यादि पद्य दिया है।

चित्रकाव्य का लक्षण रसिक-रसाल में नहीं दिया है, परतु उसके जो दो भेद उदाहरण-रूप दिए हैं—शब्दचित्र और अर्थचित्र—उनमें काव्यप्रकाश का ही सिद्धान्त है।

द्वितीय उल्लास—चतुर्विध व्यंग्य कथन

काव्यप्रकाश के द्वितीय और तृतीय उल्लास में शब्दार्थ-निरुपण और अर्थ-व्यञ्जकता का निर्णय किया गया है। उसी विषय को संक्षेप में रसिक-रसाल के इस उल्लास में कहा गया है। यथा—शब्द की तीन शक्तियाँ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना, व्यंग्य के अभिधामूलक और लक्षणामूलक ये दोनों भेद व इनके भी अवान्तर-भेद, आदि-आदि। इनके लक्षण-उदाहरणादि भी काव्यप्रकाश के आधार पर अथवा उसके अनुवाद हैं।

तृतीय-चतुर्थ-पंचम उल्लास—रसव्यंग, भावानुभाव और आलंबन-उद्दीपन-विभाव-निरूपण।

रसिक-रसाल के ये तीनों उल्लास अधिकतर साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद के आधार पर लिखे हुए हैं। लक्षण और

उदाहरण भी साहित्यदर्पण में दिए हुए लक्षण और उदाहरण के अनुवादमात्र-से ही हैं। कहीं-कहीं काव्यप्रकाश का आधार भी लिया गया है।

प्रधान रूप से काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण दोनों ही में आठ ही रस माने गए हैं यथा—शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र, करुण, भयानक, वीभत्स और अद्भुत। काव्यप्रकाश में "शान्तोऽपि नवमो रसः" कहकर नवम 'शान्त' रस का, और साहित्यदर्पण में किसी-किसी के मत के अनुसार दशवें रस 'वत्सल' का भी उल्लेख कर दिया गया है। इन्हीं दोनों के आश्रय से रसिक-रसाल में ० रसों का विवेचन किया गया है।

षष्ठ उल्लास—मध्यम काव्य निरूपण

रसिक-रसाल के इस उल्लास में मध्यम काव्य (गुणीभूत-व्यंग्य) के वही आठ भेद दिए हुए हैं, जो काव्यप्रकाश व साहित्यदर्पण में दिए हैं।

सप्तम उल्लास—चित्रकाव्य-निरूपण

इसमें शब्दालंकार और रीति—गौड़ी, वैदर्भी, पांचाली आदि—का वैसा ही विचार किया गया है, जैसा कि काव्यप्रकाश साहित्यदर्पण में है।

अष्टम उल्लास-अर्थालङ्कार

इसमें अर्थालंकारों का वर्णन है। अलंकारों के नाम, संख्या, क्रम, लक्षण व उदाहरण की दृष्टि से यह उल्लास कुवलयानंद के आधार पर लिखा गया है। अलंकारों के लक्षण और

अवांतर-भेद प्रायः वे ही दिए गए हैं, जो कुवलयानंद में। कहीं उनका आशय लेकर परिवर्द्धित रूप में भी उदाहरण दिए गए हैं।

कुवलयानंद में लुप्तोपमा का यह उदाहरण दिया हुआ है—

तडिद्गौरीन्दुतुल्यास्या कर्पूरन्ती दृशो र्मम ;
कान्त्या स्मरवधूयन्ती दृष्टा तन्वी रहो मया ।
यत्तया मेलनं तत्र लाभो मे यश्च तद्रतेः ;
तदेतत्काकतालीयमवितर्कितसंभवम् ।

वही रसिकरसाल में इस प्रकार दिया हुआ है—

छन छवि भोरी गोरी विधु-सो बदन,
तन, सोहत मदन तिय कांति अभिराम है। इत्यादि

इसी प्रकार कुवलयानंद के उपमेयोपमा के लक्षण और उदाहरण का प्रायः अनुवाद रसिक-रसाल में दिया गया है।

कुवलयानन्द के न्यूनताद्रूप्य रूपकालंकार के उदाहरण 'अचतुर्वदनो' का अनुवाद रसिक-रसाल में इस तरह दिया गया है—

एक सरूप सनातन हौ गुरु ग्यान सनातन न्यान बखानै ।
तीसरे नैन बिना हरदेव हौ सेवक मोप विधायक मानै ॥
द्वै भुज केसव के अवतार कुमार कहै गुरु हो पहिचानै ।
एक ही आनन चारिहु वेद के गायक हौं कमलासन जानै ॥

इसी प्रकार अन्य लक्षण और उदाहरण भी समान रूप से रसिक-रसाल में मिलेंगे।

नवम-दशम उल्लास—काव्य-गुण-दोष-विचार

रसिकरसाल के इस उल्लास में काव्य के तीन गुण ओज, प्रसाद और माधुर्य और सोलह दोष (१. श्रुतिकटु, २. च्युत-संस्कृत, ३. अप्रयुक्त, ४. असमर्थ, ५. निहतार्थ, ६. अनुचितार्थ, ७. निरर्थ ८. अवाच्य, ९. अश्लील, १०. संदिग्ध, ११. अप्रतीत, १२. ग्राम्य, १३. नेयार्थ, १४. संश्लिष्ट (क्लिष्ट), १५. अविमृष्ट-विधेयांश और १६. विरुद्धमतिकार) वे ही हैं, जो काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण में दिए हुए हैं।

च्युतसंस्कृत-दोष के विषय में लिखा है कि यह दोष संस्कृत में ही पाया जाता है। असल में च्युतसंस्कृत दोष वहीं होता है, जहाँ कोई प्रयुक्त शब्द ऐसा हो, जो उस भाषा के व्याकरण के नियमों के प्रतिकूल प्रयुक्त हुआ हो, अथवा जिसका स्वरूप ऐसा हो, जो व्याकरण से सिद्ध न हो सके। हिंदी-भाषा का वस्तुतः उस समय कोई स्थिर रूप नहीं था, अतएव उसका कोई व्याकरण भी नहीं था और इसलिए इस दोष का निर्वाह इस भाषा में न हो सका।

कुमारमणि की कविता

मिश्रबंधुओं ने कुमारमणि को पद्माकर की श्रेणी में रक्खा है। श्रेणी के लिहाज से किसी कवि की जाँच करना यहाँ हमारा प्रयोजन नहीं है और न मिश्रबंधुओं की श्रेणी के औचित्यानौचित्य का विवेचन ही। परंतु कविता के गुणों को देखते हुए यह निर्भीक होकर कहना पड़ेगा कि कुमारमणि की

कविता बहुत उच्च श्रेणी की है, और उसमें भाव-प्रौढ़ता के साथ-साथ शब्दालंकार और अर्थालंकार, दोनों ही का अच्छा और यथोचित सन्निवेश है। भाषा की दृष्टि से भी उसमें शब्दों की इतनी तोड़-मरोड़ नहीं है, जितनी अनुप्रासप्रियता के कारण पद्माकर ने की है। कुमारमणि की कविता में जहाँ अनुप्रास का प्राधान्य है, वहाँ भी प्रसाद-गुण वर्तमान है और भाषा स्वच्छ है। उदाहरणों की कमी नहीं है, और रसिकरसाल में वस्तुतः अनेक पद्य इस बात के साक्षी हैं कि कुमारमणि किस दर्जे के कवि थे। कुछ उदाहरण हम यहाँ दिए देते हैं, जिन्हें देखकर पाठक स्वयं इस कथन की सत्यता का अनुमान लगा सकते हैं*।

कृष्णाभिसारिका का उदाहरण—

नीलपट लपटी लपट ऐसी तन तैसी,
निपट सुहाई मृगमद खौर हेरिए।
नेकु उघरत श्रंग छवि की तरंग बढ़ै,
घन संग जामिनी में दामिनी निवेरिए॥
'सुकवि कुमार' मार भूप की मसाल मानौं,
गई कुंज—जाल तहाँ छाई है अँधेरिए।
खोल मुखचंद चंदमुखी लखै जाही ओर,
ताही ओर ओर महताब-सी उजेरिए॥

* प्रस्तुत विषय में हम पाठकों का ध्यान भूमिका के उस प्रकरण पर आकृष्ट करना चाहते हैं, जिसमें 'कुमारमणि और पद्माकर' की कविता के विषय पर कुछ लिखा गया है।—संपादक

सकल तारुण्या का उदाहरण—

नेह मद छाई चितवन चतुराई त्यों,
कुमार सुकुमारताई मालती बिसारिए।
गति गरवाई खुलि छाई है गुराई गात,
बातनि सरसताई सुधानिधि धारिए॥
प्यारी के निहार पानि पगनि दृगनि लाली,
कोकनद कांति त्यों गुलाब वार डारिए।
आनन समान नाहीं होत याही दुख माँह,
सुख माँह छाँह छवि-नाह के निहारिए॥

वत्सल-रस का उदाहरणः—

बैन सुन्यो बन तें हरि आए बने नट-बेप की भाँति गही है।
मात जसोमति द्वारहि दौरि गई सुत देखन कों उमही है॥
कान्हर को मुख चूमति घूमति जाइ हिए निधि मानो लही है।
आँचर पोंछति गोरज धूलि है फूल हिए सुख भूलि रही है॥

शांतरसानुभाव का उदाहरणः—

जनम गवायौ वादि जित तू सवाद विष,
विषयन मदन विषाद हू अघाइगौ।
कहत 'कुमार' सनसार है असार ताहि
मानि सुखसार अघ औगुन हू छाइगौ॥
चंचल वचंक मन रंचक न जानौ कान्ह,
भवपारावार बीच नीच तू समाइगौ।

हरि-नाम-गुन कों बिसारि धारि औगुन कों,

घरी - घरी बूड़त घरी - सी बूड़ जाइगो ॥

वीभत्स-रस का उदाहरण:—

गरदा से परे मुरदानि के रदासे, तहाँ

लीन्है अंक बैठ्यो सिरदार रंक प्रेतु है।

लै-लै मुख कौं औरैं आवति निकट, दौरैं

दाँत काढ़ि आँत काढ़ि कीन्हो हार हेतु है ॥

पीठ जंघ अच्छनि कपोलनि प्रमथ भच्छि,

आतुर छुधा सों रच्छु ह्वै रह्यो अचेतु है।

हाडनि हू चाखि डारै नाँखिन हीं आँखिन हीं,

मूँदि संग माँखिन ही मास भख लेतु है ॥

इस तरह के अधिकांश उदाहरण रसिक-रसाल में यत्र-तत्र भरे पड़े हैं।

रसिक-रसाल की शैली

शैली की दृष्टि से कहा जा सकता है कि—कुमारमणि ने काव्यप्रकाश अथवा साहित्यदर्पण की शैली का अनुसरण किया है, और यही शैली विषय-निबंध की दृष्टि से परंपरागत भी है। रसिक-रसाल में पहले लक्षण दिया गया है, फिर उदाहरण। जहाँ विषय अथवा लक्षण को स्पष्ट करने की आवश्यता दिखलाई पड़ी है, वहाँ कवि ने वृत्ति (वार्ता) दे दी है। लक्षण और उदाहरण पद्य में हैं तथा वार्ता गद्य में। यही शैली तत्का-लीन हिंदी के अन्य आचार्य कवियों ने भी बरती है। यथा—

मध्यम काव्य का उदाहरण—

लक्षण—

वाच्य अर्थ तें व्यंग जँह सुन्दर अधिक न लेख ;
अगुरु व्यंग्य सो नाम कहि मध्यम काव्य विशेख ।

उदाहरण—

बैठी जहाँ गुरु नारि समाज में,
गेह के काज में हैं बस प्यारी । इत्यादि ।

वार्ता—

"इहाँ संकेत-स्थान कान्ह गए, हौं न गई, इहि व्यंग्य तें वाच्यार्थ सुन्दर है ।"

इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ में अन्यत्र भी विषय का स्पष्टीकरण किया गया है। कहीं-कहीं हिंदी के लक्षण न कहकर संस्कृत के ग्रंथों के लक्षण ज्यों-के-त्यों रख दिए गए हैं। जहाँ आठ सात्त्विक भाव बताए गए हैं, वहाँ रसमंजरी के "स्तंभः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः" आदि श्लोक का उद्धरण दे दिया गया है।

इसी प्रकार तैंतीस व्यभिचारी भावों का निदर्शन कराते हुए काव्यप्रकाश का "निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथाऽसूया मदश्रमाः" इत्यादि श्लोक का उल्लेख कर दिया गया है * ।

---

* मेरे ध्यान से विषय की स्पष्टता एवं प्रसिद्धि होने के कारण कवि ने उसके अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं समझी है। संपादक

कुमारमणि का सिद्धान्त

यह ऊपर कह दिया गया है कि रसिकरसाल किसी खास सिद्धान्त को लेकर नहीं रचा गया है, और न हिंदी-भाषा के रीतिग्रंथों में इस प्रकार के शास्त्रार्थ की गुंजाइश ही थी, क्योंकि जिस उद्देश्य को दृष्टिगत करके रीतिग्रंथ लिखे गए हैं, वह बिलकुल भिन्न था। कवित्व-शक्ति-प्रदर्शन तथा रसिकता का परिचय देना उस समय के आश्रयदाताओं की रुचि के सर्वथा अनुकूल था, और जो गुण, शैली, शास्त्रार्थ, व्युत्पत्ति और सिद्धान्त-प्रतिपादन इत्यादि आचार्यत्व के परिपोषक गुण थे, उनकी आश्रयदाताओं के यहाँ प्रायः पूछ नहीं थी। समय का प्रभाव अवश्य पड़ता है, अतः तदनुसार हिंदी-कवियों ने आचार्यत्व का डंका संस्कृत-भाषा को लेकर बजाया, और अपने कवित्व तथा रसिकता का परिचय हिंदी-भाषा में ही देकर आश्रय व उदरपूर्ति का साधन प्राप्त किया। यही कारण था कि—तत्कालीन हिंदी के कवियों ने संस्कृत-साहित्य के सिद्धांतों को ज्यों-का-त्यों लेकर उन्हीं पर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया। उस परिस्थिति में इसकी गुंजाइश कहाँ थी कि—कोई कवि अपने सिद्धांत को लेकर उसकी विवेचना के लिये शास्त्रार्थ के झगड़े में पड़ता। हिंदी-साहित्य के रीतिग्रंथ के लेखकों ने—जिनकी गणना आचार्यों में की जाती है—वस्तुतः स्वतंत्र रूप से किसी सिद्धांत की स्थापना नहीं की है। यदि कहीं कुछ दिखाई पड़ता है, तो वह काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण

अथवा रसगंगाधर की झलक-मात्र है, जो यत्र-तत्र बिखरी हुई सी मिलती है।

रसिकरसाल में भी इसी प्रकार से स्वतंत्र रूप से किसी खास सिद्धांत का विवेचन नहीं है। काव्यप्रकाश, साहित्य-दर्पण आदि के मत को हिंदी-भाषा में समझाया गया है। संस्कृत-साहित्य में आचार्यों ने विशेषतया काव्य-लक्षण, तात्पर्यवृत्ति, रस-लक्षण, रसों की संख्या, रस का अनुभव अथवा चर्वणा कैसे होती है, एक अलंकार का दूसरे में समावेश, उनमें से किसी एक के भेद का निराकरण, आदि विषयों पर बड़े प्रौढ और विशद शास्त्रार्थ किए हैं, और उनमें मौलिकता, वैज्ञानिकता एवं पाण्डित्य तथा सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। हिंदी-साहित्य में वैसे शास्त्रार्थ की झलक भी नहीं पाई जाती। फिर रसिकरसाल में भी इस तरह के विवेचन की आशा रखना व्यर्थ है*।

रस के विषय में कुमार-मणि ने जो—

"लौकिक और अलौकिकै द्वै जानहु रस-ठौर।
लौकिक लोक-प्रसिद्ध अरु कवित नृत्य में और॥"

---

* कुमारमणि का केवल उद्देश यही था कि—वह काव्यप्रकाश के शास्त्रार्थ को हिंदी-भाषा-भाषियों के सम्मुख रखते। इसी कारण उन्होंने 'रसिक-रसाल' की रचना की है। "काव्यप्रकाश विचार कछु भाषा मे रचि हाल" आदि दोहा इसी अर्थ का स्पष्टीकरण करता है। अतः कवि काव्यप्रकाश के अतिरिक्त अन्य किसी स्वतंत्र सिद्धान्त का प्रतिपादन करने मे स्वतन्त्र नहीं था। संपादक

आदि जो ४-५ दोहे लिखे हैं, वे भी स्वतन्त्र न होकर संस्कृत के सिद्धांतों की छाया हैं। पिछले दो दोहों में शृंगार-रस की उत्तमता स्थापित की गई है, और नायक-नायिकाओं के भेद-प्रभेद, उनके विलासादि, आलम्बन-उद्दीपन-विभावादि, अनुभव, संचारी आदि का जो आगे रसिकरसाल में वर्णन किया गया है, उसकी पुष्टि इस विचार से की गई है कि—पाठक उसमें निरी रसिकता ही न देखें; बल्कि उसको उस श्रद्धा से देखें, जिससे श्रीकृष्ण भगवान् की लीलाएँ देखी जाती हैं।

संस्कृत-साहित्य में भरत मुनि के काल से लेकर जगन्नाथ पंडितराज के समय तक इन साहित्यिक सिद्धान्तों का इतना सूक्ष्म व विस्तृत विवेचन हो गया है कि—न तो कोई युक्ति, सिद्धान्त अथवा मत ही बाकी बचा है, और न नये अन्वेषण अथवा बारीकियाँ निकालने की कोई गुंजाइश ही रह गई है। ऐसी स्थिति में अपेक्षाकृत बहुत ही कम पनपे हुए हिंदी-साहित्य के आचार्यों अथवा कवियों से यह आशा रखना कि वे अपना ही राग गा निकलेंगे, और उसको श्रद्धा के साथ सुननेवाले विद्वान् मौजूद रहेंगे, दुराशा-मात्र ही है।

हिंदी-साहित्य में रीति-शास्त्र के अन्य आचार्य और कुमारमणि

खेद का विषय है कि जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य के प्रमुख आचार्यों के ग्रंथ मुद्रित हो जाने से सुलभ हो गये हैं,

उसी प्रकार हिंदी-साहित्य के आचार्यों के ग्रन्थ अद्यावधि सुलभ नहीं हुए है। प्रथम तो बहुत-से छपे ही नहीं हैं, और यदि कुछ छप भी गये हैं, तो वे इतने दुष्प्राप्य हैं कि सर्व-साधारण तक उनकी पहुँच नहीं हैं। कुछ प्राप्य भी हैं, तो वे एकाङ्गी हैं और उनसे एक आचार्य की दूसरे आचार्य से उत्तमता या हीनता की विवेचना नहीं की जा सकती। बहुत-से जो छपे हैं, वे या तो अलंकार पर हैं या नायिका-भेद पर।

प्रारंभ में उन आचार्यों का नाम बतला दिया गया है, जिनके ग्रंथ उत्तम कोटि के हैं, और जिन्होंने काव्य के सब अंगों पर कुछ न कुछ लिखा है, परंतु वे ग्रंथ प्रेस तक नहीं पहुँच सके हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उत्साही और साहित्य-"प्रेमी सज्जन उनके छपवाने का बीड़ा उठावें। उक्त ग्रंथों के आधुनिक शैली से मुद्रित और प्रकाशित होने पर हिंदी-काव्य-साहित्य का बड़ा उपकार होगा।

हिन्दी साहित्य के पारखी भिखारीदास को उच्च श्रेणी का आचार्य समझते हैं, परंतु यह बात कहाँ तक उचित एवं दृढ है, इस विषय में यहाँ एक-दो शब्द लिख देना अनुचित न होगा।

वास्तव में हिन्दी-साहित्य के रीति-शास्त्र तथा संस्कृत-साहित्य के रीति-शास्त्र में कोई भेद नहीं है। भाव, सिद्धान्त, परिभाषा, उदाहरण आदि सारी बातें वही हैं, जो संस्कृत-ग्रंथों में हैं, केवल भाषा ही नाम-मात्र की हिन्दी है। इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में आचार्य-पद उन्हीं को प्राप्त हुआ है, जिन्होंने

संस्कृत के रीति-शास्त्र के विषय को उसमें लिख दिया है। हिन्दी-साहित्य-ग्रंथों में इस नकल को जितनी पूरी मात्रा में दिखाया गया है, समालोचकों ने उसी हिसाब से उस आचार्य की गुरुता और लघुता का परिमाण निकाल लिया है। ऐसी स्थिति में हिन्दी के इन आचार्यों के काम की ठीक परख वही कर सकता है, जिसे संस्कृत के अलंकार-शास्त्र का पूरा ज्ञान हो। खेद का विषय है, आजकल हमारे हिन्दी-साहित्य के बहुत-से समालोचकों की समालोचनाओं में कई त्रुटियाँ ऐसी दिखाई पड़ती हैं, जिनसे तुरन्त ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उनको संस्कृत-साहित्य का ज्ञान कितना है।

संस्कृत-साहित्य में 'काव्यप्रकाश' और 'साहित्यदर्पण' इस विषय के अच्छे एवं प्रामाणिक ग्रंथ हैं, और उन्हीं के आधार पर हमारे हिन्दी-साहित्य के आचार्यों ने ग्रंथ लिखे हैं।

भिखारीदास का काव्यनिर्णय और कुमारमणि का रसिक-रसाल अधिकतर काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण के आधार पर ही लिखे गये हैं। परन्तु विषय-प्रतिपादन करने में और परिभाषा के उल्लेख करने में, दोनों में बड़ा अन्तर है। रसिक-रसाल में संस्कृत-साहित्य के इन ग्रन्थों का विषय करीब-करीब ठीक ही दिया गया है, परन्तु काव्यनिर्णय में बड़ी कमी है। काव्यनिर्णय में बहुत-से स्थान ऐसे मिलेंगे, जहाँ लक्षण अथवा परिभाषा अपूर्ण हैं अथवा अशुद्ध किंवा भ्रामक हैं।

इसी तरह और भी कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। काव्यनिर्णय के किसी अच्छे सटीक संस्करण में इन त्रुटियों का पूरा विवेचन किया जा सकता है, स्थानाभाव के कारण यहाँ ऐसा नहीं किया जा सकता ।

एक बात यहाँ खास तौर पर कह दी जाती है। विश्व-विद्यालय तथा अन्य शिक्षा-संस्थाओं में पाठ्यक्रम में और ऊँची परीक्षाओं में काव्यनिर्णय पाठ्यपुस्तक रक्खी जाती है; उद्देश्य यही होता है कि विद्यार्थी को साहित्य-शास्त्र का इससे कुछ ज्ञान हो जावे। परंतु 'काव्यनिर्णय' की त्रुटियों को देखते हुए ऐसा होना बड़ा कठिन है।

हिन्दी का समस्त साहित्य-शास्त्र अथवा रीतिशास्त्र संस्कृत के एतद्विषयक शास्त्र की बिलकुल नक़ल ही है; और इस नक़ल के लिहाज से, हमारी समझ में, काव्यनिर्णय का स्थान बहुत नीचे है। बहुत से और भी कई ग्रंथ हैं, जिनमें इस विषय का अच्छा, युक्तियुक्त विवेचन किया गया है इसलिये उनमें से किसी एक को पाठ्यक्रम के लिये चुना जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों को इस शास्त्र का वास्तविक ज्ञान हो सके । विद्या-प्रेमी और विद्या-हितैषी लोगों को तद्विषयक ग्रंथों के प्रकाशनार्थ जरूर प्रयत्न करना चाहिए। संस्कृत-साहित्य के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण को पढ़ लेने पर इस शास्त्र का काफ़ी अच्छा ज्ञान हो सकता है, और उच्च परी-क्षाओं में इन्हीं दो ग्रंथों का मान है, परंतु हिंदी-साहित्य में

ऐसे कोई दो ग्रंथ अभी तक दुनिया के सामने नहीं आये हैं, जिनको पढ़कर हमें इस विषय का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सके। कहा जाता है कि सोमनाथ ने समग्र काव्यप्रकाश का अच्छा अनुवाद किया था। और भी कई कवियों ने काव्य-प्रकाश के अनुवाद किए हैं। रसिकरसाल भी इस विषय का वस्तुतः एक उत्तम ग्रंथ है, और इससे भी विद्यार्थियों के इस विषय की कमी पूरी हो सकती है। आशा है, हिंदी-साहित्य के हितैषी लोग 'रसिकरसाल' का उचित आदर करेंगे*।"

रसिकरसाल का प्रकाशन



किसी कवि ने ठीक कहा है—"समय पर फलंति समाधयः।" वह यही उक्ति प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन में चरितार्थ होती है।

आज से १५ वर्ष पूर्व जब मैं अपना विद्यार्थि-जीवन समाप्त कर गृहस्थ बम्बई जाकर रहा (सं० १९८० की बात है), मेरे हृदय में स्वकीय पूर्वपुरुष 'कुमारमणि' कवि के प्रस्तुत ग्रंथ के मुद्रण कराने की अभिलाषा जागरूक हुई। हिंदीसाहित्यसम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के कारण हिंदी-साहित्य के प्रति रुचि होना स्वाभाविक ही था, इधर जातीय उन्नति का जोश हिलोरें ले रहा था। फलतः दोनों के सम्मिश्रण ने 'रसिकरसाल' के प्रकाशनार्थ उत्साह उत्पन्न कर दिया। लेखनी लेकर बैठा, तो दो मास के भीतर ही ग्रंथ की प्रेस-कापी तैयार कर ली। उसे सब प्रकार की सामग्री से सुसज्जित कर किसी संस्था की प्रतीक्षा करने लगा, जो इसे प्रकाशित कर मेरे उत्साह को द्विगुणित कर दे।

नागरी-प्रचारिणी सभा काशी से तदर्थ पत्र व्यवहार किया

गया, और उसे देखने के लिये ग्रंथ की प्रतिलिपि भेज दी गई। आशा थी कि ग्रंथ अब प्रकाशित हुए बिना न लौटेगा। पर... कुछ दिनों बाद उत्तर मिला—"अभी हमारे पास कार्य अधिक है। हम छापने को विवश हैं।" मेरा विचार था कि यह ग्रंथ नागरी-प्रचारिणी सभा को दे दूँ, यदि वह इसे प्रकाशित कर दे;:पर मेरा मनोरथ मेरे पास ही रह गया। क्या किया जा सकता था? उसके पास भी तो विशाल अप्रकाशित हिंदी-साहित्य प्रकाशित करने को पड़ा हुआ है?

इधर से निराश होकर मैंने उक्त ग्रन्थ हिंदी-साहित्य सम्मेलन के पास भेजा। वहाँ से वह निरीक्षणार्थ पं० पद्मसिंह शर्माजी के पास भेजा गया। कुछ दिनों लिखा-पढ़ी की दौड़धूप करने पर शर्माजी के अभिप्राय के साथ साहित्यसम्मेलन का भी उत्तर मिल गया। सम्मेलन के सामने हिंदी-प्रचार और परीक्षा-प्रचार का कार्य था। हाँ, पद्मसिंह शर्माजी के अभिप्राय से मुझे ग्रंथ की मौलिकता, उपादेयता तथाच प्रकाशन की आवश्यकता के प्रति और भी अधिक विश्वास बढ़ गया। उनके पत्र से ग्रंथ की शैली किस प्रकार रखनी चाहिये, यह विदित हो गया। उन्होंने लिखा था कि "कवि का अभिप्राय उन्हीं के शब्दों में प्रकट कर देना चाहिए।" बात यह हुई थी कि—रसिकरसाल की वर्तमानकालिक उपयोगिता हो जाने के लिये मैंने उसमें यत्र-तत्र आनेवाले गद्यांश को 'खड़ी बोली' का रूप दे दिया था, जो मुझे अब ज्ञात हुआ है कि वह मेरी

अनधिकार चेष्टा थी। मुमकिन है कि आज यह पत्र मेरे पास उपलब्ध नहीं होता। अस्तु।

उक्त अभिप्राय और दोनों ओर से 'हरा सा' जवाब मिल जाने पर मैंने निश्चय किया कि अभी न तो ग्रंथ के प्रकाशन का ही समय आया है और न कवि की प्रसिद्धि का ही। अतः जब कवि के 'भाग्योदय' होंगे, सब प्रकार का प्रबंध स्वतः हो जायगा।

जिस समय मैंने 'मिश्रबंधु-विनोद' पढ़ा, मुझे 'कुमारमणि' का संशोधित परिचय उसके द्वितीय संस्करण में भेजना पड़ा। उस समय उसमें मिश्रबंधुओं ने ग्रंथ के लिये अपना अच्छा अभिप्राय व्यक्त किया था। मैंने 'कुमारमणि' के विशेष चरित्र के परिज्ञानार्थ उनकी लिखित तथा स्वकीय हस्तलिखित-पुस्तकालय की पुस्तकों का परिशीलन कर यत्र-तत्र से ऐतिहासिक सामग्री संकलित की, जिसके फल-स्वरूप पाठकों की सेवा में कवि की जीवनी दी जा सकी है। इसके बाद 'रसिकरसाल' की प्रेस-कापी मेरे उत्साह के साथ एक बस्ते में बंद, मुख छिपाये गत १२ वर्षों तक पड़ी रही।

काल-चक्र ने कहिये अथवा मेरे भाग्य ने कहिये, मुझे कांकरोली-नरेश गो० श्री१०८ श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज के अध्यापन-कार्य पर नियुक्त किया, आज उस कार्य को करते मुझे उतना ही समय व्यतीत हुआ है।

स्वनाम-धन्य उक्त महानुभाव एक योग्य धर्माचार्य, विद्वान्,

तथा साहित्य-विद्या-कला-प्रेमी नवयुवक हैं। आपकी विद्याभि-रुचि, उत्साह, उदारता तथाच कार्य-तत्परता से।ही कांकरोली-जैसे स्थान में विद्या को विकसित होने का सद्भाग्य अधिगत हुआ है।

आपके उदार आश्रय में सं० १९८५ में विद्याविभाग की स्थापना हुई, और उसके अंतर्गत अन्य संस्थाओं को उद्भवित होने का अवकाश मिला, जिनमें से 'श्रीद्वारकेश कवि-मण्डल' भी एक है। द्वारकेश कवि मण्डल के द्वारा सं० ८९-९० की समस्या-पूर्तियों का संग्रह 'कविता-कुसुमाकर' नाम से दो भागों में प्रकाशित हुआ, जिसमें कुछ नवीन कवियों की संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं की सुललित कृतियों का समावेश था। कहना होगा कि हमारे कथित प्रयत्न का साहित्यिकों ने सराहा, और हमें पूज्य आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का भी शुभ अभिप्राय उक्त ग्रंथ पर प्राप्त हुआ।

किन्हीं मित्रों के परामर्शानुसार हमें यह अनुभव हुआ कि समस्या-पूर्तियों से साहित्य की ठोस सेवा नहीं होती, उसके लिये प्राचीन साहित्य-ग्रन्थों का प्रकाशन होना चाहिए, जो लुप्त होते जाते हैं,। जिसका कारण उनकी अप्रकाशित अवस्था है। प्राचीनता के प्रति प्रतिदिन जागरूक होनेवाली लोकाभि-रुचि के प्रदर्शन ने भी हमारे इस अनुभव को दृढ किया, और हमारे सम्मुख किसी प्राचीन साहित्य-ग्रंथ के प्रकाशन की कल्पना मूर्तिमती होने लगी।

होने के कारण अभी तक अप्राप्य एवं अनुपलब्धप्राय हैं।* सम्प्रति हमारे सामने एक ही उद्देश्य था, और वह था 'कवि कुमारमणि और उनके ग्रंथ को किसी प्रकार साहित्य-संसार के समक्ष लाने का।' इसमें कहाँ तक सफलता मिली है, यह या तो दयामय श्रीहरि ही जानते हैं, या जानेंगे सहृदय सज्जन, जो साहित्य-सुधा के प्यासे हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

कांकरोली
चै० शु० १ सं० १९९४

विनीत—
पो० कण्ठमणि शास्त्री, विशारद
कां० वि० शा० शु० सं०



---

* विद्याविभाग के दशाब्दी-महोत्सव का आयोजन हो जाने पर (सं० १९९४ के कार्त्तिक मास के आसपास) ऐसे ग्रंथों की कांकरोली में एक प्रदर्शनी की जायगी, जो वहाँ के विद्याविभागान्तर्गत 'श्रीसरस्वती-भण्डार' में सुरक्षित हैं। इसकी विशाल सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी।—संपादक

ग्रन्थ-प्रकाशन

पोतकूचि, आन्ध्र विप्रकुल-तिलकायमान,
जिनकी सुशाखा शाकल, वेद ऋक जान्यौ है;
प्रवर प्रसिद्ध पंच, गोत्र वत्स शील बुध—
भट्ट 'हरिवल्लभाभिधेय' पहिचान्यौ है।
तनुज तदीय 'गढहरा'* निवासी विज्ञ,
पण्डित 'कुमारमणि' भूप-सनमान्यौ है;
उनको विशाल हाल कीर्तिमय काव्य-कर्म,
'रसिकरसाल' ये प्रकाश मध्य आन्यौ है।

बालकृष्ण† चरणानुचर
तद्वंशज, बुध-दास;
कियो कण्ठमणि ग्रंथ को
सुद्रण, मंजु प्रकाश।
वेद भक्ति-युग चंद्र (१९९४) मित
संवत मधुर वसंत,
मुद्रित 'रसिक-रसाल' लखि
विलसतु सुहृद व संत।

विधेय—

कांकरोली
वैशाख शुक्ल १५
सं० १९९४

पो० कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'
'देशिकेन्द्र'

---

* 'गढहरा' ग्राम सागर जिला

† पितृचरण पं० बालकृष्ण शास्त्रीजी दतिया-नरेश-राजगुरु

होने के कारण अभी तक अज्ञात एवंच अनुपलब्धप्राय हैं *। सम्प्रति हमारे सामने एक ही उद्देश्य था, और वह था 'कवि कुमारमणि और उनके ग्रंथ को किसी प्रकार साहित्य-संसार के समक्ष लाने का।' इसमें कहाँ तक सफलता मिली है, यह या तो दयामय श्रीहरि ही जानते हैं, या जानेंगे सहृदय सज्जन, जो साहित्य-सुधा के प्यासे हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शन्तिः।

कांकरोली
चै० शु० १ स० १९९४

विधेय—
पो० कण्ठमणि शास्त्री, विशारद
का० वे० शा० शु० म०



* विद्याविभाग के दशाब्दी-महोत्सव का आयोजन हो जाने पर (सं० १९९४ के कार्त्तिक मास के आसपास) ऐसे ग्रंथों की कांकरोली में एक प्रदर्शनी की जायगी, जो वहाँ के विद्याविभागान्तर्गत 'श्रीसरस्वती-भण्डार' में सुरक्षित हैं। इसकी विशाल सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी।—संपादक

ग्रन्थ-प्रकाशन

पोतकूँचि, आन्ध्र विप्रकुल - तिलकायमान ,
    जिनकी सुशाखा शाकल, वेद ऋक जान्यौ है ;
प्रवर प्रसिद्ध पंच, गोत्र वत्स श्रील बुध—
    भट्ट 'हरिवल्लभाभिधेय' पहिचान्यौ है।
तनुज तदीय 'गढपहरा'* निवासी विज्ञ ,
    पण्डित 'कुमारमणि' भूप - सनमान्यौ है ;
उनको विशाल हाल कीर्तिमय काव्य-कर्म ,
    'रसिकरसाल' ये प्रकाश मध्य आन्यौ है।

बालकृष्ण† चरणानुचर
    तद्वंशज, बुध - दास ;
कियो कण्ठमणि ग्रंथ को
    मुद्रण, मंजु प्रकाश।
वेद भक्ति-युग चंद्र (१९९४) मित
    संवत मधुर वसंत ,
मुद्रित 'रसिक-रसाल' लखि
    विलसहु सुहृद व संत।

विधेय—

कांकरोली
वैशाख शुक्ल १५
सं० १९९४

पो० कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'
'देशिकेन्द्र'

---

* 'गढपहरा'-ग्राम सागर जिला

† पितृचरण पं० बालकृष्ण शास्त्रीजी दतिया-नरेश-राजगुरु

कवि कुमारमणि शास्त्री का वंश

———:*:———

मुख्य पूर्व पुरुष—

१ माधव पण्डितराज, २ रुद्रण, ३ बलभद्र, ४ मधुसूदन कविपण्डित

———:*:———

पं० रुद्रणाचार्य
|
पं० चतुर्भुज शा०
|
पं० हरिवंश शा०
├── १ पं० वेदमणि शा०
└── २ पं० कण्ठमणि शा०
  └── पं० हरिवल्लभ शा०
    ├── १ * पं० कुमारमणि शा०
    │ ├── पं० भोजराज शा० (हरिजन)
    │ │ └── पं० नारायण शा०
    │ │   └── पं० बिहारीलाल शा०
    │ │   ├── १ पं० मुकुन्द शा०
    │ │   │ ├── १ पं० बालकृष्ण शा०
    │ │   │ │ └── † पं० कण्ठमणि शा०
    │ │   │ ├── २ पं० श्रीकृष्ण शा०
    │ │   │ │ └── पं० गोपालकृष्ण
    │ │   │ ├── ३ पं० हरिकृष्ण शा०
    │ │   │ │ └── पं० हृषीकेश शा०
    │ │   │ └── ४ पं० उपेन्द्र शा०
    │ │   │   ├── पं० पुरुषोत्तम शा०
    │ │   │   └── पं० दामोदर शा०
    │ │   ├── २ पं० नारायण शा०
    │ │   ├── ३ पं० यदुनाथ शा०
    │ │   └── ४ पं० श्रीनिवास शा०
    │ └── पं० कृष्णदेव
    └── २ पं० वासुदेव शा०

---

* रसिकरसाल-ग्रन्थकर्ता

† रसिकरसाल ग्रन्थसम्पादक

रसिकरसाल-विषयानुक्रमणिका

—:०:—

इति विषयानुक्रमणिका



श्रीहरिः

प्रथम उल्लास

——:०:——

मङ्गलाचरण

कवित्त

गोपिन को मीत, सुर - नर - नाग - गीत,
गुन - गननि प्रतीत, पीतपट कटि धारे है;
मंजुल मुकुट, कंध कामरी, लकुट कर,
वन भटकत, नट - वेष को सु धारे है।
वच्छन को चारक, उचारक निगम को,
"कुमार" परिचारक के काजहिं सम्हारे है;
एकै मतिधारी लोक - वेद - निरधारी न्यान,
गिरिवरधारी, कान्ह ठाकुर हमारे हैं॥ १॥

सवैया

नन्दकमार "कुमार" सनातन, हौ भवसातन ज्ञान त्रिसेन्ने।
ईछत रावरी सेवा सरूप परीछत कै कै परीछत पेखे।
पूरन ब्रह्म परै पर तैं परमानँद हौ, परमानँद देखे।
ज्यौं सविता सब तारन में अवतारन में अवतार यौं लेखे॥ २॥

दोहा

सुरगुरु - सम मण्डन - तनय, बुध जयगोविंद ध्याइ।
कवित - रीति, गुरु - पद परसि अरु पुरुपोतम पाइ ॥ ३ ॥
काव्यप्रकाश - विचार कछु रचि भाषा में हाल।
पण्डित सुकवि "कुमारमनि" कीन्हौ "रसिकरसाल" ॥ ४ ॥

काव्य-प्रयोजन

दोहा

अर्थ - धर्म - जस - कामना लहियतु, मिटत विषाद।
सहृदय पावत कवित में ब्रह्मानन्द सवाद ॥ ५ ॥
तातैं कविता - ज्ञान में कीजे जतन विवेक।
न्यारौ वेद - पुरान तैं शब्द सुखद यह एक ॥ ६ ॥

काव्योत्पत्ति को हेतु

दोहा

शक्ति, शास्त्र, लौकिक सकल, परवीनता समेत।
कवि-शिक्षा, अभ्यास भनि कवित उपज को हेत ॥ ७ ॥
उपजत अद्‌भुत वाक्य जो शब्द अर्थ रमनीय।
सोई कहियतु कवित है, सुकवि कर्म कमनीय ॥ ८ ॥
ध्वनि इक अंगरु व्यंग पुनि चित्र नाम निरधार।
उत्तम, मध्यम, अधम कहि त्रिविध सुकाव्य विचार ॥ ९ ॥

काव्य ध्वनि

दोहा

वाच्य अर्थ ते व्यंग जहँ सुन्दर अधिक विशेष।
पण्डित तासों ध्वनि कहत, उत्तम काव्य सुलेख ॥ १० ॥

सवैया

खौर को राग छुट्यौ कुच को, मिटिगौ अधरारँग देख्यौ प्रकास हिं।
अंजन गौ दृग-कंजनि ते, तनु कंपत, तेरौ रुमंच हुलास हिं।
नेकु हितू जन को हित चीन्हौ न कीन्हौ अरी मन मेरो निरास हिं।
बावरी ! बावरी न्हान गई पै तहाँ न गई उहिं पीउ के पास हिं ॥११॥

इहाँ चतुरा उत्तमा नायिका के कहिवे में स्नान काज वाच्यार्थ तें, पीउ पास सुरत ही कों गई, यह 'उहि पिउ' पद ते व्यंग्यार्थ प्रधान सुंदर है। तदनुसार तें रतिकार्य रसांग प्रभृति व्यंग्य जानिये।

मध्यम काव्य

दोहा

वाच्य अर्थ ते व्यंग जहँ सुन्दर अधिक न लेख।
अगुरु व्यंग सो नाम कहि मध्यम काव्य विशेष ॥ १२ ॥

सवैया

बैठी जहाँ गुरुनारि - समाज में गेह के काज में है बस प्यारी।
देख्यौ तहाँ वन तें चलि आवत नन्दकुमार "कुमार" बिहारी ॥

लीन्हे लखी कर-कंज में मंजुल मंजरी वंजुल कुंज-विहारी।
चन्द-मुखी मुखचन्द की कान्ति सुभोर के चंद-सी मंद निहारी॥१३॥

इहाँ "कान्ह संकेत स्थान गये, हौं न गई" यह व्यंग्य तें वाच्यार्थ सुंदर है।

चित्र-काव्य

सवैया

राम नरिन्द की फौज के धाक हिये हहरी जल छीन ज्यों मच्छी।
दीह दरीनि दुरी गिरि कच्छनि सिघनि दीनता लच्छि न मच्छी॥
तच्छन एक कहूँ थिरलच्छ न लच्छ छनच्छबि सी तन लच्छी।
गौनअलच्छित, गच्छतींतच्छन, वंच्छतीपच्छ, विपच्छमृगच्छी॥१४॥

अर्थ-चित्र

कवित्त

विमल बिसाल हिमगिरि आलबाल लसै,
जाके मूल शेष के सहस फन जाल हैं,
रामजू की जस-लता दिन-दिन बाढ़ी जाके,
बिलासनि निवास कैलास-सृङ्ग हाल हैं।
डार गंगधार तिहुँलोक-गति निरधार,
कहत "कुमार" सुर-सरिता प्रवाल हैं;
मोतीहार हार नखतावलि अपार चंद्र-
सुधा को अधार फल फूल की प्रभा लहैं॥ १५॥

इहाँ अर्थालंकार रूपक-प्रधान है।

इतिश्रीहरिवल्लभभट्टात्मज - कुमारमणि - कृते
रसिकरसाले त्रिविधकाव्य - निरूपणं
नाम प्रथमोल्लासः ॥ १ ॥



द्वितीय उल्लास

उत्तम काव्य के भेद

दोहा

जामधि व्यंग प्रधान सो उत्तम काव्य बताय।
शक्ति लक्षणा मूल सो द्वैविध व्यंग जताय ॥ १ ॥
वस्तु - रूप रस - रूप त्यौं भूषन - रूप प्रमान।
शक्ति-मूल जो व्यंग है तीन भाँति इमि जान ॥ २ ॥
व्यंग लक्षणा मूल सो द्वैविध गनि इह ठौर।
अर्थान्तर-संक्रमित इक अधिक तिरस्कृत और ॥ ३ ॥
व्यंग सकल इमि पंचविधि गन्यौ, कवित के ठाम।
रस व्यंग सु अलच्छ-क्रम और लच्छ-क्रम नाम ॥ ४ ॥

अर्थ-व्यंग जानिबें कों वृत्ति-विचार कहियतु है:—

दोहा

रचै शब्द में अर्थ कौं बोध सुवृत्ति प्रमान।
शक्ति लच्छना व्यंजना तीन नाम सौं जान ॥ ५ ॥
तहँ वाचक अरु लाच्छनिक व्यंजक शब्द समर्थ।
वाच्य, लक्ष्य अरु व्यंग्य तह क्रम तें उपजत अर्थ ॥ ६ ॥
शक्ति - वृत्ति तें मुख्य तँह वाच्य अर्थ है होत।
लख्यौ शक्तिसम्बन्ध में कहि लक्ष्यार्थ उदोत ॥ ७ ॥

अनियत बोध जु शब्द में उपजत भाँति अनेक।
जानि व्यंजना-वृत्ति तें व्यंग्य-अर्थ सुविवेक ॥ ८ ॥

वाच्यार्थ

दोहा

जाको जँह संकेत है तँह सुनि शब्द समर्थ।
बिन बिलम्ब जो समुझिये वहै वाच्य है अर्थ ॥ ६ ॥

यथा:—

निरखि नंद जसुमति विकल व्याकुल गोपी-ग्वाल।
गर्व सर्व हरि को हर्यौ कर धरि गिरि गोपाल ॥१०॥

इहाँ वाच्यार्थ है। तथा प्रकरण तें 'हरि' शब्द में इन्द्र वाच्यार्थ है।

अनेकार्थ में वाच्यार्थ को निर्णय—

दोहा

गनि संयोग[1] वियोग[2] पुनि सहचर[3] तथा विरोध[4]।
अर्थ[5] प्रकरन[6] चिन्ह[7] कछु और शब्द सँग[8] बोध ॥११॥
त्यौं समर्थता[9] योग्यता[10] पाइ देश[11] समयादि[12]।
अनेकार्थ सम्बन्ध में वाच्य कीजिये यादि ॥१२॥

क्रम तें, यथा—

कवित्त

चक्रधरै हरि[1] युद्ध-जय कौं, विषम डीठ[2],
हीन हर देव को मनोरथ अक्रूत कै;

काम राम लछमन[३] के, राम अरजुन[४] से
सहाय कपिराज[५] काज कीन्है हैं प्रभूत के।
सिन्धु[६] को उतरि, हरि सीता[७] को कलेस, जारि
कनक[८] को पुर, भय मेटे पुरुहूत के;
मन तें अगौन गौन ल्याइ पहुँचाइ द्रौन[९],
कौन कौन विक्रम बखानौ पौन-पूत[१०] के ॥१३॥

इहाँ (१) चक्र-संयोग तें हरि=विष्णु (२) विषम डीठ वियोग तें हर=महादेव (३) लक्ष्मण सहचर तें राम=दाशरथि, (४) विरोध तें रामार्जुन, परशुराम, कार्तिवीर्य (५) अर्थ तें कपिराज=बाली, सुग्रीव, (६) प्रकरण तें सिन्धु=सागर, (७) दुःख-चिह्न तें सीता=जानकी, (८) पुर शब्द संयोग तें कनक=हेम, (९) सामर्थ्य तें द्रौन=गिरि, (१०) योग्यता तें पौन-पूत=हनुमान वाच्य है। यथा वा—

दोहा

अगनित मनिगन सम जगति गगन अँगन मैं ज्योति[११]।
बिभा बिभावसु[१२] मैं सरस बिभावरी में होति ॥१४॥

इहाँ (११) गगन देश तें ज्योति=नक्षत्र, (१२) रैन समय तें विभावसु=अग्नि, वाच्य है।

जहाँ प्रकरणादि न होंइ, तहाँ दोऊ अर्थ व्यंग है। यथा—

दोहा

घन बनमाल, बिसाल छवि सखि! घनकांति गँभीर।
केलि-धाम, अभिराम लखि स्याम कलिन्दी-तीर ॥१५॥

(१) शब्दशक्तिभव

दोहा

शब्द फिरै जो फिरत सो शब्दशक्ति-भव लेख।
शब्द फिरै थिर व्यंग्य सो अर्थशक्ति-भव देख ॥१८॥

जैसे पयोधर शब्द में जो उरोज व्यंग्य है सो तात्पर्य मेघ, घनादि शब्द कहैं नाहीं होत, यातें शब्द शक्ति-भव है।

(२) अर्थशक्ति-भव। यथा—

दोहा

ईखन सुषमा-पान कों सुख चाहत कत बाल!
निरखत पिय मुख-चन्द ये रहत न सूधे हाल ॥ १९ ॥

इहाँ मुख-चंद्र अर्थ तें नैननि में कमल-तुल्यता, पान तें छवि में सुधा-तुल्यता व्यंग्य है, आनन-विधु, छवि-पान इत्यादि पर्याय हू के कहै होत है। यातें अर्थशक्ति-भव है। व्रीडाभाव हू व्यंग्य है। एक पद में ये दोऊ भेद हैं।

वाक्य में (३) उभयशक्ति-भव होत है। यथा—

सवैया

ज्यौं भरम्यो न रम्यो कित हू नित ही चित हूँ त्रय-ताप तपायौ।
वेद पुराननि ढूँढि फिर्यौ रचि तीरथ संयम नेम उपायौ॥
कुंजनि आजु 'कुमार' मिल्यौ जु अहीर की छोहरियानि छिपायौ।
पीर हरी हिय धीर धर्यौ ब्रज-बीथी पर्यौ हरि हीरा हौं पायौ॥

इहाँ चौथी तुक के वाक्य में "हीरा पायौ" जो परमानन्द पाइबो व्यंग्य है, सो उभयशक्ति-भव है।

शक्तिभव अलंकृति व्यंग्य, यथा—

सवैया

राम नरिन्द! तिहारे पयान, धुकै धरनीधर धारनहारे।
भीषम ग्रीषम सूरज तेज प्रताप के ताप के पुंज पसारे॥
रोष सतोष निहारत ही अरि गंजन हौ जन-रंजन भारे।
दुज्जन सज्जन को तुम हौं रन-रुद्र, दया के समुद्र निहारे॥२१॥

इहाँ रुद्र=भयानक वा उग्र। दया के समुद्र=मर्यादा-युक्त, वा मुद्रादानी, यह अर्थ तें रुद्र से समुद्र से हो, यह उपमा व्यंग्य है।

रसव्यंग्य अनेक भाँति है, सो आगे कहिबी।

लक्षणा-मूल (१) अर्थांतरसंक्रमित व्यंग्य। यथा—

दोहा

समुझन गूढ़ौ मूढ़ जन, लहि धन कौ परकास।
तियनि सिखावत आवन हिं जोवन विविध विलास॥२२॥

इहाँ सिखाइबो चेतन धर्म है, तातें अचेतन जोबन धन में लक्षित है, तामें बिन प्रयास सीखिबौ व्यंग्य है, सो प्रकट ही है।

कहूँ लच्छनामूल व्यंग्य अप्रकट है। यथा—

सवैया

आनि अचानक आनन में विकसी मुसक्यानि की बानी सुहाई।
नैननि में चपलाई "कुमार" वसीकर गौन बसी गरबाई॥

कान्ति प्रकास उरोज-कलोनि लसी बिलसी बसि वैन सुधाई।
अंगनि देखी लुनाई जुन्हाइ सी छाई अछाई नई तरुनाई ॥ २३ ॥

इहाँ बिकसिवौ फूल धर्म है, बसिवौ प्रभृति चेतन धर्म है—सो आनन, नेत्र, गति, उरोज, बचन, जोवन प्रभृति में लच्छित है। तहाँ बिकसिवे में सुगन्ध फैलिबौ, बसिवे में नित्यानुराग, बिलसिवे में युक्तानुराग, मिलन, योग्यता प्रभृति गूढ व्यंग्य है।

लक्षणा-मूल (२) अत्यंत-तिरस्कृत व्यंग्य। यथा—

सवैया

कीन्हीं भलाई भली हमसौं, सु कहा कहिये जग में जस लीजौ।
जाहिर है घर बाहिर रीति प्रतीति यहै पर-स्वारथ छीजौ॥
काज सुधारत ही सबको निसि बासर एपे सदा सुख कीजौ।
हौं जगदीस सौं माँगौं असीस जु कोटि बरीसक लौं तुम जीजौ॥

इहाँ विपरीत लच्छना सों अपकारी सों उक्ति है। हम सों लटाई करी, बिराने लटे कौ। आप धन छीजौ सर्व बिसासी हौ, दुख देखौ, वेगि मरौ इत्यादि व्यंग्य रूढ है।

व्यंग्य के प्रकटता के हेतु—

दोहा

वक्ता, श्रोता, काकु, थल, वाक्य, अर्थ, ढिग और।
देश, समय, प्रकरन प्रभृति रचत व्यंग्य बहु दौर ॥२५॥

(१) वक्ता के विशेष तें व्यंग्य। यथा—

सवैया

तोहि गई सुनि कूल कलिंदि के, हौंहु गई सुनि हेलि हहारी।
भूली अकेली "कुमार" कहूँ डरपी लखि कुंजन-पुंज अँध्यारी॥
गागर के जल के छलकै, घर आवत लौं तन भींजिगौ भारो।
कंपत त्रासनि ये री विसासिनि! मेरी उसास रहै न सम्हारी॥२६॥

इहाँ कहैया (वक्ता) के विशेष तें स्वेद, कम्प, उसास प्रभृति सुरत-कार्य दुराइयो व्यंग्य है।

(२) सुनैया (श्रोता) के विशेष तें व्यंग्य। यथा—

सवैया

सूनौ परयौ सब मन्दिर है, बस रैनि पधारियो पंथ! सबेरे।
मेरी रहै इत सेज लखौ, उत सोवत सासु, सुनै जु न टेरे॥
सूझत साँझ परै तुमको न "कुमार" कही यह बात उजेरे।
पंथियमीत! डराति हौं जो कहुँ गात गिरौ जिनि ऊपर मेरे॥२७॥

इहाँ श्रोता के विशेष ते संभोग कोवौ व्यंग्य है।

(३) काकु जो स्वरविशेष तातें व्यंग्य। यथा—

दोहा

मोहन-मोहन को रचति भूषन दरपन जोहि।
बिन-भूषन हू तरुनि वे पिय हिय लेहि न मोहि?॥२८॥

इहाँ प्रीतम मोहिवे को लीला विलासादि भूषण और है, यह काकु तें व्यंग्य है।

(४) अर्थ-विशेष तें व्यंग्य । यथा—

सवैया

माइ रहै खुनस्यानी, अहै गुरु-नारिन में छन हू न छमै है।
कैसे सखी! उत खेलन आइये, काज "कुमार" सबै घर मैं है॥
औसर चौसर के गुहिबे को न, कुंजकलीनि हू वीनि हमै है।
धाम के काम कहूँ बिसराम बनै दिन माँझ कै साँझ समै है॥२९॥

इहाँ अर्थ तें तथा कामी को (ढिंग) पाइ बाहिर मिलाप न बनिहै, यहै व्यंग्य है। और कुंज थल तें, चौसर इहि मिस तें, धाम इहि देश तें, साँझ समय तें, घर ही मिलाप बनिहै, यह उपदेशहू व्यंग्य है।

(५) अन्यढिंग पाइ व्यंग्य विशेष । यथा—

दोहा

मेरे कंकन-लाल-तन लाल! लखत हौ ईठि।
हौं वह, वे तुम, पै न अब वह सनेह की डीठि॥ ३०॥

इहाँ मेरे कंकन-रतन में सखी-प्रतिबिम्ब देखि औरै डीठि हती, सखी गयें औरे डीठि भई, यह प्रच्छन स्नेह कहिवौ व्यंग्य है।

(६) प्रकरण तें व्यंग्य। यथा—

दोहा

दई! इहाँ ठाड़े कहाँ? यह भय-ठान मसान।
सुत-सनेह तजि जाउ घर, हिय रचि कठिन पखान॥३१॥

यथाच—

सवैया

गीध की बातनि तासौं सनेह, तजौ जिय जो उपजें सुख गाहै ।
काल को ख्याल न जानिये हाल जु मेटै रचै छिन में मन चाहै ॥
भूत परेत को साँझ समौ, यह देखौ घरीक धौं होत कहा है ।
सोनो-सौ गात सलोनौ सुजात तजै सुत जात लजात न काहै ॥३२॥

इहाँ गीध दिन ही में भच्छनकाज-छम है, सो लोगनि टारतु है । स्यार राति महँ भच्छन-छम है, तातें दिन भर राख्यौ चाहतु है ।

यह व्यंग्य अपनी अपनी कार्य-सिद्धि गृध्र गोमायूपाख्यान प्रकरण ही तें है ।

(७) कहूँ चेष्टा विलासादि तें व्यंग्य । यथा—

दोहा

इमि उरोज मुख ओज इमि ये दिन एसे नैन ।
एसी वैस बनी वनी रची सची-सी ऐन ॥ ३३ ॥

इहाँ नृत्य आदि में हस्तकादिचेष्टा हो ते उरोज, मुख, वैस प्रभृति में दाड़िम, चन्द्रादि की उपमा, तथा अंगुलिगननादि में वैस प्रमानादि व्यंग्य हैं ।

यथाच—

सवैया

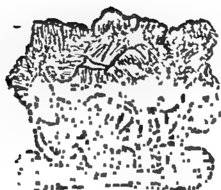
प्यारे ! इसारति दीनी विलोकि कें प्यारी तहाँ दृग चाह सौं दीनै ।
केलि विलासनि सौं सरसानी हँसै अरसानी सनेह नवीनै ॥

नैन चलाय 'कुमार' त्यौं चंचल ओढ़ि लियौ मुख अंचल झीनै।
बैंदी सु धारि सिधारि गली, उर ऊपर धारि दुवौ भुज लीनै॥

इहाँ चेष्टा ही तें निद्रासमय में आगम, प्रनाम, विदा कीबौ, भेंट कीबौ प्रभृति व्यंग्य है।

——:०:——

इति श्रीहरिवल्लभ भट्टात्मज-कुमारमणि-कृते रसिकरसाले
चतुर्विधव्यंग्य-कथनं नाम
द्वितीयोल्लासः। २॥



तृतीय उल्लास

शब्द-शक्तिभव रस-व्यंग्य

रसबोध में विभावानुभावादिकौ क्रम नाहीं लक्षित होत, शतपत्र-भेदरीतितें तातें अलक्षितक्रम नाम है औरव्यंग्य लक्षितक्रम नाम है।

रस-व्यंग्य के भेद

दोहा

रस अनुभाव दुहून के त्यौं आभास बखान।
भाव संधि सम उदय त्यौं भाव सबलता जान॥ १ ॥
रस बिन भाव, न भाव बिन रस, यह लख्यौ विशेष।
स्वादु विशेपहि तें सबै भाव प्रभृति रस लेख॥ २ ॥
आनँद अंकुर रूप तब भाव थाइ संचारि।
विभावादि कहवाइ वह बढ़ि रस होत विचारि॥ ३ ॥
ज्यौं मरिचादि सितादि मिलि पानक स्वादु विशेपि।
विभावादि थाई मिलै रसै होत त्यौं देखि॥ ४ ॥
लौकिक तथा अलौकिकै द्वै जाँनहु रस ठौर।
लौकिक लोक-प्रसिद्ध त्यौं, कवित नृत्य में और॥ ५ ॥
शृंगारादिक लोकगत कवित नृत्य में ल्याइ।
होत अलौकिक है सबै रस आनन्द बढ़ाइ॥ ६ ॥
सकल-लोक रस के सिरै आनँद-लोक विलच्छ।
रसै एक अनुभवत हैं पंडित सहृदय दच्छ॥ ७ ॥

आनँदवृंद सुकान्ह रस जगत ताहि कौ रूप।
तातें तिय पुरुषादि-गत सब रस कान्ह-सरूप ॥ ८ ॥
वहै थाइ संचारि वह, वह विभाव अनुभाव।
रस स्वरूप सब कान्ह इक लख्यौ अभेद सुभाव ॥ ९ ॥
मिलि विभाव अनुभाव तहँ संचारी मिलि भाव।
रति प्रभृतिक थिरभाव पुनि रस को रचत भन्याव ॥१०॥
गनि सिंगार रस, हास रस, करुन, रौद्र अरु वीर।
वत्सल, भय, वीभत्स त्यौं अद्भुत, शांत सुधीर ॥११॥

श्रृंगार-रस-लक्षण

दोहा

कृष्ण देव, रँग श्याम त्यौं रति थाई श्रृंगार।
गनि संयोग वियोग द्वै तासु भेद निरधारि ॥१२॥

(१) संयोग श्रृंगार

दोहा

जहाँ परसपर अनुसरत दरस-परस सुखसार।
पिय-प्यारी कौ मिलन तहँ गनि सँयोग सिगार ॥१३॥

यथा—

सवैया

दोऊ मिले रस के बस बातनि हास-विलासन के रचि बैननि।
आपनी-आपनी चाह"कुमार"दुरावत ताहि प्रतीति की सैननि॥
कंज दियौ करता मिस प्रीतम प्यारीकी बाँह गही सुख चैननि।
लाज लही तिय नाहीं कही पे निहारि रही अधमूँदे से नैननि॥१४॥

इहाँ नायक-नायिका आलम्बन हैं। विलासादि उद्दीपन, भुजा-क्षेप कटाक्षादि अनुभाव हैं, व्रीडा, हर्षादि संचारी। इन मिलि पूर्ण रति स्थायी सुहृदय-हिये शृंगार-रस होत है, ऐसे सब रस होत है ऐसे सब रसहूँनि जानिए।

संयोग के द्वै भेद

दोहा

प्रथम भये संयोग में भयौ न विरह विचार।
अमित विप्रलम्भक तहाँ रस सिंगार निरधार ॥१५॥

यथा—

सवैया

केलि कै रंग रची रति दूसरै द्यौस मिले नव संग तमी के।
आनन में श्रम के जल की झलकी कन काँतिन भाँति कमी के॥
आरसी में प्रतिबिम्ब भई यौं "कुमार" लखी छवि साथ रमी के।
इंदु सों प्रीति करी अरविन्द मनौ अरविन्द में विन्दु अमी के॥१६॥

दूसरो भेद लक्षण

दोहा

जैसे वसन कषाय में चढ़त अधिक रंग जोग।
त्यौं वियोग पर होत है अधिक सुखद संयोग ॥१७॥

यथा—

सवैया

लोचन नीर अन्हाय के सायक पंच को ताप सह्यौ तन सूरौ।
सेज विधान तज्यौ परिधान "कुमार" बिसारौई पान कपूरौ॥

आनँदवृंद सुकान्ह रस जगत ताहि कौ रूप।
तातें तिय पुरुषादि-गत सब रस कान्ह-सरूप ॥ ८ ॥
वहै थाइ संचारि वह, वह विभाव अनुभाव।
रस स्वरूप सब कान्ह इक लख्यौ अभेद सुभाव ॥ ९ ॥
मिलि विभाव अनुभाव तहँ संचारी मिलि भाव।
रति प्रभृतिक थिरभाव पुनि रस को रचत भन्याव ॥१०॥
गनि सिंगार रस, हास रस, करुन, रौद्र अरु वीर।
वत्सल, भय, वीभत्स त्यौं अद्भुत, शांत सुधीर ॥११॥

श्रृंगार-रस-लक्षण

दोहा

कृष्ण देव, रँग श्याम त्यौं रति थाई श्रृंगार।
गनि संयोग वियोग द्वै तासु भेद निरधारि ॥१२॥

(१) संयोग श्रृंगार

दोहा

जहाँ परसपर अनुसरत दरस-परस सुखसार।
पिय-प्यारी कौ मिलन तहँ गनि सँयोग सिगार ॥१३॥

यथा—

सवैया

दोऊ मिले रस के बस बातनि हास-विलासन के रचि बैननि।
आपनी-आपनी चाह "कुमार" दुरावत ताहि प्रतीति की सैननि ॥
कंज दियौ करता मिस प्रीतम प्यारीकी बाँह गही सुख चैननि।
लाज लही तिय नाहीं कही पे निहारि रही अधमूँदे से नैननि ॥१४॥

इहाँ नायक-नायिका आलम्बन हैं। विलासादि उद्दीपन, भुजा-क्षेप कटाक्षादि अनुभाव हैं, व्रीडा, हर्षादि संचारी। इन मिलि पूर्ण रति स्थायी सुहृदय-हिये श्रृंगार-रस होत है, ऐसे सब रस होत है ऐसे सब रसहूँनि जानिए।

संयोग के द्वै भेद

दोहा

प्रथम भ ग संयोग में भयौ न विरह विचार।
अमित विप्रलम्भक तहाँ रस सिंगार निरधार ॥१५॥

यथा—

सवैया

केलि कै रंग रची रति दूसरै द्यौस मिले नव संग तमी के।
आनन में श्रम के जल की झलकी कन काँतिन भाँति कमी के॥
आरसी में प्रतिबिम्ब भई यौं "कुमार" लखी छवि साथ रमी के।
इंदु सों प्रीति करी अरविन्द मनौ अरविन्द में बिन्दु अमी के॥१६॥

दूसरौ भेद लक्षण

दोहा

जैसे वसन कषाय में चढ़त अधिक रंग जोग।
त्यौं वियोग पर होत है अधिक सुखद संयोग ॥१७॥

यथा—

सवैया

लोचन नीर अन्हाय के सायक पंच को ताप सह्यौ तन सूरौ।
सेज विधान तज्यौ परिधान "कुमार" बिसारौई पान कपूरौ॥

ऐसे वियोग मिलै सुघरी सुखपूर अपूरब भौ बढ़ि रूरौ।
साध्यौ महातप ताकौ दुहूनि मिलेई मिल्यौ फल आनँद पूरौ॥१८॥

वियोग शृंगार-लक्षण

दोहा

परिपूरन रति है जहाँ इष्ट संग नहिं देखि।
विप्रलंभ शृंगार तहँ मानत सुकवि विशेषि॥१९॥
पूर्वरागतें मानतें त्यौं प्रवासतें ल्याइ।
उत्कंठा तें श्राप तें पाँच भाँति सुबताइ॥२०॥

पूर्वानुराग-लक्षण

दोहा

सुनै लखै बाढ़त विरह बिन मिलाप अनुराग।
विरह जु तरुणी तरुन को भनि सो पूरब राग॥२१॥
थिर न[1]सोभि, सोभित[2]न थिर, थिर सोभित[3]अनुराग।
नील[1], कुसुम[2], मंजीठ रँग[3] त्रिविध सु पूरवराग॥२२॥

यथा—

कवित्त

बैठी कर मंजन झरोखै तू निहारि जब,
तब तें "कुमार" बढ़्यौ अभिलाषवृंद है;
रूप गरबीली बाल हाल सुधि कीन्ही क्यों न,
दीन सुधि-हीन भौ अधीन नँदनंद है।

प्यारे को मृदुल मन मुसक्यानि फासी डारि,
फेर-फेर हन्यौ दृग - कोरनि अमंद है;
अलक गुननि बाँधि, भृकुटी जँजीर साँधि,
उरज गुरज बीच राख्यौ करि बंद है ॥२३॥

दोहा

दूति, सखी, बंदी मुखहिं गुन को सुनबौ जानि।
चित्र, स्वप्न, साक्षात त्यौं दरसन तीन प्रमानि ।२४॥

(गुण श्रवण) यथा—

सवैया

छैल छबीले की बातें सुनै छकि सी रहै मादक मानौ पियो है।
ताहि को नाम "कुमार" सुहात है ताही को गीत कवित्त कियो है॥
रूप बखान सखोन कियौ तब तें सुनिबेही को नेम लियो है।
कान्हर के गुनगान नितू सुनि ही सुनि कीनौ निसून हियो है ॥२५॥

लिखिबौ त्रिविध है।

(१ चित्र-दर्शन) यथा—

कवित्त

कागद में पाटी में 'कुमार' भौन भीतिन में,
चतुर चितेरिन सौं लिखति लिखाई है;
आरसी निहारि निज मूरति को अनुहारि,
मिलिबौ बिचारि चित्त रीझति रिझाई है।
जकी सी छकी सी अनमिप डीठ ह्वै रही सी,
बोलति न डोलति थकी सी मोह छाई है;

रूप सौं विचित्र कान्ह-मित्र को विलोकि चित्र,
चित्रिनि भई तू चित्र पूतरी सुमाई है ॥२६॥

(२ स्वप्न-दर्शन)

दोहा

फनि, नर, किन्नर, सुर, कुवँर लिखे लखे सब ओर।
है दधिचोर किसोर कौ यह किसोर चित-चोर ॥२७॥

(३ साक्षात् दर्शन) यथा —

कवित्त

झूलति हिंडोरे में थकी सी तू निहारि प्यारो,
चित भयौ थकित लखत रूप तेरौ है;
कहत "कुमार" धार त्रिवली ललित पैरि,
रोमराजी भौंर पर्यौ भ्रमत घनेरौ है।
कुच गिरि चढ़त चकित ह्वै चिबुक बीच,
तिल की चिलक छवि छलक में फेरौ है।
बेसर उरझि रही अलक बिलोकि तेरी,
ललक उरझि रह्यौ रीझि मन मेरौ है ॥२८॥

मानतें विरह

(१ लघुमान)

दोहा

जानि आन तिय छाँह निजु दर्पन में पियं पास।
रूसि रही पिय हँसि गही लही दुहुन रस-रास ॥२९॥

(२ मध्यम मान) यथा—

सवैया

धोखै परोसिनि वाम को नाम सुन्यौ पिय के मुख मानि सही तैं।
खेलति चौपर प्रीतम पास "कुमार" न त्यौं रसरास लही तैं ॥
काहे को ठानति नींद बहान हहा ? नहि मानत मेरी कही तैं ।
बानि परी, कहा जानि परी रिसतानि परी पट जो अबही तैं॥२०॥

(३ गुरु मान) यथा—

सवैया

रैनि जग्यौ हठ देखि घनो अलसान लग्यौ मनौं केलि दियौ है।
भोर लौं जागि "कुमार" सखी पछिताई पछाँह को छोर लियौ है॥
प्रीतम पाँय पर्यौइ चह्यौ, न कह्यौ सखि मानै, यौं मान कियौ है।
तेरे कठोर उरोज की संगति जानिये ओर कठोर हियौ है ॥२१॥

(मान छुड़ावन के भेद)

दोहा

साम, दाम, नति, भेद रचि विरस, रसांतर ठानि ।
मान छुड़ावन के कहे छह उपाय ये जानि ॥२२॥
साम प्रभृति जहँ बनत नहिं तहाँ विरस को लेखि ।
त्रास, हास करि मान को त्याग, रसान्तर देखि ॥२३॥

प्रवासवियोग-लक्षण

दोहा

दूरदेश-थिति तें जहाँ बनै न मिलिबौ जोग ।
भयौ, होत, ह्वैहै तहाँ त्रिविध प्रवास-वियोग ॥ २४ ॥

रूप सौं विचित्र कान्ह-मित्र को विलोकि चित्र,
चित्रिनि भई तू चित्र पूतरी सुभाई है ॥२६॥

(२ स्वप्न-दर्शन)

दोहा

फनि, नर, किन्नर, सुर, कुवँर लिखे लखे सब ओर।
है दधिचोर किसोर कौ यह किसोर चित-चोर ॥२७॥

(३ साक्षात् दर्शन) यथा —

कवित्त

झूलति हिंडोरे में थकी सी तू निहारि प्यारो,
चित भयौ थकित लखत रूप तेरौ है;
कहत "कुमार" धार त्रिवली ललित पैरि,
रोमराजी भौंर पर्‌यौ भ्रमत घनेरौ है।
कुच गिरि चढ़त चकित ह्वै चिबुक बीच,
तिल की चिलक छवि छलक में फेरौ है।
बेसर उरझि रही अलक विलोकि तेरी,
ललक उरझि रह्यौ रीझि मन मेरौ है ॥२८॥

मानतें विरह

(१ लघुमान)

दोहा

जानि आन तिय छाँह निजु दर्पन में पिय पास।
रूसि रही पिय हँसि गही लही दुहुन रस-रास ॥२९॥

(२ मध्यम मान) यथा—

सवैया

धोखे परोसिनि वाम को नाम सुन्यौ पिय के मुख मानि सही तैं।
खेलति चौपर प्रीतम पास "कुमार" न त्यौं रसरास लही तैं ॥
काहे को ठानति नींद वहान हहा ? नहि मानत मेरी कही तैं।
वानि परी, कहा जानि परी रिसतानि परी पट जो अवही तैं॥३०॥

(३ गुरु मान) यथा—

सवैया

रैनि जग्यौ हठ देखि घनौ अलसान लग्यौ मनौं केलि दियौ है।
भोर लौं जागि "कुमार" सखी पछिताई पछाँह को छोर लियौ है॥
प्रीतम पाँय परयौइ चह्यौ, न कह्यौ सखि माने, यौं मान कियौ है।
तेरे कठोर उरोज की संगति जानिये ओर कठोर हियौ है॥३१॥

(मान छुड़ावन के भेद)

दोहा

साम, दाम, नति, भेद रचि विरस, रसांतर ठानि।
मान छुड़ावन के कहे छह उपाय ये जानि ॥३२॥
साम प्रभृति जहँ बनत नहिं तहाँ विरस को लेखि।
त्रास, हास करि मान को त्याग, रसान्तर देखि ॥३३॥

प्रवासवियोग-लक्षण

दोहा

दूरदेश-थिति तें जहाँ बनै न मिलिवौ जोग।
भयौ, होत, ह्वैहै तहाँ त्रिविध प्रवास-वियोग ॥ ३४ ॥

(१ भयो [भूत] वियोग) यथा—

सवैया

कीन्ही हरींन सुध्यौ सुहरी सुधि औसर हू में हरी धरनी के।
औधि बिसूरि बिसूरि "कुमार" बढ़ी जिय पीर सरोजमुखी के॥
चाप चढ़्यौ घन में लखि कै, तन ताप बढ़्यौ बिन आगम पी के।
वारि विमोचत वारिद, लोचन वारि है मोचत लोचन ती के॥३५॥

(२ वर्तमान विरह) यथा –

सवैया

वारक जाहि निहारि "कुमार" सुजीवन जीवन आपनी कीजै।
नंद को नंद सु आनँदकंद बिदेस चल्यौ तन छीन है छीजै॥
जो बिन जीवन जीवन नाहिं सु बात सुनै हिय नाहिं पतीजै।
जीवन है बिन जीवन हू व्रजजीवन हू बिन जो अब जीजै॥३६॥

(३ भविष्यति वियोग) यथा—

कवित्त

प्रात सुनै जात परदेस कान्हप्यारे ! तुम,
प्यारी के विरह ताप हिये न समाति है;
जानति "कुमार" मिलि बिछुरे को दुःख नाहिं,
पूछति फिरति सखियानि अकुलाति है।
आधौई न बीत्यौ जाम आधे तन कीन्ही काम,
कैसे धौं बितावै वाम आगे द्यौस, राति है;
संग हू परी पे खरी तलफति तलप में,
अलप सलिल परी सफरी दिखाति है॥ ३७॥

यह कार्यवश तें है।

(गुरुवश तें वियोग) यथा—

कवित्त

बरषा विषमताई दुचिताई दूनी सूनी-
सेज में "कुमार" चित-चेत विसराइये ;
गुरुजन कठिन सठ न जाने पर-दुख,
पिय परवस परदेस रह्यौ छाइये ।
धीरज हिरात सुनि नीरद की धीर धुनि,
उसीर-गुलाब-नीर ल्याये पीर पाइये ;
सीरे उपचार और ताप को प्रचार घटै,
सीरे उपचार बढ़ी ताप क्यौं घटाइये ॥ ३८ ॥

(४) उत्कंठा तें विरह, विरहोत्कंठिता के भेद में जानिये ।

(५) श्राप तें विरह, मेघदूतादि में है, तथा पांडु प्रभृति में है ।

ऐसे संभ्रम लज्जादिहू तें वियोग :—

यथा—

दोहा

मिलि कुंजन बिछुरे घरी बरसत घन घिरि घोर ।
ग्रीषम-ताप घटी न, पै बढ़ी ताप दुहुँ ओर ॥ ३९ ॥

यथाच—

सवैया

कैसे "कुमार" सुहात कहूँ बिन देखे दिखात, दसौं दिस सूनौं ।
लेत उसासन होत उदास तपै तन जैसे परै जल चूनौं ॥

(१ भयो [भूत] वियोग) यथा—

सवैया

कीन्ही हरीन सुध्यौ सुहरी सुधि औसर हू में हरी धरनी के।
औधि बिसूरि बिसूरि "कुमार" बढ़ी जिय पीर सरोजमुखी के॥
चाप चढ़्यौ घन में लखि कै, तन ताप बढ़्यौ बिन आगम पी के।
वारि विमोचत वारिद, लोचन वारि है मोचत लोचन ती के॥३५॥

(२ वर्तमान विरह) यथा—

सवैया

वारक जाहि निहारि "कुमार" सुजीवन जीवन आपनौ कीजै।
नंद को नंद सु आनँदकंद विदेस चल्यौ तन छीन है छीजै॥
जो बिन जीवन जीवन नाहिं सु बात सुनै हिय नाहिं पतीजै।
जीवन है बिन जीवन हू ब्रजजीवन हू बिन जो अब जीजै॥३६॥

(३ भविष्यति वियोग) यथा—

कवित्त

प्रात सुनै जात परदेस कान्हप्यारे ! तुम,
प्यारी के विरह ताप हिये न समाति है;
जानति "कुमार" मिलि बिछुरे को दुःख नाहिं,
पूछति फिरति सखियानि अकुलाति है।
आधौई न बीत्यौ जाम आधे तन कीन्ही काम,
कैसे धौं बितावै वाम आगे द्यौस, राति है;
संग हू परी पे खरी तलफति तलप में,
अलप सलिल परी सफरी दिखाति है॥ ३७॥

यह कार्यवश तें है।

(गुरुवश तें वियोग) यथा—

कवित्त

वरषा विषमताई दुचिताई दूनी सूनी-
सेज में "कुमार" चित-चेत विसराइये ;
गुरुजन कठिन सठ न जाने पर-दुख,
पिय परबस परदेस रह्यौ छाइये।
धीरज हिरात सुनि नीरद की धीर धुनि,
उसीर-गुलाब-नीर ल्याये पीर पाइये ;
सीरे उपचार और ताप को प्रचार घटै,
सीरे उपचार बढ़ी ताप क्यौं घटाइये ॥ ३८ ॥

(४) उत्कंठा तें विरह, विरहोत्कंठिता के भेद में जानिये।

(५) श्राप तें विरह, मेघदूतादि में है, तथा पांडु प्रभृति में है।

ऐसे संभ्रम लज्जादिहू तें वियोग :—

यथा—

दोहा

मिलि कुंजन बिछुरे घरी बरसत घन घिरि घोर।
ग्रीषम-ताप घटी न, पै बढ़ी ताप दुहुँ ओर ॥ ३९ ॥

यथाच—

सवैया

कैसे "कुमार" सुहात कहूँ बिन देखे दिखात, दसौं दिस सूनौं।
लेत उसासन होत उदास तपै तन जैसे परै जल चूनौं ॥

(१ भयो [भूत] वियोग) यथा—

सवैया

कीन्ही हरीन सुध्यौ सुहरी सुधि औसर हू में हरी धरनी के।
औधि बिसूरि बिसूरि "कुमार" बढ़ी जिय पीर सरोजमुखी के॥
चाप चढ़्यौ घन में लखि कै, तन ताप बढ़्यौ बिन आगम पी के।
वारि विमोचत वारिद, लोचन वारि है मोचत लोचन ती के॥३५॥

(२ वर्तमान विरह) यथा –

सवैया

वारक जाहि निहारि "कुमार" सुजीवन जीवन आपनो कीजै।
नंद को नंद सु आनँदकंद बिदेस चल्यौ तन छीन है छीजै॥
जो बिन जीवन जीवन नाहिं सु बात सुनै हिय नाहिं पतीजै।
जीवन है बिन जीवन हू ब्रजजीवन हू बिन जो अब जीजै॥३६॥

(३ भविष्यति वियोग) यथा—

कवित्त

प्रात सुनै जात परदेस कान्हप्यारे ! तुम,
प्यारी के विरह ताप हिये न समाति है;
जानति "कुमार" मिलि बिछुरे को दुःख नाहिं,
पूछति फिरति सखियानि अकुलाति है।
आधौई न बीत्यौ जाम आधे तन कीन्ही काम,
कैसे धौं बितावै वाम आगे द्यौस, राति है;
संग हू परी पे खरी तलफति तलप में,
अलप सलिल परी सफरी दिखाति है॥ ३७॥

यह कार्यवश तें है।

प्रवासादि वियोग की दशा १०—

अभिलाषा, चिंता, सुमिरन, गुण-कथन तथा उद्वेग, प्रलाप।
गनि उन्माद, व्याधि, जडता, मृति दसौ दशा विरह के ताप ॥४४॥

दोहा

मिलन चाह अभिलाष है, ध्यान सुचिन्ता जानि।
लखी सुनी पिय बात की सुधि सुमिरन पहिचानि ॥४५॥
कहि गुन कहिबो प्रीति गुन सुन्दरतादिक जाप।
चित उचाट उद्वेग कहि, सूने वचन प्रलाप ॥४६॥
प्रेम छाक उनमाद है, व्याधि विरह की पीर।
जडता चेष्टा - हानि है, मृति विन प्रान शरीर ॥४७॥

(१ अभिलाषा)

सवैया

जा विन देखे नहीं कल, तासौं वियोग अहो? विधि वैरी दयौई।
क्यौंहु "कुमार" निहारौ जु प्यारी न न्यारी करौं सुखि मानि नयौई॥
श्रीपति लौं हिय अन्तर में अब राखौ निरन्तर ठान ठयौई।
गौरि के कंत लौं कै मिलि अगही, संग रहौ अरधंग भयौई ॥४८॥

(२ चिन्ता) यथा—

सवैया

गावे वधू मधुरे सुर-गीतनि प्रीतमसंगहुतें फुरि आई।
छाई "कुमार" नई छिति में छवि मानौं विछाई हरो दरियाई॥
ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूँ दिसि बोली यौं बाल गरो भरियाई।
कैसी करौं हहरै हियरा हरि आये नहीं, उलही हरिआई ॥४९॥

दूर विदेस के वास वियोग, सबै सहिये लहिये हिय ऊनौं।
भैंट की आस में पास निवास में दाहत है विरहानल दूनौं ॥४०॥

संयोग में वियोग। यथा—

दोहा

विकच गुलाब सुगंधि लहि लगत गंधवह गात।
पिय-हिय भेंटति भुज भरै तिय जिय अति अकुलात ॥४१॥

पूर्वराग विरह की दस दशा—

नयनप्रीति, चिंता, संकल्पन, नींद-नाश, कृशता, रुचिहानि।
लाज-भंग, उनमाद, मूरछा, मृति ये कामदशा दस जानि ॥४२॥

कोऊ क्रम तें ये मानत हैं—प्रथम नयन-प्रीति, फिरि चिंता, फिरि संकल्पन, फिरि निद्रा-नाश, फिरि कृशता, फिरि विषय-निवृत्ति, फिरि लज्जा-नाश, फिरि उन्माद, फिरि मूर्छा, फिरि मृति।

क्रम तें यथा—

कवित्त

जब तें निहारे कान्ह, तब तें तिहारे ध्यान,
या के चित्त चित्र भयौ रूप तुव रैनि-दिन;
धारि जलधार पल धारत न नेकु पल
नैन है, "कुमार" तन छीन छीजै छिन-छिन।
भूल्यौ खान पान भोन, लाज धरै जिय को न,
मदन छकाई बाल देखौ लाल! हाल किन?
काम-सर जालसी कराल सी प्रवाल सेज,
परी घरी-घरी मोह भरी, डरी प्रान बिन ॥ ४३ ॥

प्रवासादि वियोग की दशा १०—

अभिलाषा, चिंता, सुमिरन, गुण-कथन तथा उद्वेग, प्रलाप।
गनि उन्माद, व्याधि, जड़ता, मृति दसौ दशा विरह के ताप ॥४४॥

दोहा

मिलन चाह अभिलाष है, ध्यान सुचिन्ता जानि।
लखी सुनी पिय बात की सुधि सुमिरन पहिचानि ॥४५॥
कहि गुन कहिबो प्रीति गुन सुन्दरतादिक जाप।
चित उचाट उद्वेग कहि, सूने वचन प्रलाप ॥४६॥
प्रेम छाक उनमाद है, व्याधि विरह की पीर।
जड़ता चेष्टा-हानि है, मृति बिन प्रान शरीर ॥४७॥

(१ अभिलाषा)

सवैया

जा बिन देखे नहीं कल, तासौं वियोग अहो? विधि वैरी दयौई।
क्यौंहु "कुमार" निहारो जु प्यारी न न्यारी करौं सुखि मानि नयौई॥
श्रीपति लौं हिय अन्तर में अब राखौ निरन्तर ठान ठयौई।
गौरि के कंत लौं कै मिलि अगही, संग रहो अरधंग भयौई ॥४८॥

(२ चिन्ता) यथा—

सवैया

गावे वधू मधुरे सुर-गीतनि प्रीतमसंगहुतें फुरि आई।
छाई "कुमार" नई छिति में छवि मानौं बिछाई हरो दरियाई॥
ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूँ दिसि बोली यौं बाल गरो भरियाई।
कैसी करौं हहरै हियरा हरि आये नहीं, उलही हरिआई ॥४९॥

दूर विदेस के वास वियोग, सबै सहिये लहिये हिय ऊनौं।
भैंट की आस में पास निवास में दाहत है विरहानल दूनौं ॥४०॥

संयोग में वियोग। यथा—

दोहा

विकच गुलाब सुगंधि लहि लगत गंधवह गात।
पिय-हिय भेंटति भुज भरै तिय जिय अति अकुलात ॥४१॥

पूर्वराग विरह की दस दशा—

नयनप्रीति, चिंता, संकल्पन, नींद-नाश, कृशता, रुचिहानि।
लाज-भंग, उनमाद, मूरछा, मृति ये कामदशा दस जानि ॥४२॥

कोऊ क्रम तें ये मानत हैं—प्रथम नयन-प्रीति, फिरि चिंता, फिरि संकल्पन, फिरि निद्रा-नाश, फिरि कृशता, फिरि विषय-निवृत्ति, फिरि लज्जा-नाश, फिरि उन्माद, फिरि मूर्छा, फिरि मृति।

क्रम तें यथा—

कवित्त

जब तें निहारे कान्ह, तब तें तिहारे ध्यान,
याके चित्त चित्र भयौ रूप तुव रैनि-दिन;
धारि जलधार पल धारत न नेकु पल
नैन है, "कुमार" तन छीन छीजै छिन-छिन।
भूल्यौ खान पान भौन, लाज धरै जिय को न,
मदन छकाई बाल देखौ लाल! हाल किन?
काम-सर जालसी कराल सी प्रवाल सेज,
परी घरी-घरी मोह भरी, डरी प्रान बिन ॥ ४३ ॥

प्रवासादि वियोग की दशा १०—

अभिलाषा, चिंता, सुमिरन, गुण-कथन तथा उद्वेग, प्रलाप।
गनि उन्माद, व्याधि, जडता, मृति दसौ दशा विरह के ताप ॥४४॥

दोहा

मिलन चाह अभिलाष है, ध्यान सुचिन्ता जानि।
लखी सुनी पिय बात की सुधि सुमिरन पहिचानि ॥४५॥
कहि गुन कहिवो प्रीति गुन सुन्दरतादिक जाप।
चित उचाट उद्वेग कहि, सूने वचन प्रलाप ॥४६॥
प्रेम छाक उनमाद है, व्याधि विरह की पीर।
जडता चेष्टा-हानि है, मृति विन प्रान शरीर ॥४७॥

(१ अभिलाषा)

सवैया

जा विन देखे नहीं कल, तासौं वियोग अहो? विधि वैरी दयौई।
क्यौंहु "कुमार" निहारौ जु प्यारी न न्यारी करौं सुखि मानि नयौई॥
श्रीपति लौं हिय अन्तर में अब राखौ निरन्तर ठान ठयौई।
गौरि के कंत लौं कै मिलि अगही, संग रहौ अरधंग भयौई ॥४८॥

(२ चिन्ता) यथा—

सवैया

गावे वधू मधुरे सुर-गीतनि प्रीतमसंगहुतें फुरि आई।
छाई "कुमार" नई छिति में छवि मानौं विछाई हरो दरियाई॥
ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूँ दिसि वोली यौं वाल गरो भरियाई।
कैसी करौं हहरै हियरा हरि आये नहीं, उलही हरिआई ॥४९॥

(३ स्मरण) यथा—

दोहा

दुरि दृग दै मुरि द्वार लगि रचि प्रनाम दुहुँ पानि।
चितई, चित मेरैं अजौं वह बिसुरे नहिं बानि ॥ ५० ॥

(४ गुण कथन) यथा—

कवित्त

बिन ब्रजजीवन बिलोकें ब्रजबालनि के
जीवन रखैया न जतन दरसत हैं;
रास लास हास के "कुमार" वे विलास सौंरि
बीस बिसै विस सो हिये में बरसत हैं।
छिनन छबीली सो तिरीछे नैन छोरन की,
सहज सनेह चितवन परसत हैं;
कान्ह चित्त-चोर मुख-चन्द के चकोर, स्याम
घनाघन मोर मेरे नैन तरसत हैं ॥ ५१ ॥

(५ उद्वेग) यथा—

दोहा

मदन वधिक के कदन में बचे अधिक जे प्रान।
चन्द पिसाच निसाचरत नहि बचाइ है न्यान ॥५२॥

(६ प्रलाप) यथा—

सवैया

सूनेहि सेज मनावन लागत, लागति है निसि रूसनि थाप की।
कोइल बोलै "कुमार" कहूँ तब बोल न जानै विलास अलाप की ॥

चित्र लिखे लखि तेरि ये सूरति, पूछति छेम तिहारे मिलाप की।
सारी निसा ही किसाकहै आपकी काम कसाइ कसाले की तापकी ।५३।

(७ उन्माद) यथा—

सवैया

देखि परै दसहू दिसि में निसि द्यौसहि नन्द'कुमार' की मूरति।
भैंटिवे को उठि दौरि चलै भ्रमसौं भरि नैननि नीरसौं पूरति॥
भौन सुहात न मौन रही गहि, वा मुख की छवि छाक बिसूरति।
तेरो सुभाउ री! कौन भयो? भई बाउरीसी लखि साँवरीसूरति ॥५४॥

(८ व्याधि) यथा—

कवित्त

सूखे तन, दूखे मन, पेखउ पियूख-कर-
कर विकराल ज्वाल जाल बरसत हैं;
देखि भेंटि ठाठ के कलिन्दी घाट बाट, सूने
दूने दुख प्रान परबस ह्वै त्रसत हैं।
कहत "कुमार" ये कदम्बन के फूल-भार,
सूल भये मदन-तुनीर से लसत हैं;
वेलिनि नवेलिनि के केलि-कुंजपुंज आली!
खाली बनमाली बिन काली से डसत हैं ॥५५॥

(९ जडता) यथा—

दोहा

मुख न बैन, नैननि पलन हलन चलन तन हाल।
सुतन रतन-पुतरी भई, बिरह तिहारे लाल! ॥५६॥

मृति-जो मरण दशा-सो मूर्च्छारूप के चित्त में चाही श्रर्नियै, नाहीं तो करुणरस होइ जाइ। यथा—

दोहा

तलफि तलफि सूनी तलप कलपि कलपि सुधि-हीन।
प्रानपियारी प्रान-बिन होत अलपजल-मीन ॥५७॥

कोऊ ये अवस्था कहत हैं—

दोहा

अँग व्याकुलता, पाण्डुता, अरुचि, अधीरज, ताप।
कृशता अरु असहायता, तन्मयता, संलाप ॥ ५८ ॥
मूर्च्छा औ उन्माद ये विरह दसा दस जान।
विरह कवित्तन में सबै उदाहरन पहिचान ॥ ५९ ॥
पिय तिय में जहँ एक के विरह, मरन है होत।
फिर जीवन की आस तहँ करुन वियोग उदोत ॥ ६० ॥

जैसे महाश्वेता में कादम्बरी में है, रति में है।

इति श्रृंगाररस-व्यंग्य।



हास्यरस-लक्षण

दोहा

प्रमथ देव, सित रंग है, हास्य सुथाई हासु।
विकृत वेश, वचगति-सहित आलम्बन है तासु ॥ ६१ ॥

यथा—

निसि में ससिमुखि बसन में सौंधौं जानि लगाइ।
प्रात सुकर लै मुकुर लखि हस्यौ तियानि हसाइ॥ ६२॥

करुणरस-लक्षण

दोहा

बरुन देव, रँग धूमिलो थाई सोक विचार।
आलम्बन मृतबन्धु गनि करुन रसै निरधार॥ ६३॥

यथा—

सवैया

प्रीति के पोष "कुमार" रच्यौ अपराधहू रोष नहीं जिय में है।
ऐसी धरी निठुराई कहा, दृग खोलि न बोलि न उतरु दैहै॥
भोरे सुभाइन भीरु तू भामिनि ? केलि के भौनहू जात डरै है।
हेली न संग सहेली अहै कहि कैसे अकेली अकासहि जैहै॥६४॥

रौद्ररस-लक्षण

दोहा

रुद्र देव, रँग लाल तहँ थाई क्रोध विशेष।
वैरी आलम्बन तहाँ रौद्र रसै जिय लेख॥ ६

कवित्त

रामनरपाल सों जुरत जंग बजरंग
धीर वैरो वीरन की हिम्मति हुटति है
कहत "कुमार" कर धारत कमान बान,
दुज्जन असान अनीकिनि यौं कुटति

काटे हय, गय, नर-कंधर कवंधनि तें
रुधिर की धारैं अध ऊरध टुटति है;
जावक सलिल जानौं पूरन खजानौं भरी,
नल - जन चादरी सी चहूँघा छुटति है ॥६६॥

वीररस-लक्षण

दोहा

इन्द्र देव, रँग हेम - सम थाई भाव उछाह।
आलम्बन अरि जेय है वीर रसै निरवाह ॥६७॥

(१ युद्धवीर) यथा—

सवैया

देखत लाखन राखस के गन लाखन वानर धीरज नाखे।
लाखन अंगद नील सुग्रीव हनूमत जुद्ध विचार है भाखे॥
आवत रावन के सुत कौ लखि, राम उछाह हिये अभि लाखे।
धारि रुमंचनि कौ तन कंचुक बान कमान हिये दग राखे ॥६८॥

(२ दानवीर) यथा –

सवैया

कोटि चतुरदस जो मुहरै गुरुदच्छिना देन कही पन धारै।
देत बच्यौ रघु के करवा कर देख, करै जिन मोह बिचारै॥
कीजिये आज पवित्र "कुमार" निसा बसि होम अगार हमारै।
हेत तिहारेई जीतत हौं धनदै, सु सबै धन देत सवारै ॥६९॥

(३ दयावीर) यथा—

सवैया

जीव के घातक हौ जु सिचा न छुधा वस पातक आतुर जागौ ।
दीन दुरयौ सरनागत है, नहिं ताहि सतावन को अनुरागौ ॥
हौं सिवि नाम महीपति हों निज देहऊ देहुँगौ चाहौ सु मागौ ।
आकुल होत क्यौं मोतनको भखियो तनु पोत कपोतको त्यागौ ॥७०॥

(४ धर्मवीर) चौथो भेद मानत हैं । यथा—

कवित्त

राज जात क्यौं न आज, जीतौ दुजराज द्रोन,
चिन्ता चितहू तें तोन पाप की बहाइये ।
कहत "कुमार" सब कौरव विजय लहौ,
वहौ विधि रूठत सु रूठोई कहाइये ॥
भीम अरजुन गुरुजन-सीख मानौ एक,
धरम धरम राज - काज कौ सहाइये ।
जाय किन प्रान ? तऊ बात न्यान साँच ही तें,
आन नहीं आनन ही मेरे सु कहाइये ॥७१॥

वात्सल्य रस-लक्षण

दोहा

लोकमात दैवत तहाँ, पद्म - गर्भ सम रंग ।
नेह थाइ वत्सल गन्यौ तहँ विभाव सुत - संग ॥७२॥

यथा—

सवैया

सीस लसै कुलही, पग पैंजनि, मोतिन माल हिये रुचिरो है।
कांति "कुमार" लहै मुतियानि की द्वै दँतिया बतियाँ कहि सोहै॥
मात जसामति गोद लिए, बढ़ि मोद समातु नहीं मुख जोहै।
नंद को नंद, अनंद को कंद निहार री! मोहन मो मन मोहै॥७३॥

भयानक रस-लक्षण

दोहा

यम दैवत, रँग नील गनि आलम्बन भय-हेतु।
गन्यौ भयानक रस तहाँ भय थाई को चेतु॥७४॥

यथा—

सवैया

घोर प्रलै के घनाघन लै बरख्यौ मघवा व्रज वैर सौं जागत।
थावर, जंगम, जीउ भ्रमै भभरें भय में भरि भौननि भागत॥
आकुल गोपिय-गोकुल ग्वाल बिहाल ह्वै अंक तें बालनि त्यागत।
तीर से नीर छरानिछरे बिछुरे बछरा उर गाढ़न लागत॥७५॥

बीभत्स रस-लक्षण

दोहा

काल दैव अति काल रँग, घिनि थाई तहँ लेख।
असुचि बात आलम्बिकैं रस बीभत्स विशेष॥७६॥

यथा—

कवित्त

गरदा से परे मुरदानि के रदासे तहाँ,
लीन्हे अंक बैठ्यौ सिरदार रंक प्रेतु है।
लै लै मुख कोरैं ओरै आवत निकट दोरैं,
दाँत काटि आँत काढ़ि कीन्हौ हार हेतु है॥
पीठि जंघ अच्छनि कपोलनि प्रथम भच्छि,
आतुर छुधा सों रच्छ ह्वै रह्यौ अचेतु है।
हाड़नि हू चाखि डारै नाखिन ही आँखिन ही,
मूँदि, संग माखिन ही मास भखि लेतु है॥७७॥

अद्भुत रस-लक्षण

दोहा

थाई विसमय पीत रँग, मनमथ दैवत जानि।
अचिरज युत आलम्बिके रस अद्भुत पहिचानि॥७८॥

यथा—

सवैया

तात को सासन सीस असीस सों धारि वसी वनवास पधार्‌यौ।
एक ही बान सँवारि धरी, दस चारि हजार निसाचर तार्‌यौ॥
राघव बाँधि अपार पयोधि, "कुमार" सबै दल पार उतार्‌यौ।
राखस कोटि मसासमजारि, ससासम मारिदसानन डार्‌यौ॥७९॥

शांत रस-लक्षण

दोहा

हरि दैवत, रँग कुंद सम, शम थाई तहँ होत।
आलम्बन परमार्थ लहि, कहि रस शांत उदोत ॥८०॥

यथा—

सवैया

ये तपसी जपसील सदा वसी, जे परिपूरन ब्रह्महिं ध्यावैं।
पुन्य गिरिंदनिकंदर-अंदर ह्वै निरद्वंद विनोद बढ़ावैं॥
ध्यान समै जिनके मृगसावक खेलत अंकहि संक न पावैं।
बैठि विहंगम पास निवास के आनँद आँसुनि प्यास बुझावैं॥८१॥

दया वीरादि में अहंकृति है, यहाँ अहंकृति को त्याग है। यह भेद है।

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते रसिक-
रसाले रसव्यंग्यनिरूपणं नाम
तृतीयोल्लासः॥



चतुर्थ उल्लास

अथ भाव-व्यंग्य-भेद—

दोहा

रस अनुकूल विकार सों भाव कहत कवि धीर।
चित्त-जनित आँतर कहत, दूजो है सारीर ॥ १ ॥
द्वैविध आंतरभाव है, थाई अरु संचारि।
स्तम्भादिक जे आठविध ते शारीर विचारि ॥ २ ॥

यद्यपि सात्त्विकौ आंतर भाव है, पै शरीर तें प्रगट होत, यातें शारीर है।

स्थायी भाव व्यंग्य—

दोहा

माला-मधि ज्यौं सूत्र त्यौं विभावादि में आनि।
आदि, अंत, रस-माह, थिर थाई भाव बखानि ॥ ३ ॥
रति, हाँसी, अरु शोक, रिस, त्यौं उछाह, सुत-नेह।
भय, घिनि, विस्मय, शम तथा दस थाई गनि एह ॥ ४ ॥

(१) रतिस्थायी भाव-लक्षण

दोहा

इष्ट वस्तु सुनि, लखि, सुमिरि तरुन तरुनि हिय चाह।
उपजत मनोविकार कछु, रति थाई तिहि माँह ॥ ५ ॥

यथा—

सवैया

कान्ति मनोहर मोहन की दृग पूरि "कुमार" सुधा-सी रही है।
कान दए गुन गान सुने पिय देखन चाह दुरै ही चही है॥
नैननि में, गति में, मति में, मृदु भाव सुभाव की रीति गही है।
नेहलता हिय ही सु लही जु नई दुलही में सही उलही है॥६॥

(२) हास्य स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

विकृत वेश, वच, कर्म, लहि, मन-विकार कछु होत।
हँसा तहाँ थिर भाव गनि बाढ़ै हास उदोत॥७॥

यथा—

सवैया

छोटो सौ वेश अपूरव पेखत, लोइन लोइनि के न अघानै।
घेरि नचै चहुँधा पुर-बालक, लै बलि भूप के आँगन आनै॥
देखि हँसी बलिराजवधू सब भोजन कों कछु देउ बखानै।
पावन मूरति वामनजू सुनि बैननि नैननि ही मुसक्यानै॥८॥

(३) शोक स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

इष्टनाश लखि, सुनि, सुमिरि होत जु मनोविकार।
शोक सु थाई भाव है, करुना रस निरधार॥९॥

यथा—

सवैया

शम्भु बसी करिबे कौ सुरेसहिं काम पठायो है काम महा कौ।
भाल के नैन निभालत ही, जरि पावक पावन भौ तनु ताकौ॥
पीड विनासन हेतु विषाद, विलोकि मनोभव की अवला कौ।
रोप भयंकर में उपज्यौ, जिय अंकुर संकर के करुना कौ॥१०॥

(४) रिस स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

वैरि पराभव तें भयौ जो आनँद प्रतिकूल।
मन-विकार सो रिस यहै, जानि रौद्र रसमूल॥११॥

यथा—

सवैया

जानकी कों हर लै गयौ राखस नीच न आपनी मीच निहारी।
ताप-तप्यौ हियरा सियरातु न जो सिय राघव पास न धारी॥
राम को सेवक रंक हौं आजु निसंक उलंघतु वारिधि-वारी।
रावन अंग कलंक समेतहि पंकज-सी लखौ लंक उखारी॥१२॥

(५) उत्साह स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

सौरज, दान, दया, धरम लहि आनँद अनुकूल।
मन-विकार सु उछाह है वीर रसहिं हिय-फूल॥१३॥

यथा—

उठत अंग रोमंच सुनि, रन-दुंदुभि-धुनि घोर।
वर धीरज-अंकुर मनौं उगि उठे चहुँ ओर॥१४॥

(६) वत्सल स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

छोह भरी मुख तोतरी सुनि बतियाँ, लखि केलि।
सुत-सनेह वत्सल रसहिं थाई आनँद बेलि ॥१५॥

यथा—

कान्हर कौ बिहसत बदन निरखि जसोमति मात।
गहि अँगुरी अंगन चलत अंगनि सुख न समात ॥१६॥

(७) भय स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

नृप गुरु मुनि अपराध लहि, विकृत जीवरव लेखि।
उपजत मनोविकार कछु, भय थाई तहँ देखि ॥१७॥

यथा—

सवैया

दल भार अपार यौं राम के संग बढ़ै मनौं सिंधु तरंग बढ़ै।
बलवंतनि सौं रनजीति कहानि "कुमार" कहाँ न जहाँन पढ़ै॥
सुनि गाजत पावस की रितु अंबर घोर घनाघन जोर मढ़ै।
अरि-वग्ग यों दुग्ग दरीनि दुरे भ्रम-भीत से भीतरतें न कढ़ै॥१८॥

(८) घिनि स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

अशुचि वस्तु सुनि, लखि, सुमिरि उपजत मनोविकार।
घिनि थाई सो जानिये, रस बीभत्स अधार ॥१९॥

यथा—

मारि दुसासन, फारि उर, रुधिर अंग लपटाइ।
आवत भीम, तिन्है मिले धर्मराज दृग नाइ ॥२०॥

(६) विस्मय स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

अचिरज की कछु बात लखि, सुनि मन विकृत जु होत।
विस्मय थाई भाव सो अद्भुत रसहिं उदोत ॥२१॥

यथा—

सवैया

सारद पूनौ जुन्हाई विसारद पारद से छवि-पुंज पसारे।
चारु "कुमार" सबै छिति छावत छीर पयोनिधि-पूर विचारे॥
चंद अमंद विलोकि तहाँ सब लोक के लोइन कौतुक धारे।
रीझे न एक त्यों मेरे विलोचन, तो-मुखचंद निहारनहारे॥२२॥

(१०) शमस्थायी भाव-लक्षण

दोहा

तत्व-बोध, दुख, दोष लहि जग अनित्य पहिचानि।
उपजत मनोविकार कछु शम थाई हिय मानि ॥२३॥

यथा—

सवैया

जा सनबंध तें बंधु गनै निज, अंध! यहौ तन नाँहि ठयौ है।
होत "कुमार" न क्यौं निहचिन्त, सुखी जन में जनवादि गयौ है।
चेततु चेतन रूप ह्वै सुमिरे विष ये विष मोह छयौ है
रे चित! चंचल वंचक तू, जग चुंबक बीच को लोह भयौ है॥२

इति स्थायीभाव-व्यंग

संचारी भाव-व्यंग्य—

दोहा

रति प्रभृतिक थाईनि में उपजत मिटत सुभाव।
यातैं संचारी कहे निर्वेदादिक भाव ॥ २५ ॥

तथाच भरतः—

श्लोकाः

निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूयामदश्रमाः।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्तामोहो धृतिः स्मृतिः ॥ २६ ॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च ॥ २७ ॥
स्वप्नो विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्था तथोग्रता।
मतिर्व्याधि स्तथोन्माद स्तथा मरणमेव च ॥ २८ ॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः प्रयान्ति व्यभिचारिताम् ॥ २९ ॥

(१) निर्वेद-लक्षण

दोहा

तत्त्व-बोध, आपत्ति, दुख, ईर्ष्यादिक तें आनि।
निज चिंता चित-वृत्ति जो, सो निर्वेद बखानि ॥ ३० ॥

यथा—

सवैया

तिय-हेत मँगाइ मनोरम फूल विसाल है माल रसाल रची।
घनसार घनौं घसि कुंकुम, चंदन, चंदमुखी-कुच खौरि खची ॥

सुधि सेवा सिपारसि नाम उच्चारि "कुमार" विचारत बुद्धि नची।
जड हौं कछु चित्त रचाइ यहै हरिकी अरचा चरचा न रची ॥३१॥

(२) ग्लानि-लक्षण

दोहा

आधि, तृषा, रति, प्रभृति जो लहैं गहै बल-हानि।
कछु मलीन चित-वृत्ति जो, सोई कहियतु ग्लानि ॥ ३२ ॥

यथा—

सवैया

जानै कहा ? नवला अवला, अवलाजन जो छल रीति करी है।
भोरतें साँझ "कुमार" त्यौं साँझ तें भोरलौं जागि जगाई खरी है॥
पौढ़ि रही परजंक न जागति, मोहू सों लागति रोष भरी है।
लाल! भली यह बाल भली अब मालती-माल-सी हाल परी है ॥३३॥

(३) शंका-लक्षण

दोहा

जो डर जिय अपराध को संका-भाव सुमानि।
वदन सोख वैवर्न्य तहँ, पार्श्व-विलोकन जानि ॥ ३४ ॥

यथा—

सवैया

हौं तो घरी घर तें इत भोरहि, गोहरे गाइ दुहावन आई।
आपनें स्वारथ ही के अहीर ! न जानौ "कुमार" जु पार पराई॥
घेरु घनो व्रज गाँव को जानत जानन देहु, करौ मनभाई।
लागि कपोलनि क्यौं दुरिहै यह जागी रदच्छद की अरुनाई ॥३५॥

(४) असूया-लक्षण

दोहा

पर-उतकर्ष न चित सहै, यहै असूया भाव।
दोष-दृष्टि दृग-अरुनता लहि तहँ रोष सुभाव ॥ ३६ ॥

यथा—

सवैया

एक समैं ससिसेखर के सिर चंद्र-कला लखि रोष भुलानी।
है निज प्यार की प्रीतम के यह प्यारी "कुमार" सिरै सनमानी ॥
बात कही न कछू, है रही गहि मौन, लही नहिं सीख सयानी।
पाइ परे पिय, यौं गहि मान अयान सुभाइ रिसानी भवानी ॥३७॥

(५) मद-लक्षण

दोहा

सुख संमोह दसा कछू मद जो मादक खाइ।
दृग घूमत, अध वचन तहँ, हसित रुदित हरु भाइ ॥३८॥

यथा—

सवैया

गुन-गौरि अहै मद जोबन रूप के तोमें "कुमार" भरे सब है।
तुव घूमत से सहजै दृग-कंज लसै अति मंजु ललामी गहै ॥
सु इतेपर मादक खाइ कछू सखि आनँद बैननि भूलि कहै।
यह रूप तिहारे निहारनहारेई ह्वै मतवारे-से भूलि रहै ॥३९॥

(६) श्रम-लक्षण

दोहा

रति, गति प्रभृति अयास तैं चित्त-खेद श्रम लेखि।
स्वेद, साँस, निद्रादि तहँ, तृषा शिथिलता देखि ।।४०।।

यथा—

सवैया

हेली गई तुहिं आज अकेलियै साँझ समै जल-केलि तरंग में।
रैन लौं आवत गेह "कुमार" सम्हारति है न उसास उमंग में ।।
छूट गयौ कुच कुंभनि कुंकुम, काँपति थाकि रही सब अंग में।
जानिये नीर अन्हाई किधौं श्रमनीर अन्हाई कन्हाई के संग में।।४१।।

(७) आलस्य-लक्षण

दोहा

जागर, श्रम गति प्रभृति तैं गर्भादिक तैं आनि।
होइ जु जिय असमर्थता सो आलस पहिचानि।४२।।

यथा—

सवैया

भोर निहारत भामिन की छवि, डीठि लगी गहि एकटकी है।
द्वार लौं आइ हरैं पग धारि "कुमार" निहारिये हारि जकी है ।।
प्रीतम-संग में, प्रेम-उमंग में, केलि के रंग में, जागि छकी है।
आधे रहे कहे आनन बैन हैं, नैन हैं कातर, गात थकी है ।।४३।।

(८) दैन्य-लक्षण

दोहा

दुख, दारिद, बिरहादि तें जिय न ओज अधिकात।
दैन्य भाव तहँ जानिये, ताप नैनजल-पात ।४४॥

यथा—

सवैया

लूट्यौ सौ गेह, घनौ बरसै घन, तेसोइ दारिद दीह सतावै।
सासु जरा-जुर-जोर सों जीरन, वीर! न कोउ सहाइ सुभावै॥
प्रान-पियारे विदेस पयान "कुमार" रच्यौ, न अजौं घर आवै।
यों बिन भीजिये ठौर बिसूरि वधू दृग-नीरद नीर भिजावै॥४५॥

(६) चिंता-लक्षण

दोहा

इष्ट बात पाये बिना ध्यान सुचिंता लेखि।
साँस, ताप, आँसू प्रभृति तन-कृशता तहँ देखि॥४६॥

यथा—

सवैया

ध्यावै गिरीसहिं तू गुनगौरि! सुजानिये ह्वै गई पीउमई है।
आँसू-प्रवाह उमंगत नैननि, गंग-तरंगनि धार ठई है॥
तापस-चार विचार "कुमार" यहै दृग-पावक झार छई है।
गोरे कपोलनि में दुति-पाँति कलाधर कान्ति की भाँति भई है॥४७॥

(१०) मोह-लक्षण

दोहा

भय, विषाद, विरहादि तैं नहिं जु तत्त्व-निरधार।
सोई कहियतु मोह तहँ, भ्रम संताप संचार ॥४८॥

यथा—

सवैया

गावत गीत, न भावत मीत है, भीत मनौं पट पीत बिसार्‌यौ।
बोले न बैन, बजावे न वेनु, यौं जागत जामिनि जामनि चार्‌यौ॥
नंदकुमार है भूल्यौ सबै सुधि, मार "कुमार" कहा करि डार्‌यौ ?,
बैरिनि वंक बिलोकि निसंक भल्यौ व्रज गाउँ अतंक है पार्‌यौ ॥४९॥

(११) धृति-लक्षण

दोहा

क्रोध, लोभ, भय, मोह में जिय-दृढता धृति जानि।
वच-हुलास, सुख-पूर्णता, ज्ञान, धैर्य तहँ मानि ॥५०॥

यथा—

अहि भूषन, भख गरल, गथ भसम, बसन गज-खाल।
विषय-तृषा जगदीश कों बस करि सकै न हाल ॥५१॥

(१२) स्मृति-लक्षण

दोहा

संसकार-भव ज्ञान जो सो स्मृति भाव बताइ।
सदृश ज्ञान चितादि तहँ, पूरब अनुभव ल्याइ ॥५२॥

यथा—

सवैया

न्यौतै गए कहुँ देखि "कुमार" झरोखे में झाँकत ओट अली की।
सो मुसक्यानि सनेह की खानि न भूलै, अजौं चित तें हित ही की॥
नैन बिसाल रसाल लखी, तन ओढ़ै दुसाल मसाल-सी नीकी।
मेरे भई हिय में विधि-अंक-सी बंक चितौनि मयंकमुखी की॥८३॥

(१३) व्रीडा-लक्षण

दोहा

लाज पराजय प्रभृति तें गनिये व्रीडा भाव।
दृग-छिपाव सुर-भंग हरु तँह, अति सलज सुभाव॥५४॥

यथा—

सवैया

संग रमै रति-संगर में अबला नवला गहि लाज की सैनी।
भूषन के खनके परजंक ससंक ह्वै अंक दुरै पिकबैनी॥
बीच भुजानि उरोज सरोज—कली-से दुराइ रहै सुखदैनी।
नूपुर को गहि राखति है करवारिज सों बरवारिजनैनी॥५५॥

(१४) चपलता-लक्षण

दोहा

राग, द्वेष, क्रोधादि तें अति उताइली लेखि।
भाव चपलता है तहाँ, निंदा, कटुवच, देखि॥५६॥

यथा—

सवैया

नाम सुनै अरि कंपै सुनै अरि है उठि धावत रोष छए ही।
जुद्ध विचार प्रचार "कुमार" सकै लखि कौन कमान लए ही॥
जानिये नाहिं तुनीर तैं लेत न लागत हूँ पर पार गए ही।
राम के बान प्रमानि परै दल दानव के बिन प्रान भए ही॥५७॥

(१५ हर्ष-लक्षण)

दोहा

इष्ट-लाभ, गुरु नृप कृपा-भव सुख, जानौ हर्ष।
दृग-प्रसाद, हितवचन, तहँ तन-रुमंच उतकर्ष॥५८॥

यथा—

कवित्त

फरकत वाम-भुज-मूल, अनुकूल वाम-
लोचन, उरोज अंग सगुन बताइ है।
फूलत रसालनि विसाल धरैं सौरभ को,
हरै हरै आवत सुखद सीत वाइ है।
पंचम अलाप ख्याल कोकिल खुसाल हाल,
गावति भावति बोलि लालन कों ल्याइ है।
हेली हिय अंतर निरंतर उछाह बढ्यौ,
आवत बसंत आजु कंत घर आइ है॥५६॥

(१६ आवेग-लक्षण)

दोहा

राज, अगिन, जल, प्रभृति भय-संभ्रम कहि आवेग।
सुख, दुख, इष्ट, अनिष्ट तैं तहँ चित-हित उद्वेग ॥६०॥

यथा—

सवैया

आगि लगी निसि लागै कहूँ भय भारी भरी नर नारि भुलानी
काहू को नेक रही न सवाँर "कुमार" कछू सुधि सार न जानी ॥
वाही समै पिय प्यारी प्रवीन नवीन मिले रसकेलि सुहानी।
सींचत पानी न आगि बुझानी सो त्यौं इनकी विरहागि बुझानी ॥६१॥

(१७ जडता-लक्षण)

दोहा

इष्ट, अनिष्ट, लखै, सुनै, जिय जो सुधि बिन होय।
कहिये जडता तहँ नयन-निमिष न मुख - वच जोय ॥६२॥

यथा—

सवैया

है सियरी सियरे उपचार खरे उपचार खरो तन तावै।
जानौ खरो सियरौ न कछू कहु कैसे "कुमार" हिये सुधि ल्यावै॥
प्यारी की देखिये दीन दसा, कहुँ को अबही हरि सौं कहि आवै।
बोलत बैन नहीं, पल चैन नहीं, पल नैननि नेकु लगावै ॥६३॥

(१८ गर्व-लक्षण)

दोहा

गुन, सरूप, बल, कुल प्रभृति मद कहियतु है गर्व।
अविनय आलस प्रभृति तहँ अन्य निरादर सर्व ॥६४॥

यथा—

सवैया

गोरस बेचै गरूर भरी तन-गोरी गहीली खुले अचराई।
सुंदर ठौनि उठौनि उरोजनि जोवन ओज की रोज भराई ॥
भौंह मरोरि हँसै मुख मोरि "कुमार" निहारि हरै हियराई।
घालै सुईखन तीखन तीर से, पीर करै न अहीरि पराई ॥६५॥

(१९ विषाद-लक्षण)

दोहा

जो अनिष्ट-संदेह जिय, सो विषाद गनि भाव।
चिंता चाह सहाय की तहँ गनि विविध उपाव ॥६६॥

यथा—

सवैया

रोकतु है मग नंदकुमार "कुमार" सु क्यौं कुल-कान रहै री।
छैल छबीलो छकै छबि में अवनाजन क्यौं अब लाज लहै री ॥
मोहि रहे अली मोहि निहारि सराहत चाहत बाँह गहै री।
ताप तयौ हिया पाप भयौ कहा आपको आपनो रूप यहै री ॥६७॥

(२० औत्सुक्य-लक्षण) ।

दोहा

खन विलम्ब नहिं चित सहै, सो उतसुकता मानि।
इष्ट-चाह, सुमिरन प्रभृति अँग-आलस तहँ जानि ॥६८॥

यथा—

पिय - आगम चितयौ प्रथम - सुख मंगल विधि वाम।
सरबरबस तौं दूसरौ भयौ दिवस को जाम ॥६६॥

(२१ निद्रा भाव प्रसिद्ध है)

यथा—

सवैया

केलि के मंदिर सुंदरि सोने की बेली-सी सोवै नवेली सुहाई।
चारु "कुमार" भुजा उर सोभ विलोकन लोभन जानि जगाई॥
नील निचोल के अंचल में इमि गोल कपोलन की दुति पाई।
ज्यौं जमुना-जल के प्रतिबिम्ब परी झलकै शशि की छबि छाई॥७०॥

(२२ स्वप्न)

यथा—

सवैया

कैसे कहौं निसि को अपनौं सपनौं सखि! नाँहि कह्यौ कछु जाई।
हौं ब्रजगाँउ गली चली जाँउ गयौ कितहूँ मिलि मीत कन्हाई॥
हौं तो "कुमार" लजाइ रही दुरि छैल छबीले सौं जान न पाई।
छैंकि छुई छतियाँ'छल सौं,बल सौं भुज भेंटि,हिये गहि लाई॥७१॥

(२३ बोधजगिबो)

यथा—

सवैया

प्रात जगी अलसात विलासिनि, रैन रमी रति - रंग घनेरै।
घूमत नैन "कुमार" घनी छबि छाइ रही न छुटे मन मेरै॥

बाँधति केस दुवौं भुज सौं, गहि यौं मुख-कांति लखी दृग फेरै।
चंदहि घेरैं घनौं तमजाल, मनौं तम कों चपला-जुग घेरै ॥७२॥

(२४ अमर्ष-लक्षण)

दोहा

वैरि - अहंकृति - नास की चाह, अमर्ष प्रमानि।
निंदा, तर्जन, सिर - चलन, नैन - अरुनता जानि ॥७३॥

यथा—

सवैया

कीन्हौं महाअपराध है तात को घात को जी में गन्यौ कछु त्रास न।
हौं दुजराज हौं राम अकेलैं करौ सब छत्रिय वैरि-विनासन॥
तोलौं जगौ जुगुनू-गन से गन वैरिन के, लघु तेज प्रकासन।
जोलौं प्रचंड प्रभाकर-सौ कर सों न लियौ फर सा पर-सासन॥७४॥

(२५ अवहित्था-लक्षण)

दोहा

आकृति वचन छिपाइवौ गनि अवहित्था भाव।
सकुच अन्य दर्शन तहाँ, मिस चेष्टादि सुभाव ॥७५॥

यथा—

प्रिय संगम रति-रंग सुधि दई भई जो राति।
गनै नौल तिय, कौल की पखुरी खरी लजाति ॥७६॥

(२६ उग्रता)

यथा—

सवैया

तोर्‌यौ सरासन सोर सुनै इत आवत राम ये रोष महारत।
लोहू के तालनि तर्पन के अजहूँ नहि छत्रिय वेदि पिसारत॥
दारुनधार कुठार हनें अति दारनि के उर-दारक दारत।
जानी नहीं जिय नैंकु दया, निज दीन महा जननी कों सँघारत ॥७७॥

(२७ मति-लक्षण)

दोहा

ज्ञान, शास्त्र, गुरु-नय प्रभृति उपदेशादि विचारि।
जो यथार्थ निरधार जिय, सो मति भाव निहारि ॥७८॥

यथा—

कवित्त

एकै यह केसव कलेस-हर सबही कौ,
स्वारथ कौ सारथ न साथी देह साथ के।
कहत "कुमार" हरि जग को पालनहार,
चार्‌यौं वेद आगम गवैया गुन-गाथके॥
जैसे नीकी जोति जिमी, बीज नाखि राख्यौ किन,
सबैं अकारथ बिन बरखेतें पाथके।
रचत अकाथ पुरुषारथ उछाह केतौ,
होइगो निबाह एक हाथ रघुनाथ के ॥७९॥

यथा च—

सवैया

संकर सेस विरंचि "कुमार" सबै बस जासु भये भ्रुकुटी में।
कोटिनि यौं वरह्मांडनि की घटना प्रकटी, मिटी जा चुकुटी में॥
सो परमानँद ब्रह्म लियौ पहिचानि ही लाल लिये लकुटी मैं।
गोपवधू-संग देख्यौ परयौ दुरयौ पीतपटी में निकुंजकुटी में॥८०॥

(२८ व्याधि-लक्षण)

दोहा

ज्वर वियोग वातादि तैं जिय-दुख, व्याधि बताइ।
कंप, शोप, कृशतादि तहँ तन-बाधा बहु भाइ॥८१॥

यथा—

सवैया

ज्यौं ज्यौं गुलाब को नीर उसीर पटीर लगावत जाम बिहानै।
त्यौं त्यौं घरी घरी होति खरी, मन तें सियरी तन कों यहु जानै॥
वेदन को सब भेद न पावत वैद निवेदन कै कै भुलानै।
आएँ तिहारेई ताप घटै कछु जानत कान्ह! हौ न्यान निदानै॥८२॥

(२९ उन्माद-लक्षण)

दोहा

काम, शोक, भय प्रभृति तैं चित-भ्रम कहि उन्माद।
जानि तहाँ रोदन, हसन, वृथागमन, बकवाद॥८३॥

यथा—

सवैया

रोचत नाँहि कछू न सकोचत मोचत है जल लोचन दोऊ।
बात भली अली जानि "कुमार" कही इतही न सही किन कोऊ॥
जानत नाँहि कछू पहिचानत आन को आन बतावत सोऊ।
नाम तिहारो लै बोलत डोलत त्यों कहिये तो कहा कहै कोऊ॥८४॥

(३० त्रास-लक्षण)

दोहा

अकस्मात मन-छोभ जो सोई कहियतु त्रास।
स्वेद, कंप, सुर-भंग तहँ तन-रोमंच प्रकास॥ ८५॥

यथा—

सवैया

केलि के गेह अकेली गई, छल जाने नवेली कहा? सखी प्यारी।
छैल छबीलै गही उत बाँह "कुमार" डरी हहरी कँपि भारी॥
बोली बुलाये, न डोली डुलायेहु, खोली खुलाये न घूँघट सारी।
कोरि निहोरि निहोरि रहै, पिय ओर नहीं मुँह मोरि निहारी॥८६॥

(३१ वितर्क-लक्षण)

दोहा

संशय की जिय-बात कछु, सो वितर्क गनि भाउ।
भ्रू अंगुलि सिर चलन तहँ, लखि निषेध ठहराउ॥ ८७॥

यथा—

सवैया

हेली ? तिहारेई संग उमाह में माह में प्रात कलिंदी हौं आई ।
धोखौ वढ़्यौ जिय जानि कुमार अहैं परसे यह अंभ-तताई ॥
धूम की धार "कुमार" निहारि अरी! किन जो वहु ओर तैं छाई ।
कौने भली चलवीचिनि माँह अली!जल बीच में आगि लगाई । ८८॥

(३२ अपस्मार-लक्षण)

दोहा

अपस्मार कहि भूत - ग्रह - शोकादिक - आवेश ।
कम्प, फैन मुख, अँग निवल, तहँ सुधि को नहिं लेश ॥८६॥

यथा—

चल अंगुलि दल सिथिल वल मुंचत फैन प्रसून ।
तरुवर पवन-प्रचंड-हत गिरत मनौं दुख दून ॥६०॥

मूर्च्छा याही में है ।

(३३ मरण प्रसिद्ध है)

यथा—

सवैया

तजि प्रान गिर्‌यौ रनभूमि में रावन, बाहु महावल सोह छकैं ।
फिरि जीवन जानि कै मीच-कथा नभ वीच बखानत सिद्ध जकैं ॥
कर तीपन पूखन ज्यौं न पसारत, मारुत छ्वै न सकै अलकैं ।
सुरलोक ससंक विमाननि अंक न होइ निसंक निहारि ससंकैं॥६१॥

दोहा

संचारी तैंतीस सब कहे भरतमुनि ल्याइ।
गुपत क्रिया साधन जु छल भाव कहें कविराइ ॥ ६२ ॥

सवैया

चंद उदोत अमंद गह्यौ निसि, देखि अनंद लह्यौ व्रजबालनि।
वेश सखी को "कुमार" बनाइ गए नँदनंदन प्रेम रसालनि ॥
राधिका संग सखीगन में वन में रचि गेंद कदम्ब की मालनि।
कुंज तमालनि के घनजालनि दोऊ गए मिलि खेलत ख्यालनि ॥६३॥

इति संचारी भाव

——:o:——

अथ आंतर भाव

दोहा

विभावादि परिपोष तें थाई कहे प्रधान।
जहँ न पोष तहँ थाइ ये संचारी रस आन ॥ ६४ ॥
ज्यौं थाई तिय पुरुष के प्रीतिहिं रति निरधारि।
यहै पुत्र गुरु देव नृप सौति प्रीति संचारि ॥ ६५ ॥
ज्येष्ठ प्रभृति में हास त्यौं शोक अचेतन माँह।
पुत्रादिक पर क्रोध कहि कार्य प्रभृति उछाह ॥ ६६ ॥
मृग-छौनादिक नेह त्यौं वीर प्रभृति भय लेखि।
हिंसक में घिन, शम खलनि, ज्ञानी विस्मय पेखि ॥ ६७ ॥

इति आंतर भाव

——:o:——

अथ शारीर सात्त्विक-भाव लच्छन—

दोहा

चित्त सत्त्व गुन को गहै प्रानन में वह आइ।
प्रान रचत तन छोभ तहँ सात्त्विक भाव गनाइ ॥ ९८ ॥
भूमि-तत्त्वगत प्रान तें स्तम भाव है होत।
जल तें आँसू, तेज तें स्वेद, विवर्न उदोत ॥ ९९ ॥
वायु-तत्त्वगत प्रान तें देह-कम्प, रोमंच।
प्रलय रचै आकास-गत प्रान हेतु ये पंच ॥१००॥

यथा रसमञ्जर्यां श्लोकः—

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥ १०१ ॥

दोहा

भय सुखादि तें गमन को रोधन स्तम्भ[1] प्रमान।
क्रोध, हर्ष, श्रम प्रभृति तें तन-जल स्वेदहिं[2] जान ॥१०२॥
कहि रमंच सुख, सीत, भय प्रभृतिहिं रोम उमंग[3]।
वे पथु गनि तन-कंप त्यों,[4] विकृत वचन सुरभंग[5] ॥१०३॥
मुख-छवि आन विवर्नता[6], आँसू[7] दृग-जल जान।
सकल चेष्टा - हीनता प्रलय भाव[8] पहिचान ॥१०४॥

(१ स्तम्भ) यथा—

सवैया

बाल नवेली अकेली पठाइ सहेली चली, पिय बाँह गही है।
कीन्हौं गयौ सिर-कम्प "कुमार" नहीं सुख नाहिँन नाहि कही है॥

हाथ छुयौ न, छुटायौ न अंचल, चंचल नैननि लाज लही है।
चन्दमुखी ब्रजचन्द के आनन चन्दहि न्यान निहारि रही है॥१०५॥

(२ स्वेद) यथा—

दोहा

छूवै कपोल, स्रोननि धरी मजुमंजरी लाल।
दूजी जल-कन-मंजरी, तिय-मुख छाजति हाल॥१०६॥

(३ रोमांच) यथा—

परी तान पिय-गान की तिय काननि अनकूल।
रोम-कदंबनि फूलि भौ तन कदंब को फूल॥ १०७॥

(४ स्वरभंग ५, वेपथु, ६ वैवर्ण्य) यथा—

सवैया

हेली गई पिय-बाग अकेलियै देखन केलि की कुंज सुहाई।
सीकति-सी थकि-सी छकि-सी रही काँपति गातनि ताप तलाई॥
आजु निहारचौ "कुमार" कहूँ घन-से तन सौ मन-मीत कन्हाई।
तेरी घनी छबि में छनमेंछबि आन है आनन चन्द में छाई॥१०८॥

(७ अश्रु) यथा—

दोहा

मुकत-माल के हाल लखि पियहिय अंक बिसाल।
ललित होत सखि! सौति-हिय दृग-जल-मुकतामाल॥ १०९॥

(८ प्रलय) यथा—

दोहा

छकी प्रेममद सौं, थकी परि सुख-सिन्धु अथाह।
सोई, माई मोह में, गोई पिय हिय-माँह ॥ ११० ॥

कोऊ जृम्भा नवम भाव कहत हैं।

यथा—

दोहा

बाल निरखि नँदलाल-मुख खरी महल अँगिराति।
रंगभरी मोरति तनहिं भुज-जुग जोरि जँभाति ॥ १११ ॥

इति सात्त्रिक भाव।

——:o:——

अथ अनुभाव

दोहा

अनुभविये रस भाव जिहिं, तेई कहि अनुभाव।
भुज-उतछेप कटाच्छ हरु तनु मन वचन सुभाव ॥ ११२ ॥
कायिक, सात्त्रिक, मानसिक त्यौं आहार्य विचारि।
कहे सबै अनुभाव हैं जानि लेहु विधिचारि ॥ ११३ ॥
कटाच्छादि कायिक कहे, हृदय जुसात्त्विक कार्य।
आनन्दादिक मानसिक, स्वांग कहौ आहार्य ॥ ११४ ॥
भुज-आच्छेप कटाच्छ हरु तिय के हैं अनुभाव।
ते निरखत नायक, हिये गनि उद्दीपन भाव ॥ ११५ ॥

यथा—

कवित्त

रामभुज देख्यौ खग्ग जग्गत समर अग्ग,
रचत समग्ग वैरि-वग्ग कतलान है।
संकियतु विषम भयंकर भुजंग यहै,
अरि-प्रान पवन को जाको खान पान है॥
खन में खुलत खल-मुख पानी सोखि लेत,
ताही तैं "कमार" भर्‌यो पानिप अमान है।
दीहदल दानवनि दलत कृपा न याके,
याही तें जहान में, कहान में, कृपान है॥ १२५॥

(५) वीररसानुभाव

दोहा

लहि सौरज, धीरज, दया, धर उछाह, परभाव।
वैरि-निरादर विनय, धृति, वीर रसहिं अनुभाव॥१२६॥

यथा—

सवैया

मंदिर अंदर में दिकपाल दुरे रन जासों पुरंदर हार्‌यौ।
संगर कों, सुत रावन को सोई आवत संग सजे दल चार्‌यौ॥
साँझ समैं इमि फौज में सोर सुनै उर-जोर उछाह है धार्‌यौ।
रामजू साधत संध्याविधान नहीं,क्रम ध्यान कोन्यान बिसार्‌यौ॥१२७॥

(१ दयावीरानुभाव) यथा—

दोहा

व्याकुल गोपी ग्वाल लखि दए दयामय नैंन।
लख्यौ न गिरिधर कंप करि गिरत पीत-पट बैन ॥१२८॥

(२ दानवीरानुभाव) यथा—

सवैया

मीत पुरातन बाम्हन दीन कों देखि मिल्यौ हँसि दूर तें ज्यौंही।
धूरि भरे पग धोए, दयौ निजु आसन, बैठि गए ढिंग भौंही ॥
तीन मुठी भखि तंदुल तीन हूँ लोक-विभौ दई चौथी को त्यौं ही।
हाथ गह्यो हरि को हरि-बामा सुदामा को दीबे रही अब हौं ही ॥१२९॥

(६) वत्सलरसानुभाव

दोहा

सिर-चुंबन सुत अंग संग दरस परस अभिलाप।
वत्सल में दृग-जल प्रभृति अनुभावहि कों भाप ॥ १३० ॥

यथा—

सवैया

बैन सुन्यौ वनतें हरि आये बने नट-बेप की भाँति गही है।
मात जसोमति द्वार ही दौरि गई, सुत देखन कौं उमही है ॥
कान्हर को मुख चूमति, घूमति, लाइ हिये, निधि मानौं लही है।
आँचर पोंछति गोरज-धूलि है, फूलि हिये सुख भूलि रही है ॥१३१॥

(७) भयानकरसानुभाव

दोहा

सिर दृग कर पग कंप लहि तालु कंठ मुख सोख।
भीति-रीति अनुभवत हैं भय रस में परिपोप ॥ १३२ ॥

यथा—

सवैया

दोउ जुरे दल दीह दिलीस, के धीरन के हिय धीरज छाजैं।
बाढ़ी तराभरी तोपनि की बिकराल प्रलै के मनौं घन गाजं॥
सूखे से आनन दूखे से रूखे से कायर कूर कपै तन लाजैं।
सुंड,सकोरि जंजीरनि तोरि,डरे, बिडरे, भभरे,गज भाजैं॥१३३॥

(८) बीभत्सरसानुभाव

दोहा

मुख दृग नाक सकोरिबौ नैन घूमिबौ लेख।
तुरत गमन तें अनुभवत, रस बीभत्स विशेष॥ १३४॥

यथा—

सवैया

रनभूमि हने अरि-जुत्थ घनैं कटि लुत्थ कराल परे दरसैं।
भखि गिद्ध सृगालनि अध्ध किये चुनि चौंच न ऐंचत आँतन सैं॥
जिहि रूप निहारत वारत प्राननि लोचन लोभित ह्वै तरसैं।
तिन देहनि खेह भरी उघरी दुरगंध सरी लखि लोक त्रसैं॥१३५॥

(९) अद्भुतरसानुभाव

दोहा

साधुवाद, उल्लास दृग, लहि प्रसाद, गति रोध।
तन-रुमंच सुरभंग, तें कीजे अद्भुत बोध॥ १३६॥

यथा—

सवैया

भीषम द्रोन महारथ से पुरुषारथ सौं भिरे भारत माहीं।
पूरन वैर सों पूरौ पराक्रम कीन्हौं है पारथ कर्न तहाँ हीं॥

जुद्ध-प्रवीनता जोहि दुहूँन की, मोहि रहे सिव सिद्ध महाँ हीं।
देवन के दृग रीझे विशेष, अजौं अनिमेष ह्वै लागति नाहीं॥१३७॥

(१०) शान्तरसानुभाव

दोहा

जग अनित्यता, त्याग, मति, गुरु-उपदेश प्रचार।
कहे शान्त अनुभाव है, वेदान्तादि-विचार ॥ १३८॥

यथा—

कवित्त

जनम गवाँयौ वादि जन तू सवादि विष,
विषयनि मादन विषादहू अघाइगौ।
कहत "कुमार" सनसार है असार ताहि,
मानि सुख-सार अघ-ओघनि हू छाइगौ॥
चंचल वंचक मन रंचक न जान्यौ कान्ह,
भव-पारावार बीच नीच तू समाइगौ॥
हरिनाम गुन कौं विसारि, धारि औगुन कौ,
घरी घरी बूड़ति घरी सी बूड़ि जाइगौ॥ १३९॥

इति अनुभाव।

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज-कुमारमणिकृते रसिक-
रसाले स्थायिभाव संचारिभाव - अनुभाव-
निरूपणंनामचतुर्थोल्लासः ॥ ४ ॥

—❧—

पञ्चम उल्लास

अथ विभाव

दोहा

स्थाइ भाव रामादिगन, सामाजिक जिय आनि।
जे विशेष भावित करैं, ते विभाव पहिचानि ॥ १ ॥
होत जाहि आलम्बि रस, सो आलम्ब विभाव।
रस-उद्दीपन जे करैं, ते उद्दीप विभाव ॥ २ ॥
तहँ नायक अरु नायिका रस-सिंगार आलम्ब।
यथाजोग औरै रसहिं भनि आलम्ब-कदम्ब ॥ ३ ॥

नायक—लक्षण

दोहा

सब गुन-नेता, निज गुननि बस नेता सब लोक।
सोई नायक जानिये मेटे निजजन-सोक ॥ ४ ॥
त्यागी, छमी, धनी, तरुन, सुंदर, कला-प्रवीन।
नायक कहि गुन आठ युत संगर-धीर, कुलीन ॥ ५ ॥
थिरता, सोभा, ललितता, गंभीरता, विलास।
तेज, त्याग, गुन-माधुरी आठ सत्वगुन वास ॥ ६ ॥
औरै गुन भरतहि गुनै व्यस्त समस्त विचारि ॥
यातें ढीठें शठादि तें भेद होत निरधारि ॥ ७ ॥

सुभ सरीर, नीरज-नयन, गुन-नीरधि गंभीर।
पीर-हरन भट भीर में समर-धीर रघुवीर ॥ ८ ॥

कवित्त

भाग जसुधा को, वसुधा को आभरन पूरौ,
सुधा-पूर, व्रज-वधू - लोचन - चसक कौ।
रूप कौ निधान, रस-कला सावधान महा—
दान सदा जान पर-पीर के कसक कौ॥
कुल कौ मसाल, बलवंड वैरी - उरसाल,
पालक "कुमार" है दिसाकऊ दसक कौ।
गुन कौ जनैया, निजजन कौ चिन्हैया पायौ,
कुँवर कन्हैया लोक ठाकुर ठसक कौ ॥ ९ ॥

दोहा

धीर शान्त, धीरोद्धत, धीर ललित निरधार।
धीरोदात्त कह्यौ तथा, नायक है विधि चार ॥ १० ॥

(१) धीर शान्त

दोहा

विद्या-पूरन, ब्रह्मकुल, वीर, सदय हिय माँह।
सम गुन-जुत माधव प्रभृति धीर शान्त है नाह ॥ ११ ॥

(२) धीरोद्धत

दोहा

निजसराह-रुचि चपल चित, रन-प्रिय धरि अभिमान।
नायक धीरोद्धत गन्यो, भीम प्रभृति है न्यान ॥ १२ ॥

(३) धीर ललित

दोहा

नहि सराह, प्रिय, सदय हिय, गुनमय, सुचित, सुभाइ।
धीर ललित नायक गन्यौ युधिष्ठिरादि वताइ ॥१३॥

(४) धीरोदात्त

दृढव्रत, छमी, गँभीरबुधि, विजयी साचा धीर।
उत्तम धीरोदात्त गनि, ज्यौं नायक रघुवीर ॥१४॥

(अन्य भेद)

दच्छिन अरु अनुकूल, सठ, ढीठ, भेद ये चार।
मिलै धीर ललितादि सब सोलह भेद विचार ॥१५॥

(१) दच्छिण

सकल तियनि पर एकसम जाकी प्रीति लखाइ।
सो दच्छिन नायक गन्यौ रस-बस चतुर सुभाइ ॥१६॥

यथा –

जँह जँह सोलह सहस तिय, तँह तँह बसि नँदलाल।
महलनि महलनि निरखि गति थके देवरिषि हाल ॥ १७॥

सवैया

खेलत कान्ह कदम्ब चढ़े लखि गोपी कदम्ब रची मन भाई।
घेरि चहूँ दिसि माँगतीं फूलनि फूली हिये लहि प्रीति सुहाई ॥
काहू चह्यौ कर-कंकन, हार, विहार को कंदुक काहू वताई।
फूल बहार के भार भरी इक डार है नंद "कुमार" नवाई ॥१८॥

(२) अनुकूल

दोहा

जासु प्रीति इक तरुनि पर, एकै भाँति विसेखि।
सो नायक अनुकूल कहि कवित नृत्य में लेखि ॥१९॥

सवैया

लाज बड़ी में गड़ी-सी रहै कहा झाँकिहूँ झाँकत झेरु ठयौ है।
देखि सुनी तिय आन सुहाति न ध्यान तू मोहन मंत्र दयौ है ॥
तो बिन देखें "कुमार" नहीं कल देख्यौ भलौ यह नेह नयौ है।
नंद कौ नंदन है ब्रजचंद पै तो मुख-चन्द-चकोर भयौ है ॥२०॥

(३) शठ

दोहा

रचि अपराधहिं तरुनि सों निरपराध-सो होइ।
कहि प्रछन्न, प्रकाश, इमि शठ नायक विधि दोइ ॥२१॥

ज्येष्ठा कनिष्ठा के उदाहरण में प्रछन्न शठ है। यौ उदाहरन ऐसो चाहिये। यथाच—

(१ प्रच्छन्न शठ)

सवैया

रैन जगे कहु भोर पगे किहि और लगे सँग संगम जोऊ।
प्यारी मनाई मिलाइ दई हौं "कुमार" न प्यार बतावत सोऊ ॥
रीति तिहारी बिहारी न जाने सु प्रीत प्रतीत मिले रहौ दोऊ।
मो हिय हैं हर ध्यान लगै, तिय कान लगै न चबाइनि कोऊ॥२२॥

(३ प्रकाश शठ)

सवैया

वेष सखी कौ बनाइ "कुमार" सखीनि में खेलत कान्ह दुलारौ।
रैनि मिल्यौ न मिल्यौ इनही कौ निकुंजनि केतो प्रचार बिचारौ॥
बाँधि भुजानि सौं जान न देहुँगी ब्यौंत बन्यौ बलि प्रीतम प्यारौ।
पायौ दुरयौ चितचोर सु चोर है चोर-मिहीचनि खेलनवारौ॥२३॥

(४) धृष्ठ

दोहा

करि अपराधहिं निडर जिय, खीझै, झुकै न लाज।
नायक ढीठ बताइये बरबस रचै सुकाज॥२४॥

सवैया

भोर गये लखि रोष भरी तिय अंक दुरैवे को अंक लगाई।
यों समुझाई "कुमार" कही, निसि जागत जागी नहीं अरुनाई॥
मेरे बसी मन में, तन में, तुम ही हिय मेरे न और सुहाई।
नैनन में तुव नैन बसै झलकी दृग अंचल की सु ललाई॥२५॥

दोहा

पति, उपपति, बैसिक तथा मानी चतुर सुभाइ॥
उत्तम मध्यम अधम ता नायक बहुत बताइ॥ २६॥
परिनेता तियवस सुपति, परपति उपपति, ठाइ।
वेश्यारत बैसिक गन्यौ, मानी मान सुभाइ॥ २७॥
क्रिया वचन चतुरा इहीं मिलै सु चतुर प्रमान।
इक प्रोषित कै तिय मिलित सब पति द्वैविध जान॥२८॥

परिकीयादि हू में पति शब्द लाक्षणिक है।

दोहा

उत्तम लेहि मनाइ तिय-हिय बस रस के काज।
मध्यम तिय-रोषहि रचै, अधम तजै डर लाज ॥२६॥
निज समान बैरी नृपति प्रतिनायक कहि न्यान।
उपनायक भाई, सखा, फौजदार, दीवान ॥३०॥
सेवक, सुभट, विदूषकै अनुनायक पहिचानि।
पण्डित, प्रोहित, गुरु प्रभृति धर्म-सहायक जानि ॥३१॥
विप्र, विदूषक, हास-प्रिय गुन-पारग विट चेट।
पीठमर्द रस-बस तरुनि देइ मिलाइ सहेट। ३२॥

इति नायकविचार।

अथ नायिका-लक्षण

दोहा

नायक के सम गुननि जुत कही नायिका लेखि।
प्रतिनायक, उपनायिका, सौति, सखी हरु देखि॥ ३३ ॥
भेद सुकीया, परकिया, सामान्या है तासु।
परिनीता पति-विनयमय परम-धरम सुकिया सु॥ ३४॥

प्रत्येक पतिन सों परिणय तें द्रौपदी हू में स्वकीया-लक्षण है।

पतिव्रता स्वीया

दोहा

परिनेता के वस सदा हिय-रिस कौ नहिं ठौर।
पतिव्रता स्वीया सुभनि साधारन है और॥ ३५॥

खण्डितादि भेद स्वीया में मानिबे को प्रतिव्रता जुदी मानिये। यथा—

सवैया

बैन न आन के कान परै, नहिं नैननि आन की छाँह गही है।
बोले ही बोलति, डोलति डोलेही, नाह छबीले की छाँह ठही है॥
सूधे सुभाइ, सुधा-सनी बानि, "कुमार" विलास नई यै नई है।
प्रान तें प्यारौ है प्यारे कों जानति, प्रानपियारे के प्रान भई है॥३६॥

अन्य स्वीया। यथा—

सवैया

नैन बसे पिय रूपहि में पिय के रस ही रस बात सुहाई।
'रूसति है तिय प्रीतम सों' यह बात सुनै हू सही नाह ठाई॥
याके "कुमार" सदा प्रिय-प्रेम उछाह की ऊपमता हिय छाई।
मान की सीख सखीनि धरी पै घरी घनसार लौं फेरि न पाई॥३७॥

स्वकीया-भेद

दोहा

मुग्धा, मध्या, प्रौढतिय, स्वीया है विधि तीन।
परकीयहु में मध्यता तथा प्रौढता बीन॥ ३८॥

आदि पुरान में नवीन ब्याही पितृगृहस्थित होइ, सो उढा स्वीया चोथौ भेद गन्यौ है। यथा—

सवैया

वेदी के पासहिं, पावक के ढिंग पावक कैसी सिखा लगै उज्जल।
भाँवरैं देत विदेह-सुता, लखि राम को रूप बिमोहि छकी पल॥
पानि सौं पानि गह्यौ रघुनंदन, यौं कर अंगुलि काँपी हैं ता थल।
प्रात के वात [illegible] ल ज्यौं, लाल कमोदिन के दल चंचल॥३९॥

याहीको भेद, पति-घर गये नवसंगम तें नवोढा है। यथा—

सवैया

संग सखी मिलि लै गई केलि के मंदिर सुंदर कान्ति खरी है।
गौने के रैनि मयंकमुखी परजंक में प्रीतम अङ्क-भरी है॥
प्यारे को हाथ "कुमार" पर्यौ कहुँ नीवी के छोर त्यों जोर डरी है।
यौं हहरी. न धरी थिरता ज्यौं घरी जल तें बिछुरी मछरी है॥४०॥

मुग्धा

दोहा

मुग्धा अतिडर मध्यमा कहि समलज्जाकाम।
लघुलज्जा प्रौढा कही, रति-रस सरस सकाम॥ ४१ ॥
मुग्धा में नवमदन, नव—जोवन, अति ही लाज।
भूपन-रुचि, रति-वामता, वरनत सुकवि-समाज॥ ४२ ।

(१) नवमदना मुग्धा

कवित्त

लोचन प्रवीन. कटि छीन होति छिन-छिन
हीन होति सौति-मति गुन-गन राह में।
गात सुकुमार, चारु चीकनें, उजार छवि
जाहिर "कुमार" चाह प्रीतम-सराह में॥
अंगनि मनोज, ओज-संग ही उरोज बढ़ै
रोज बढ़ै रंग पिय-मिलन उमाह में।
लोग देखि बाल की लजान लगी डीठ दुरि
जान लगी, लाल लखि न्यान लगी चाह में॥४३॥

(२) नवयौवना मुग्धा

सवैया

देखत प्रीतम को दुरिहू दृग - कंज ये पावै विकास घनेरौ ।
त्यौं कच कोकनि के जुग सावक चाहै "कुमार" सकास बसेरौ ॥
जावक सौ रँग, सौति के नैन चल्यौ घट तेरो अयान अँधेरौ ।
गातनि कैसे दुरायो है जात, प्रभात-सो जोवन रूप उजेरौ ॥४४॥

नवयौवना मुग्धा द्विधा है:—

दोहा

जोवन ज्ञात, अज्ञात तें द्वैविध को तँह जान ।
सो मुग्धा नवजोवना द्वैविधि बरनि प्रमान ॥ ४५ ॥

(१ ज्ञातयौवना)

सवैया

कंदुक एक लिये कर सुंदर, नन्द-कुमार तिया तन मेली ।
हार "कुमार" बनावत ही कर ऊँचे कै फूल की गेंद सुझेली ॥
अंचल गौ उर तें चलि त्यों पिय के दृग चंचल देखि नवेली ।
नैननि ही मुसक्यानी सखी सु बहौ बरजा करि सैन सहेली ॥४६॥

(२ अज्ञात यौवना)

सवैया

पाइनि मंद गयन्दन की गति, पेखि सखी गन में श्रम ठानै ।
कान लौं लोचन गौन "कुमार" सु स्रौन धरे जलजात प्रमानै ॥
रोमनि राजी बिराजी लखै, रसना मनिनील प्रभा पहिचानै ।
जानैं न जोवन आपनी देह में कैसे तिहारे सनेह में जानै ॥४७॥

(३) लज्जावती मुग्धा

सवैया

सँग प्यारे के चौपर खेलौ, हसौ, सकुचो न कछू सखियाँजन सों।
पिय की मनुहारि करौ, मनुहारि जु चाहती, नारि इलाजन सों॥
लखि भाजि न जैये, समाजन की जिए लाज न कीजिये साजन सों।
हिय जोरि रहौ हित ता जन सों बचिहौ तब मैन के ताजन सों॥४८॥

(४) भूषणरुचि मुग्धा

सवैया

कंचुकी सोंधे सनी सुबनी पहिरी चुनरी चटकीली सुरंग सों।
दर्पन देखि "कुमार" सरूप सिंगार सिंगारति प्रीति-उमंग सों॥
एक कही, करि हेली हहा, यह पावै सही करि सोभा तरंग सों।
राखति भूषन में रुचि रंग तौ लाल मिलाउरी सोने से अंग सों॥४६॥

(५) रतिवामा मुग्धा

सवैया

खोली तनी कितनी विनती सों तऊ अँगियाँ-अँग बाहु दुरायौ।
त्यौं पहिरावत हार "कुमार" रच्यौ पियहू अपनो मन भायौ॥
कुंकुम कौ अँगराग रचावत गाढ़ उरोज ज्यौं हाथ लगायौ।
त्यौंहू खरे नख-रेखनि प्यारीहू प्रीतम के उर राग बनायौ।।५०॥

(६) वयःसन्धि मुग्धा

दोहा

शिशुता में जोबन जहाँ न्यारो जानि न जाय।
वयःसन्धि मुग्धा तियहि बरनत हैं कविराय॥ ५१॥

यथा—

सवैया

देखि हौं जू इक गोपसुता छवि छूटे नई छन जो लगि जाति है
गातनि दीपक-सी दुति, सोहति मोहति है, मुरि जो मुसक्याति है।
यों सिसुताई में सौने-से अंग "कुमार" नई तरुनाई सुहाति है
केसरि रंग में ज्यों मिलि संग में ईंगुर की अरुनाई दिखाति है॥५२॥

विश्रब्ध नवोढा

दोहा

रति-रस सों पिय-संग सों जाके कछु परतीति।
सो विश्रब्ध नवोढ तिय बरनत कविता-रीति॥५१॥

यथा—

कवित्त

सुनि सुनि कान दै तिहारो गुन-गान न्यान
रीझति रिझावति बिहसि अँगराइकै।
अंगनि सिंगारिनि कसत आँगैं रस पागै
राउरे दृगनि लागै दुरति लजाइकै॥
जानि अनुराग बाग बेलिनि के देखिबे को
ल्याई हौं लिवाइ, बड़े भाग मिलौ आइकै।
भेंटौ अब लाल! हिये अबला लगाइहेम—
बेली-सी अकेली आजु केली-कुंज पाइकै॥५४॥

मध्या

दोहा

उन्नत जोवन, काम त्यौं वंकवचन, लघु लाज।
वरनत सुरत-विचित्रता, मध्या में कविराज॥५५॥

(१) उन्नतयौवना मध्या

सवैया

चंचल लोचन, अंचल में मुसक्यात, कपोलनि वात सुहाई।
ऊँचे उरोज निहारि चलै, पग मंद गयंदन की गति पाई ॥
ऐसी लसी नवजोवन संग नवेली के अंग "कुमार" लुनाई।
चूनौ मिलै जिमि मंगली-संग में रोचन रंग में रोचि सुहाई ॥५६॥

(२) उन्नतकामा मध्या

सवैया

रूप अनूप तिहारो है लाल! सुबाल नवेली करचौ दृग अंजन।
तातें कहूँ खन न्यारे न राखति प्यारे तियानि के मान के भंजन ॥
जौलौं "कुमार" इते तुम आये हौ, तौलौं तमासो लखौ मनरंजन।
प्यारीके नैन झरोखनि झाँक सपंखे परे पिंजरा जिमि खंजन ॥५७॥

(३) वक्रवचना मध्या

सवैया

तैसो सुहात न और कछू चित ज्यौं रसकेलि कलानि की वातैं।
कैसे के कीजै "कुमार" घरी घर-काज को वैरि रहै चहुँघातैं ॥
देख्यौ सुहात न द्यौस तुम्है, दिन रैनिहू रैनि वसैं जिय जातैं।
सुंदर स्याम कहावत हौ, यह रूप है राउरो साँवरो तातैं ॥५८॥

(४) लघुलज्जा मध्या

सवैया

कैसे रचौं पिय पास विलास "कुमार" हुलासनि को सुख लूटै।
रूप अनूपम देख्यौ चहौं सखि! संग को नेह नहीं हिय टूटै ॥

(४ विविधभावा प्रौढा)

कवित्त

झूलति हिंडोरे बाल लाल सों "कुमार" कहै
सुरति सुरति-सी जताइ मुसक्याति है।
विमल कपोलनि पै अलक झलक सोहै,
मुख श्रमजल-कन छलक दिखाति है॥
चंचल है अंचल सुहात गोरे गात खुलि
कटि की लचक मचकति में सुहाति है।
मुरि मुरि मुरक में पीठि फेरि जाति है, पै
फेरि फेरि प्यारे ओर डीठि फेरि जाति है॥ ६५॥

(५ लघुलज्जा प्रौढा)

सवैया

प्रीतम के बस प्यारी पगी दृग-डोरि लगी तजि लाज सुभावै।
प्यारे करी दृग की पुतरी, पुतरी-सी नचै पिय जो मन भावै॥
बोलनि बोलै बलाइ तिहारी "कुमार" बिहारी ज्यौं रीझि रिझावै।
सैननि ही हिय की कहि जात, सुनैननि ही सबबात बतावै॥६६॥

स्वकीया, पति-प्रीति के भेद ते ज्येष्ठा कनिष्ठा द्वै भाँति है। अधिकप्रीति तें ज्येष्ठा, अल्पप्रीति तें कनिष्ठा। यथा--

ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा

दोहा

दोऊ ढिंग हैं बाल इक आँखि न नाँखि गुलाल।
अंक माल दूजी लई चूमि कपोलनि लाल॥ ६७॥

इति स्वकीया

परकीया

दोहा

परपति सों अनुराग रचि, परकीया तिय होइ।
प्रथम अनूढा जानिय, अपर परोढा सोइ॥ ६८॥

अनूढा पित्रादि-वश्य है, परोढा पति के वश्य है, तातें अन्य सों अनुरागिनी होय सो परकीया है। अनूढा गान्धर्वविवाहोत्तर स्वीया होति है। जैसे शकुन्तला महाश्वेतादि है। यथा—

श्लोकः—

यः कौमार हरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपाः।
ते चोन्मीलितमालती-सुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः॥
साचैवास्मि, तथापि तत्र सुरतव्यापार - लीलाविधौ।
रेवा-रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥ ६९॥

इहि श्लोक में प्रथम अनूढा परकीया है, फेरि ऊढा भये स्वीया है।

(१ अनूढा परकीया)

सवैया

बैठी कहूँ इक गोपसुता गुरुनारिनि में गुनगौरि सुहाई।
कैसे मिलै वह कान्हकुमार, सो काहू सखी यह बात सुनाई॥
ऐसे में आइ कढ्यौ कितहू तें "कुमार" कहै, वह छैल कन्हाई।
प्यारी निसा-रतिकी करि सैननि नैनइसारति कीन्ही विदाई॥७०॥

(२ परोढा परकीया)

कवित्त

माइ-घर कैसे कैसे कीजिये विलास हास,
कठिन है बस बास पीहर-निवास में।
बिन देखे कल न परति, तलफत चित,
रचिये "कुमार" जैसे केलि-रस रास में॥
आये मेरे काज ब्रजराज कछू काज-मिस,
ननँद जिठानी बानी बोलैं उपहास में।
पास नहीं सखी, भैंट आस नहीं, त्रासन तें—
सासन दुसासन परोसी आस-पास में॥ ७१॥

परकीया-भेद

दोहा

निपुना, त्यों रतिगोपना, जान लच्छिता, और।
वचन क्रिया की चतुरई निपुना द्वैविध ठौर॥७२॥

पहिचानवारे सों जो चतुराई रचै सो निपुना है। बिन पहिचान—वारे सों चतुराई रचै सो स्वयंदूती है। यह भेद मानिये।

(१ स्वयं दूती)

सवैया

आधिक जाम करौ बिसराम "कुमार" अरामकी कुंज इतै है।
अंत वसंत के ग्रीषम की लपटैं न घटै, दिन साँज समै है॥
छाँह घनी पियौ नीरजनीर, सु सीत समीर लगै सुख देहै।
हाल लखौ फल लाल रसीलो रसाल-लता में कहूँ मिलि जैहै॥७३॥

(२ वचनविदग्धा)

दोहा

विवि खंजन मिलि रमत तहँ, जहाँ होत निधि-ठान ।
इमि खंजननयनी कह्यौ, लखि हरि रूप-निधान ॥७४॥

(३ क्रियाविदग्धा)

दोहा

नवल कमल की लखि कली, हिये लगाई लाल ।
हाथ अगूठी लाल लखि हिये धर्‌यो हसि बाल ॥७५॥

यथा—

सवैया

देखै अटा चढ़ि दोऊ वटा, द्रग लागे दुहून सों प्रीति लही है ।
दै पठयो कुसुमीरँग को पट, यौं पर प्रीतम-प्रीति कही है ॥
चूनौ मिलै हरदो रँग रोचन प्यारे "कुमार" पठायो सही है ।
बाढ़त रंग है एकत संग ही, संग भये बिन रंग नहीं है ॥७६॥

याही में सखी-वचनादि भेद हैं

गुप्ता—

दोहा

भयो, होत, ह्वैहै सुरत, ताहि दुरावै नारि ।
गुप्ता परकीया तहाँ तीन भाँति निरधारि ॥७७॥

(१ वर्तमान सुरतगोपना)

दोहा

प्रातहिं गनपति पूजिहौं, निसा अकेलो जाइ ।
ल्यावत केतकि फूल हौं कंटक कुटिल सम्हाइ ॥७८॥

सवैया

तोहि गई सुनि कूल कलिंदी के, हौंहू गई सुनि हेली हहारी।
भूली अकेली "कुमार" तहाँ डरपी लखि कुंजनिपुंज अँध्यारी॥
गागर के जलके छलकै घर आवत-लौं तन भीजिगौ भारी।
कंपत त्रासनि येरी बिसासनि! मेरी उसास रहै न सम्हारी॥७६॥

(२ वृत्त, ३ वर्तिष्यमाण सुरतगोपना)

सवैया

फूल बहार निहारनि काज "कुमार" तहाँ गई तो सँग मै हौं।
भोर अकेलियै आजु चली, डरपी चटकाहट-सोर सुनैहौं॥
भौंरनि दौरि डसी चहुँघा लगे कंटक के छत कैसे दुरैहौं?
फेरि अली उहि कुंज-गली न गुलाब-कली कहुँ बीनन जैहौं॥८०॥

लक्षिता

दोहा

हृदय - सखी जहँ नारि को लखै जार - संभोग।
तहँ प्रछन्न, प्रकास कहि दुविध लच्छिता जोग॥८१॥

(१) प्रच्छन्नलक्षिता

सवैया

ध्यान धरौ रहै जाको सदा, कहूँ न्यान मिल्यौहै वहै मनभायो।
रंग में साध्यो भलो अपने गुन बाध्यो अराध्यो सो देव सुहायो॥
हार के बीच "कुमार" बहार में, प्यार में प्यारे को राखि रमायो।
काहू नहीं लखि पायौ अली!यह लाल तू पायौ सुहौं सुखपायो॥८२॥

(२) प्रकाश लक्षिता त्रिधाः— मुदिता, अनुशयना, साहसिका च।

(१ मुदिता)

सवया

भींति गिरी तँह ऊँचौ रचाव्रत मंदिर सुंदर के दुचिताई।
कैसे बनै अब मीत अगार के और विलोकन की मनभाई।
देखी "कुमार" बनाई तहाँ, मनभावन भौन के पास सहाई॥
द्वारी अटारी के पाखेमें पेखत राजी है राजनि रीझि दिवाई॥८३॥

यथाच—

बीज बयौ तब ही तें बये हिय में पियकेलि-विलास खरे हैं।
अंकुर होत हितैं अँकुरे, जल सींचत, सीचि गए सुथरे हैं॥
बाढ़त त्यौं ही "कुमार" बढ़े, सँग फूलत ही अँग फूल भरे हैं।
मीत सकेत के हेत तिया के मनोरथ-खेत फरे ही फरे में॥८४॥

दोहा

पिय ढिंग पठई दूतिका ताहि सिखावति बाल।
पहुँची तहँ, जहँ कुंज ही मग देखत नँदलाल॥८५॥
इहाँ हू मुदिता है।

(२ अनुशयाना)

दोहा

लखि विघटन संकेत को, जाके अनुशय होइ।
कहत जु अनुशयना यहै, परकीया कवि लोइ॥८६॥

ताके भेदः—विघटितसंकेता. अप्राप्तभाविसंकेता, शंकितसंकेत-गमना।

(१ विघटित संकेता)

तजी पीतपट रुचि भजी वदन पीत रुचि हाल।
सन-वन सूखत देखि कें, तन मन सूखत बाल ॥८७॥

(२ विघटित वर्तमानसंकेता)

सवैया

हार ब नावन हाल चह्यौ हौं अहें अपनैं कर साँझ सवेरै।
देखत बाग बहार "कुमार" यों वारि गई लखि संगहि मेरै ॥
कौन धों वैरिनि वैर परी, न परी दृग हू कहुँ कुंज के फेरै।
बेल कली लखि बीनि लई, सखि छीनि लई, छबि आनन तेरै॥८८॥

(३ विघटित भविष्यत्संकेता)

दोहा

कुंज-भवन ह्वहै सघन, इभि सींचत नित नीर।
तपत हियौ रचिहै अपति सखि ! यह सिसिर समीर॥८९॥

(४ अप्राप्तभाविसंकेता)

दोहा

नव चंपक-कुंजनि निरखि, सुमिरन पिय घर जात।
सुनै सरस सरसीनि में तित फूले जलजात ॥ ९० ॥

(५ शंकितसंकेता जारगमना)

कुंज-कुसुम हरि-कर लख्यौ, वर तरुनी रचि सैन।
बिबस दिवस के अन्त जिमि, जलज सजल करि नैन ॥९१॥

(३ साहसिका)

सवैया

ज्यौं वरजी, तरजी गुरु नारिनि, त्यौं त्यौं तजी कुल-कानि ढिठाई।
सीख न की सखियानि की हौ अँखियानि लखे लखि रूप इठाई॥
हेरि हियौ हरिलीन्हौ "कुमार" कहा निठुराई अहो हरि! ठाई।
बाउरी हो गई· राउरी प्रीति, ठई हमको ठग कैसी मिठाई॥६२॥

कुलटा

श्लोक

परोढां वर्जयित्वा च वेश्यां चाननुरागिणीम्।
आलम्बनं नायिका, स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः॥६३॥

इहि कारिका में स्वीयाही शृङ्गारालम्बन व्हैकै अनूढा परकीया आलम्बनहै।

श्लोक

अनूढा च परोढा च परकीया द्विधा मता।
व्रजेश-व्रजवासिन्य एताः प्रायेण विश्रुताः॥ ६४॥

इत्यादि आदिपुराणके वाक्य तें रतिपुष्टा, तातें परकीया परोढा ऊ आलंबन हैं। कुलटा वेश्या कहूँ न कही, पै जहाँ एकत्र रतिपुष्टता होय, अन्यत्र पुरुष परीक्षा-मात्र तें धन-प्राप्ति तें प्रीति होय, तहाँ कुलटा वेश्या ऊ आलम्बन। होय यथा—

श्लोक

रति-रसलालसया सखि? सकलयुवानः परीक्षिता हि मया।
हृदयानुरञ्जन-विधौ मधुरिपुणा कः समो भविता?॥६५॥

इत्यादि उदाहरण कुलटा के हैं।

अनेकनि में वा धनही में प्रीति वरनै, रसाभास ही है।

सामान्या

दोहा

अनव्याही, बहु पुरुष सों रचै चतुर संभोग।
फल रागहि सामान्य तिय, होय कहत कवि लोग ॥६६॥

स्वर्गगत शूरतातपः प्रभावादि अनुरागिणी सुरवेश्या है। सौंदर्यादिफलानुरागिणी नलकूबरादि-अनुरक्त रम्भा है। मृच्छकटिक में चारुदत्ता अनुरागिणी वेश्या है। तहाँ यह लक्षण सम्भव है।

कहूँ वित्ताभिलाषोपाधि हूँ में एकत्र अनुराग-दाढ्र्य है। अन्यथा अभिनय में रोमांचादि न सम्भवै। केवल वित्तानुरागिणी कल्पितानुरागिणी आलम्बन नाहीं।

सामान्या तीन भाँति है—स्वतन्त्रा, जनन्याद्यधीना, नियमिता।

(१) स्वतन्त्रा

सवैया

नेह निहारन ही सों भयौ बसु लोक सबै, वसु दै मन भायो।
गीत-कला गुन-गान में तान में मैनका रंभा को मान घटायो ॥
केते मिले मनभावन पै, हरि छैल छबीले ही मोहि रिझायो।
हेली यहै रति नेम हौं पायौ, है तायौ-सो हेम है, प्रेम सुहायो॥६७॥

(२) जनन्याद्यधीना

सवैया

लोक विलोकनि भोर परे, घर द्वार खरे, धन देत हहारी।
मेरे न चाह कछू धन की, मन को इक गाहक, प्रीति निहारी ॥

ए हौ रह्यौ तुम ही मिलि कै मन, प्यारे ! यहै तनु जानौं तिहारी ।
हारी हौं एक जु रोकत न्यारी कला-गुनगोत सिखावनहारी ॥६८॥

(३) नियमिता

वंदीग्रहण तें वा धनदानादि तें जो गृह ही पात्रादि राखी होय सो नियमिता कही । यथा—

दोहा

'मोल लई वित दै' यहै कहौं न कबहूँ बोल ।
चित-वित दै इक लाल ? तुम, मोहिं लियो बिन मोल ॥६९॥

इति सामान्या ।

अथ अवस्थाभेद तें अष्टविध नायिका कहियतु हैं । अन्यसम्भोग-दुःखिता, मानवती, गर्विता ये तीन भेद न्यारे गने हैं । आदि—दोऊ भेद खंडिता में, गर्विता स्वाधीनपतिकादि में गनिये, न्यारे नाहीं । गर्विता प्रेम, गुण, रूप, यौवन-गर्व तें चारि भाँति है ।

(१) प्रेमगर्विता

दोहा

निसदिन दृग तें न्यारियै नहि राखत पिय मोहि ।
क्यों छनदाछन खेल कों, सीख कहौं सखि ! तोहि ॥१००॥

यथा च—

आन पियारी सों कहूँ रचो विहारी ! प्रीति ।
तौ विसेप करि जानि हौ मो असेप रस-रीति ॥१०१॥

(२) गुणगर्विता

सवैया

गीत कवित्त कलानि "कुमार" दूहूनि गनी है घनी चतुराई ।
नेह नयो, नई केलि को रंग, दुहू परवीनता जीति जताई ।
प्यारे लियौ कर बीन बजावत, तान नवीन तहाँ उपजाई ।
प्यारी अलापि के राग यहै, मधुरी धुनि बीन तें आनि सुनाई ॥१०२॥

(३) रूपगर्विता

दोहा

अंग, अंग छबि की बनक, कनक कनक दुति-हीन ।
कहि दूखन भूषन न तन, भूषत पिय परबीन ॥१०३॥

(४) यौवनगर्विता

सवैया

कंचन-सो तन, कंचुकी गाढ़ी कसै तन झाँकी ही ठाढी अमानी
नेह लग्यौ ब्रजनाइक सों, सँग लागी फिरै, लखि रूप-लुभानी ॥
छ्वै निकसे मग माँह "कुमार" बुल्यान ही सों हँसि बोलति बानी ।
तोरति अंग, मरोरति ओंठि, उठी छतियानि फिरै इठलानी ॥१०४॥

१ स्वाधीनपतिका

दोहा

जासों पति अतिरस-भर्यौ. सदा रहत आधीन ।
सो अधीनपतिका प्रिया बरनत सुकवि प्रवीन ॥१०५॥

यथा —

सवैया

तेरे सदा रस के बस प्यारौ "कुमार" रचै सोई जो तुव भावै।
ताही सनेह सों माती फिरै, रँगराती, कहा सखि सीख सिखावै ?
मेरे भई रिस पावक जो, पग जावक प्यारे के हाथ दिवावै।
छैलछबीलौ तो छाती लगाइये,पाइ छुवौ जनि पाइ छुवावै॥१०६॥

यथाच—

दोहा

मानतु आन तिया-सुरति, सुरति तिहारी ल्याइ।
ज्यों पखान सेवत तहाँ, निज - देवत हिय ध्याइ ॥१०७॥

(परकीया स्वाधीनपतिका)

सवैया

क्यौं कुल-कानि सों कानि रहै, जुग-सो खन बीतै विना हरि हेरे।
मेरे ही द्वार "कुमार" लख्यौ, मिस ठानि कछू निसि साँझ सवेरे॥
बीस बिसै बस कान्हर में मन, कान्ह बस्यौ मन क्यौं फिरै फेरे।
हौंही भई इक कान्हमई, कहा लोक कहै बस कान्हर तेरे॥१०८॥

एसे सामान्या तथा मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा स्वाधीनपतिका जानिये।

२ वासकसज्जा

दोहा

पिय आगम निहचै धरै, साजति सेज सिंगार।
वासकसज्जा तिय यहै, चाहति मिलन बिहार ॥१०९॥

वासक के निमित्त जो सज्ज होय, सो वासकसज्जा है।

श्लोक

वारश्च,[१] ऋतुकालश्च,[२] प्रवासादागमस्तथा[३] ।
प्रसादनं[४] च रुष्टाया नायिकायास्तथोत्सवः[५] ॥ ११० ॥
नवोढाभ्युपपत्तिश्च[६] षडेते वासकाः स्मृताः ।

तातें एष्यत्पतिका वासकसज्जा ही में मानिये। यथा—

कवित्त

सौंधे सों लिपायो, छिरकायो लै गुलाब नीर,
अगर घिसायो, घनसार सों सघन है।
फूलनि सुहायो, छबि छायो, बिछवायो सेज,
अतर मँगायो, रति - केलि के सदन है ॥
भूषन उज्यारो, त्यौं "कुमार" हिय धार्यौ हरि,
वसन सुधार्यो, तन रंगित रमन है।
वार वार झाँकी, द्वार—आवन गमन जानि,
आजु मनभावन को आवन भवन है ॥ १११ ॥

(एष्यत्पतिका वासकसज्जा)

कवित्त

अँगनि बिबस ठाढ़ी औधि के दिवस बाल,
प्रानन धरति, प्रानपति ध्यान धारि कै।
प्यारे मनभावन को आगम "कुमार" तो लौं—
दूर ही तें सखी कह्यो, लह्यो निरधारि कै ॥
साजति मिलन - साज आनँद है पूर्यो अँग
अँगिया दरकि गई याही अनुहारि कै।

वैरी जो विरह वस्यौ कुच-गढ़ बीच सोई
लाजि, गयौ भाजि कोट कंचुकी विदारि कै ।।११२।।

वासकसज्जा-भेद, मुग्धादि में स्वकीया परकीयादि में जानिये ।

३ उत्कण्ठिता

दोहा

वसि सकास कछु काज-वस, नहि पिय पहुँचै पास ।
होय तहाँ उत्कंठिता तरुनि विरह के त्रास ।। ११३ ।।

इहाँ प्रियमिलन-निश्चय में वासकसज्जा है । मिलन-निश्चया-ऽनिश्चय में विरहोत्कण्ठिता है । मिलन-निराशा में विप्रलब्धा है, पास स्थिति में । दूर स्थिति में मिलन-निराशा में प्रोषितपतिका है । तातें विरहोत्कण्ठिता में उत्कण्ठा-सहित ही विरह दमयन्यादि में, गीत-गोविन्दादि में वरन्यो है । केवल विरह वरनै, अवस्थान्तर होत है । उत्कादिक जाति नाहीं, जोई अवस्था कवित्त में समुझि परै, सोई भेद जानियं ।

उत्कण्ठिता—द्वै भाँति है । एक कार्यविलम्बितसुरता, दूजी अनुत्पन्न-संभोगा ।

(१) कार्यविलम्बितसुरता

सवैया

प्यारो सिधारयो नहीं किहि हेत ? सकेत-निकेत में वीति गौ जामै ।
जो पिय आपने पास हि पाइहों, राखों छिपाइ हौं केलि के धामै ।।
भेंटि मरों अकवारि "कुमार" विसारि हों, वाढ़ो वियोग इहा मै ।
हार करै हियरा-मधि राखि हों, रापिहों त्यौं करिकै कजरा मै ।।११४।।

(२) अनुत्पन्नसंभोगा

पूर्वानुराग में सात्तात्, श्रवण, चित्र, स्वप्न-दर्शन तें अनुत्पन्न-संभोगा उत्कण्ठिता चारिप्रकार है।

(१ साक्षाद्दर्शनानुतापा)

सवैया

माथै किरीट, छरी कर लाल है, सालस आयौ गयंद की गैलनि।
मोहन मेरी गली मुसक्यात, अली! निकस्यौ रचि नेह की सैननि॥
कैसे "कुमार" बनै मिलिबो, न परै कल, क्यौं मन की कहौं बैननि।
पीरी पिछौरी को छैल लख्यौ, तब तें छबि छूटै नहीं छन नैननि॥११५॥

(२ गुणश्रवणदर्शनानुतापा)

सवैया

ते धनि है सुनि कै सुर जे, उर धीरज धारती मोह महा तैं।
मो तन को मनमोहन प्रान भो, ताहि मिलाउरी ल्याइ हहा तै॥
कानन तें कहुँ कान परी धुनि, बाँसुरी-तान "कुमार" तहाँ तैं।
न्याउ से औघट प्रान परे भटकैं, घट आवैं री! न्यान कहाँ तैं॥११६॥

(३ चित्रदर्शनानुतापा)

सवैया

चित्र लिखाई, दिखाई है सूरति, काम तें सुन्दर रूप अमोलौ।
कान्हमई छबि छाकि भई सु"कुमार"परयौ सुधिसार में जोलौ॥
मोहि रहै कहै बाँसुरी-तान सुनाइये गान, अहो! मुख खोलौ।
प्यारे!रहौ गहि मौन कहा ? हहाआए हौ, मौनहिं क्यों नहि बोलौ ?
॥११७॥

(४ स्वप्नदर्शनानुतापा)

सवैया

नैन लगे हरि सों, न लगे पल, भैंट रची सपने बड़ भागै।
आनँद सों मिलि प्यारी कहै दुख तौ लों गये खुलि लोयनि जागै॥
जो फिरि मीत "कुमार" मिलै तो, किसा कहौं जैसी दसा अनुरागै।
राखि हिये अभिलापकै नींद परी पटतानि,पै आँखि न लागै॥११८॥

४ विप्रलब्धा

दोहा

संगम-सुख वंचित भई वढ़ै विरह तें ताप।
तहाँ विप्रलब्धा कही, मिलै न पिय ढिग आप॥११९॥

श्लोक

'विप्रलम्भो वंचने स्याद्विसंवादवियोगयोः।'

यह अर्थ तें—जो भैंट में वंचित होय, सो विप्रलब्धा कही॥

यथा—

कवित्त

साजति सिंगार साज सखी परिहास काज,
लाजनि वितायौ जाम जामिनी को आप तें।
पहुँची "कुमार" कुंज-पंथ में थकित भई,
अकथ मनोरथनि मनमथ-दाप तें॥
पहुँच्यौ पछाँह चंद, चन्दमुखी-पास पिय
पहुँच्यौ न, त्रास वढ्यौ रतिपति चाप तें।
नैन जल-विन्दु-धार मोती-हार उर भई,
हार भयौ चूनौ, विरहागिनि के ताप तें॥१२०॥

(१) पतिवंचिता

दोहा

दुरि निकुंज, देखी दसा मो आकुलता हाल।
हिय लागी, लगि है न हिय, तव दुख जानौं लाल ! ॥१२१॥

सवैया

कुंज दुरयौ पिय खोजत ताहि, गये जुग-से जुग जाम तमी के।
जागी सँजीवन ओषधि-सी जिय ताप, मिलाप भए बिन पी के॥
बाढयौ "कुमार" पयोनिधिपूरि-सो पूर तहाँ बिरहा तन ती के।
चंद-उदौ लखि लोचन च्वै-चले चंदपखान-से चंदमुखी के ॥१२२॥

(२) सखीवंचिता

सवैया

प्यारे कों ल्याइ दुराइ तू राखति, खोजि थकी यह को दुख जानै।
जीवन-संसय, सोक सँताप ज्यों ऐसी हँसी क्यों बिसासनि! ठानै॥
मो जिय पैठि ज्यों आकुलता लखि है सखि ! मेरी दसा पहिचानै।
जो हसि प्रानपती मिलतौ नहि, तो मिलते नहिं प्रान हिरानै ॥१२३॥

५ खण्डिता

दोहा

आपुन पे प्रिय-प्रेम को खंडन, तहाँ निहारि।
रससिंगार अनुकूल रिस, रचै खंडिता नारि ॥१२४॥

खण्डं प्राप्ता खण्डिता, इहि अर्थ तें मानवती, अन्यसम्भोग-दुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता, ये भेद खंडिता ही के मानिये। कलहांत-

रिता में रिस-शान्तिमात्र ही है। प्रेम-खंडन अन्यस्त्री-सम्भोग-जनित ही होत है, यातें शृंगाररसानुकूल रिस कही। यथा—

सवैया

काहू पिया रति-रंग के चीन्ह निसा रमि प्यारे के अंग मढ़ाये।
प्यारी निहारि "कुमार" तहाँ नहि आनन आदर-चोज पढ़ाये॥
भौंह चढ़ाइ, बढ़ाइ के रोप—हिये, पिय ऊपर नैन बढ़ाये।
मानौं मनोज हि ओजसों लाल-सरोजके बान कमान चढ़ाये॥१२५॥

धीरादिभेद

दोहा

धीरज तथा अधीरजै धैर्याधैर्य प्रमानि।
धीर', सुअधीरारिसहिं धीराऽधीरा जानि॥१२६॥
मधुर वचन धीरा कहै, गहै अधीरा रोप।
धीराऽधीरा मध्यमा ठानति रिस रस-पोप॥१२७॥
रिस दुराइ धीरा भनै, हनै अधीरा खीझि।
धीराऽधीरा प्रौढ तिय रचै, चतुर वच रीझि॥१२८॥

(१) धीरा

कवित्त

सोहति "कुमार" टीक लागी है कपोल पीक,
जावक की लीक भाल, छवि की तरंग सों।
आलस-वलित जागे, राते नैन कोर जामे
नखनि के छत लागे, घने अँग अँग सों॥

लाल लाल चीन्ह, भुज-मूल में अतूल सोहैं—
हार मुकतानि के, कठोर कुच-संग सों।
जाही बाल-प्रेम सों तिहारौ मन रंग्यौ लाल,
ताही तन रँग्यौ हाल लाल लाल! रंग सों ॥१२९॥

(२) अधीरा

सवैया

आनि कहौ मधुरे इत बोल पै, डोलत आन के हाथ बिकानै।
ताही को जावक भाल लिखाये हौ, होत सिखाये कहा सिख मानै॥
आए "कुमार" हौ भोर ही भौन, इते चित भौ न कछू सतरानै।
कौन इलाज करै अबलाजन, साजन कै जब लाज न जानैं ॥१३०॥

(३) धीराऽधीरा

सवैया

प्यारी के प्रेम रहे पगि हौ, जगि हौ पिय! कौन के रैनि बिताई।
बातैं अलीक कहौ न, अलीक में जावक-लीक है ठीक लगाई॥
रूप अनूप तिहारौ निहारि "कुमार" चहौ रिझवारि कहाई।
आनन आन की डीठि लगै न यौ ईठि के अंजन-रेख बनाई॥१३१॥

(३ वक्रोक्तिगर्विता खण्डिता)

दोहा

दुरै नहीं उर माल - मधि, दीजे सो उर माल।
बिन-गुन गुहि लीन्हैं कुसुम केसरि केसरलाल॥१३२॥

(मानवती खंडिता)

सवैया

राखी दुराइ भलें जदुराइ! विहारी तिहारी जो प्यारी कहाई।
लागत ताहि हिए लगे चीन्ह हैं, जागत जा-सँग रैन बिताई॥
आपने नेह के थाप को जावक, छाप "कुमार" जो भाल बनाई।
सो मिटि जाइगी पाय परें परौं पाय, परौ जनि पाय कन्हाई! १३३॥

(अन्यसम्भोगदुःखिता)

दोहा

पिय-रति दूती प्रभृति में लखै, सुनै, अनुमानि।
दुःखित तिया सोई इतर-भोगदुःखिता मानि॥१३४॥

यथा—

तहाँ पठाई नहि गई, भई गई करि हाल।
कंज लैन कित धौं गई, भई रेख लगि नाल॥१३५॥

पुनर्यथा

उम्कत झांकिनि हौं लखी, गई जु मो-हित काज।
रची छैल छल-गति अली, बची भली भजि आज॥१३६॥

६ कलहान्तरिता

दोहा

रिस में पिय-अपमान रचि, रिस तजि फिरि पछिताइ।
कलहान्तरिता तिय यहै, कवित नृत्य में ल्याय॥१३७॥

(१) ईर्ष्याकलहान्तरिता

सवैया

रोप रच्यौ, तिय दोप तिहारेई, प्यारे! करौ रस-पोप परेखौ।
पायन हू परि प्यारी मनाइये, प्रीति की रीति है बंक बिसेखौ॥

नेकु तिहारे निहारे बिना कलपै जिय, क्यों कल धीरज रेखौ।
नीरज-नैनी के नीर भरे, किन नीरद से द्रग-नीरज देखौ ?॥१३८॥

(२) प्रणयकलहान्तरिता

सवैया

गातनि हीं मिलि एक भये, रस-बातनि हीं मिलि मोद बढ़ायौ।
जोवन,रूप,कला,गुन,ग्यान, गुमान की गाहनि ज्यौं उरझायौ॥
एक ही सेज रिसाइ रही, पिय बाँह गही न, हौं मान्यो मनायौ।
प्रीतम भौन तें जान दयौ,तजि मौन हियो गहिहौं न लगायौ॥१३९॥

७ प्रोषित पतिका

दोहा

प्रिय-प्रवास के हेतु तें, विरह-दुखित जिय होय॥
तहँ प्रोषितपतिका तरुनि, मानत पंडित लोय॥१४०॥

इहाँ वर्तमानसामीप्य में आदिकर्म में 'प्रोषित' शब्द में क्त प्रत्यय-विधान तें, प्रोषितं विद्यते यस्मिन् सः = प्रोषितः। प्रोषितः पतिर्यस्याः सा = प्रोषितपतिका। इहि अर्थ तें प्रवत्स्यत्पतिका, प्रवसत्पतिका, प्रवसितपतिका ये तीनौ भेद प्रोषितपतिका ही में मानत हैं।

(१) प्रवत्स्यत्पतिका

सवैया

प्यारे के गौन की बात सुनी, तिय भौन में वंदति दीपक-बाती।
साँझ के कौल-सी कौलमुखी सखियानि में सूखि गई रँगराती॥
प्रीतम के सँग पौढ़ी "कुमार" पे जान्यौ मनोभव प्रान को घाती।
नीदौ नहीं नियराति,हिराति,लगो हियरा,सियराति न छाती॥१४१॥

(२) प्रवसत्पतिका

सवैया

कूर अकूर के आगम ही, ब्रज-बालनि नैननि नींदौ विनासी।
गौन की गैल निहारि "कुमार" रचै जिय त्रास, पिसाच-दिसा-सी॥
गोकुल-चंद विलोके विना, वसि है दृग में त्रिन चंद निसा-सी।
बीसबिसैं बिस-सों बगराइ, चल्यौ ब्रजतें ब्रजवासी बिसासी॥१४२॥

(३) प्रवसितपतिका

सवैया

आँखिनि देखि लगै झर आगि-सी छूटैं गुलाल मुठी भरि झोरी।
सूनौ लखै ब्रज, दूनौ बढै दुख, खेलैं, हँसै कहुँ को ब्रज-गोरी?
औधि "कुमार" वसंत की दै, विसराइ दई वृषभानु-किसोरी।
हाय! उतै कुबजा कुलटा-संग, हेली हहा! हरि खेलि हैं होरी॥१४३॥

(४) परकीया प्रवत्स्यत्पतिका

सवैया

प्रीतम को प्रसथान कह्यौ, ढिंग बाग में काहू सहेली सयानी।
फूली लता-मिस देखन कों निकसी, जिय-आकुलता अधिकानी॥
सीख "कुमार" पयान की सैननि पीउ कही, त्यों रही मुरझानी।
मध्यसखीनिमेंकौलमुखीनिरखीनिसिकौलनि-सीकुम्हिलानी॥१४४॥

कोऊ विगलित-प्रस्थानपतिका प्रोषितपतिका भनत हैं। यथा—

दोहा

ललन-चलन सुनि बाल के, हाल चले-से प्रान।
फिरि आयो प्रसथान सुनि, फिरि आये अस्थान॥१४५॥

८ अभिसारिका

दोहा

रचि बनाव जो प्रेम-बस, तिय पहुँचे पिय-पास।
कहियतु सो अभिसारिका, चाहति केलि-विलास ॥१४६॥

निज पास पिय कों बुलावै, सोऊ अभिसारिका कहत हैं।

लखति चंद-छबि चंदमुखि, झाँकी - द्वार उघारि।
लियौ खैंचि कर धारि पिय, स्वेत पिछोरी डारि ॥१४७॥

इहाँ वासकसज्जा जानिये।

एसौ उदाहरन दीजे तो अभिसारिका होत है। यथा—

सवैया

प्यारे को रूप लख्यौ जब त, तब तें तजी नैननि नींद चिन्हारी।
प्रीति अरी! हिय में खटकै, हटकै खरी त्यों गुरु-लाज विचारी॥
हाथ तिहारे "कुमार" है जीवन, यों सखिसों कहि बोली न प्यारी।
जीवननाथ! जिवाइये जू घनस्याम! चलौ घन की अँधयारी॥१४८॥

तहाँ अभिसार-समयः—ज्योत्स्ना, अँधियारी, दुपहर, सांझ, वर्षा प्रभृति अनेक हैं। उत्सवादि-दर्शन, सखी, वृश्चिक-दंश आदि व्याज हैं। यथा—

दोहा

लखि न परी ग्रीषम खरी, विषम दुपहरी माँह।
लपिटि अरुनपट, लपट-सी चली सघन-घन छाँह ॥१४९॥

(१) ज्योत्स्नाभिसारिका

कवित्त

लाजनि रचति भौंर भली अभिसार-बेर
 हेरत वे मग, जाकी प्रीति सों पगति है।
चीर छीर-फैन-सो पहिरि, तन आभरन
 मोती-हीर-हार-सँग सोभा उमगति है॥
परति दुराई क्यों गुराई, यों "कुमार" कहै,
 चंदन, कपूर, अंगराग सों जगति है।
पूरन घनेरी यह चंद्र की उजेरी आजु,
 तेरी मुखचंद्रिका में चेरी-सी लगति है॥१५०॥

(२) कृष्णाभिसारिका

कवित्त

नीलपट - लपिटी, लपट ऐसी तन, तैसी—
 निपट सुहाई मृगमद - खौर हेरिये।
नैकु उघरत अंग, छबि की तरंग बढ़ै,
 घन-संग जामिनी में दामनी निबेरिये॥
सुकवि "कुमार" मारभूप की मसाल मनौं
 गई कुंज-जाल, तहाँ छाई है अँधेरिये।
खोलि मुखचंद, चंदमुखी लखै जाकी ओर,
 ताही ओर जोर महताब-सी उजेरिये॥१५१॥

(३) वर्षाभिसारिका

दोहा

कर अखण्ड जल-धार की डोरि, अधारहिं धारि।
चली मनोरथ-पथ अली, बरखा-निसि बरनारि ॥१५२॥

(४) व्याजाभिसारिका

सवैया

मंजन कों जमुना-तट - कुंजनि, भोरहि खंजन-नैनि पधारी।
भेंट भई न सहेट में प्यारे सों, प्यारी यहै चित चिंत है धारी ॥
तौ लों "कुमार" निकुंज की ओर कहूँ चितचोर लख्यौ गिरिधारी।
'हौं हरपे जलधार न ढ़ारी है' यों कहि, फूल के बाग सिधारी ॥१५३॥

ये भेद स्वकीया, परकीया, सामान्या में तत्तत्स्वभाव मिलै जानिये।

(५) नवोढाऽभिसारिका

सवैया

चौंर छुटी अलकै, मुख घूंघट, सारी अँध्यारी ढ़पी मृगनैनी।
नूपुर और सनाबजै भूषण, केसरि-आड है आँकुस-पैनी ॥
पौढ़न को पिय-पास नवोढ वधू चली मत्तमतंगज-गैनी।
केतो रचै अडदार तऊ, गडदार गई, लै सखी सुखदैनी ॥१५४॥

एसैं मध्या प्रगल्भा में जानिये।

ये भेद अवस्थाकृत हैं, तातें यथासम्भव नायक में हू होय सकैं।

"हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव" (गीत गोविन्द)

इहाँ कलहान्तरित नायक है।

नायक उत्कंठित, मानी, अभिसारक, वासकसज्ज (हू) होत है, पत्नी कौ मातृ-गृहादिगमन में प्रोषितपत्नीक है।

इति नायक-नायिका-निरूपण।



अथ रस-चेष्टा

जोवन में शृङ्गाररस-चेष्टा कहियतु भाव।
होइ कदाचित पुरुष में, तिय में सहज सुभाव ॥१५५॥

उक्तं हि श्लोक—

यौवने सत्वजाः स्त्रीणामष्टाविंशतिरीरिताः।
१ २ ३
अलङ्कारास्तत्र—भावहावहेलास्त्रयोऽङ्गजाः ॥१५६॥
४ ५ ६ ७ ८
शोभा, कान्तिश्च, दीप्तिश्च, माधुर्यं च, प्रगल्भता।
९ १०
औदार्यं धैर्य्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजाः ॥१५७॥
११ १२ १३ १४ १५
लीला, विलासो, विच्छित्ति, विव्वोकः किलकिंचितम्।
१६ १७ १८ १९ २०
मोट्टायितं, कुट्टमितं, विभ्रमो, ललितं, मदः ॥१५८॥
२१ २२ २३ २४ २५
विकृतं, तपनं, मौग्ध्यं, विक्षेपश्च कुतूहलम्।
२६ २७ २८
हसितं, चकितं, केलिरित्यष्टादश-संख्यकाः ॥ १५९ ॥

दोहा

लीला, विभ्रम, ललित पुनि त्यों विच्छित्ति, विलास।
ये पाँचौं शारीर है, कहे भाव-परकास ॥१६०॥
मोट्टायित अरु कुट्टमित, विहसित अरु विव्वोक।
ये अन्तर के भाव में गन्यौ चार को थोक ॥१६१॥
किलकिंचित हरु जानिये आंतर अरु शारीर।
इमि सब भावनि की उपज, मानत हैं कवि धीर ॥१६२॥

इनके लक्षण:—

दोहा

जोवन में चित सरस में कछू चाह, कहि भाव।
अधिक चाह यह हाव है, हेला अधिक सुभाव ॥१६३॥

(१) भाव

सवैया

बाल न जानति बंक विलोकि "कुमार" न बोलति बोल रसीलौ।
बात कहै रस की सखियानि में, जानि परै चित चाह-गहीलौ ॥
सूधेई लोचन सों अवलोकिबौ, लागतु है अनुराग-रँगीलौ।
डीठि चलै वहराइ कहूँ ठहराइ तहाँ, जहाँ कान्ह छबीलौ ॥१६४॥

(२) हाव

सवैया

कुंज तें आवत कान्ह "कुमार" तहाँ मग में कर-गेंद है मेली।
खेलै सखीनि में गोपसुता उत बीच ही आपनें हाथ सों भेली ॥

अंचल गौ उर तें चलि चंचल सैननि दै मुसक्यानी सहेली।
नैन रिसौंहे करै सखि सों,है हँसौहे रचै हरि सोहैं नवेली ॥१६५॥

(३) हेला

सवैया

गौने के द्यौस सलौने सुभाइ सों, बैठे हैं चौक दुओ रसभीनै।
जोरि कह्यौ पट-छोर सखीनि "कुमार! जुरै हित नेह नवीनै" ॥
यों सुनिकैं मुसक्याइ, लजाइ, पिया मिस ही पियत्यों दृग दीनै।
भौ पिय को हियरो भियरो,लखिचंचललोचन अंचल भीनै ॥१६६॥

शोभा, कांति, दीप्ति-लक्षण

दोहा

तन-दुति जोवन रूप-रति-रस-बस सोभा जानि।
बढ़ै अधिक यह कांति है, अतिबढ़ि दीपति मान ॥१६७॥

(४) शोभा तथा (५) कान्ति, यथा—

कवित्त

गई है न गौने, दई! कौने धों सलोने गात—
सौने - कैसी दुति, तन तिय के गढ़ी रहै।
गति गरवाई, अवलोकनि सनेह छाई,
पाई चतुराई, मनों मैन सों पढ़ी रहै ॥
मधुर, सुहानी, सुधा-रस - मानी, मृदुवानी
आनन "कुमार" मुसकानियै चढ़ी रहै।
बाढ़त विलास रंग जोवन-विकास - संग
कान्ति अंग-अंगनि अनंग की मढ़ी रहै ॥१६८॥

(६) दीप्ति

कवित्त

भौन में सहज गौन रचति किसोरी तहाँ,
होरी-कैसी झरप झरोखनि ह्वै लेखिये।
जतन हजार हूँ "कुमार" अभिसार समै—
दुरै न दुराई यों गुराई गात पेखिये॥
दीपति पिया में ऐसी, दीपक-सिखा में नाँहि
चपला में, चंद की कला में न बिसेखिये।
भारी अँधियारी में मझाई कुंज-गली जहाँ
तहाँ-तहाँ छाई-सी जुन्हाई अजौं देखिये॥१६९॥

माधुर्यादि-लक्षण—

दोहा

सहजहिं सुन्दरता अधिक, यह माधुर्य बिसेषि।
लाज कमी तें ढीठ-चित, प्रगल्भता यह लेखि॥१७०॥
सदा विनय चित-वृत्ति जो, सो उदारता मानि।
अति थिरताई होति जिय, धैर्य भाव पहिचानि॥१७१॥

(७) माधुर्य

सवैया

भौंह बँटा-सी बढ़ी मुसक्यानि, कपोलनि सों ससिकों अनुहारै
गात बिराजत माजे-से, काहे कों आँजे-से नैननि अंजन धारै॥
अंगनि कांति "कुमार" निहारत, प्यारी क्यों मो दृग अंतर पारै।
दूषन लों सब भूषन जानि, अहे सुकुमारि उतारि न डारै॥१७२॥

(८) प्रगल्भता

सवैया

अंचल झीने में चंचलनैनि, "कुमार" निहारि रहै रस-पागी।
छूटी लटैं लटकी-सी चलैं, न डरै नव-जोवन के मद जागी ॥
अंग सों अंग लगाइ गई, सुलगाइ गई-सी अनंग की आगी।
घालि गई मृदु तूल-सो फूल,सु पीर अतूल-सी सूल-सी लागी॥१७३॥

(९) औदार्य

सवैया

संग तिहारोई चाहत अंग ये, गाहत आनंद - वृंद फरे-से।
आन सुनै न "कुमार" ये कान, तिहारे अहो ? गुनगान भरे-से ॥
लोचन रावरे रूप-सुधा पिये, नैकु न लोक की लाज डरे-से।
प्रान तुम्हैं बिन, प्रान के नाथ ! ये जानिये आन के हाथ परे-से ॥१७४॥

(१०) धैर्य

दोहा

बरजि बरजि गुरुजन थकौ, दुरजन बकौ हजार।
बध्यौ प्रेम-गुन छुटत क्यों ? मन मेरो रिझवार॥१७५॥

(११) लीला-लक्षण

वचन अंग गति भूषननि जो पिय को अनुहारि।
सोई लीला भाव है, रस-बस साजति नारि ॥१७६॥

'हम कैसे बनैहैं' इहाँ वचन अनुहारि है। यथा—

सवैया

पास सखी के विलास को हासु, धरै जिय प्रेम, प्रकास प्रबीनौ।
प्यारौ "कुमार" बसै जिय में, तिय तातें रच्यौ पिय-वेष नवीनौ॥
प्रीति-पगी पगरी हरि की धरि सीस, अहै हरि यों चित लीनौ।
रूप अनूपसों जीति रतीको, रतीपति कों जुवती जय कीनौ॥१७७॥

(१२) विलास-लक्षण

दोहा

मन, वच, दृग, गति प्रभृति में कछु विशेष रस लेखि।
पिय-दरसन सुमिरन भये, भाव विलास बिसेषि॥१७८॥

यथा—

सवैया

साँकरी खोर अचानक भैंट भई, हरि आवत कुंजगली सों।
बाल चली मुरि लाजनि नंद "कुमार" छुई कर कंज-कली सों॥
खीझि के भौहनि मोहन कों मुसक्यानि अकोर दै रीझ भली सों।
लोचन-कोर नचाइ, रचाइ गई चितचाइ, बचाइ अली सों॥१७९॥

(१३) विच्छित्ति-लक्षण

दोहा

थोरेई भूषन प्रभृति अँग-सोभा अधिकाइ।
तरुनि-भाव विच्छित्ति सों, मानत हैं कविराइ॥ १८०॥

यथा—

सवैया

केसरि रंग रँगी अँगिया, तन सादिवे सारी सों कांति पसारी।
कुंकुम-रेख बनी विधु-वेप लिलार मृगमद खौरि सुधारी॥
सादिये सादी में साहि विनी यह एसी न और "कुमार" निहारी।
लाल! लखौ अबला अब लागति, भोरजुन्हाई-सीभूपनवारी॥१८१॥

(१४) विव्वोक लक्षण

दोहा

आदर हू की ठौर तिय रचति निरादर-रीति।
प्रेम, हँसी, गर्वादि तें गनि 'विव्वोक' प्रतीति॥१८२॥

यथा—

सवैया

घालिये कैसे छरी? कर काँपत, त्यों बरजोरी के बाँह मरोरी।
मीड़ौ कपोल, उरोज, अबीर लै, नेकु मुरे अँगिया तन छोरी॥
केती "कुमार" है गोपकिसोरी जु हौंहू कहा कछु कीन्ही है चोरी?
वैर परौ ब्रजनायक मेरे ही, ऐसे कहौ, कैसे खेलिये होरी? १८३॥

पुनर्यथा—

आन मिलौ बरहू बरजे हु अचानक घाटनि बाटनि होऊ।
मोह मिठाई-सो बैननि बोलत, डोलत, सैन बतावत, सोऊ॥
डारत फाँसी-सी हाँसी "कुमार" लगावत गाँसी-से लोचन दोऊ।
काहूसों कान्ह ठगाइ रहे, ठग! ठाड़े रहौ न ठगाइहैं कोऊ॥१८४॥

(१५) किलकिंचित-लक्षण

दोहा

त्रास, हास, सुख, दुख, रुदित, रुष प्रभृतिक इक संग।
रचति तरुनि रस-बस छकी, सो 'किलकिंचित' रंग॥१८५॥

यथा—

कवित्त

जोबन रसाल, अलबेली - सी नबेली बाल,
केली के सदन हेम-बेली-सी सुहाति है।
लागी प्रीति नई या "कुमार" निरसंक भई,
प्रेम - रस रंग - मई अंग अरसाति है॥
सद - रद अंकनि कपोलनि, मयंक - मुखी
उघरत आँचर, अचानक रिसाति है।
खीझि सतराति, हँसि रीझि अरसाति,
परजंक मैं लजाति, पिय-अंक में न जाति है॥१८६॥

(१६) मोट्टायित-लक्षण

दोहा

पियहिं सुमिरि, लखि, सुनि, गुननि, चित में चाह जताइ।
तिय अँगिराइ, जँभाइ जँह 'मोट्टायित' सु बताइ॥१८७॥

यथा—

सवैया

काननि तान "कुमार" परी, तब तें हिय तेरो फिरै सँग दोर‍्यौ।
काम भुजंग करी बस है, सु अरी! अरसाति भलै मन मोर‍्यौ॥

गानरच्यौ पिय तौंचित-चोरीकी, न्यान तुही पियको चित चोरयौ।
बाँधि अरी! दृगडोरनिसों इहि अंगमरोरि निसंग मरोरयौ॥१८८॥

(१७) कुट्टमित-लक्षण

दोहा

गहत केस कुच, अधर रद देत, संभ्रमहिं ठानि।
तिय कँपाइ सिर नहिं कहै, यहै 'कुट्टमित' मानि॥१८९॥

यथा—

सवैया

जासों "कुमार" मिल्यौ मन है, सु मिली गली आपने गोप-किसोरी।
छल छबीलै छुई छतियाँ, मुख चूमत, छैकि करी बरजोरी॥
सीस कँपाइ, दुओ कर कों झहराइ, रिसाइ के भौंह मरोरी।
पून्यौनिसाकेनिसाकर-सोमुखखोलि,निसाकरीसाँकरीखोरी॥१९०

(१८) विभ्रम-लक्षण

दोहा

पिय-आगम संभ्रम प्रभृति, आनँद कै भरि आव।
भूलि भूषननि तिय धरै, सोई 'विभ्रम हाव'॥१९१॥

यथा—

कवित्त

केसरि पगनि धारी, जावक सु धारि खौरि,
ओढ़नी कै ओढी सारी, वाढी छवि न्यारिये।
उलटी कचनि तानी कंचकी न जानी, आँजि

आगम बिहारी को "कुमार" इत प्यारी सुनि,
कँचन-नूपुर कर-अंगुरिनि धारिये।
हार कर्यौ रसना है, रसना है हार कर्यौ,
चाहत विहार कर्यौ, भूली सी निहारिये। १६२॥

ललित तथा मद-लक्षण—

दोहा

अंगन अति सुकुमारता कह्यौ 'ललित' है हाव।
'मद' कहि जोबन रूप गुन प्रेमहिं गरब सुभाव ॥१६३॥

(१६) ललित

यथा—

कवित्त

देखौ चलि हाल बाल ल्याई हौं ललित लाल !
जाकी सुकुमारता "कुमार" अधिकाति है।
अंगनि सों लागै, लागै कठिन-सो पिय-वास,
मालती गुलाब पास ल्याए न सुहाति है॥
भूषन-विचार कहा ? केसरि की खौरि भार,
डार-सी लचकि बेसम्हार भई जाति है।
मंद पग धारि, चारु चाँदनी पसारि,
केलि-घर लों पधारि, हारि हारि अरसाति है ॥१६४॥

(२०) मद

यथा—

सवैया

सुंदरि ठौनि उठौनि उरोजनि, कौन न धीर की धीरता-घाइक ?
त्यौंही "कुमार" विलोकति वैरिनि वंकविलोकनि सों दुख-दाइक॥

जोवन-रूप कसे मदमाते, सितासित लाल रँगे बहु भाइक।
लागि रँगीली रसाल बिसाल,ये सालत हैं दृगसाल-सेसाइक॥१६५॥

(२१) विकृत-लक्षण—

दोहा

स्तम्भ, लाज, दुख प्रभृति सों हियौ रहै जहँ छाइ।
बचन कह्यौ नहिं जाय कछु, 'विकृत' भाव तहँ ल्याइ॥१६६॥

यथा—

सवैया

आजु अली! इहि मेरी गली निकस्यौ, तहँ प्रीतम मीत सुहायौ।
कीन्हौ प्रनाम कछू मिससों,मुसक्यानिकी बानिसों मोहि रिझायौ॥
आनन ओर चितै रहि रीझि, हौं होतु "कुमार" यहै पछितायौ।
बोलि न पासलियौ, हरि आयौ,गरौभरिआयौ,गरे न लगायौ॥१६७॥

तपन तथा मौग्ध्य-लक्षण—

दोहा

तन-सँताप पिय-विरह तें 'तपन' भाव यह ल्याइ।
जानि कहै जु अजान लों बात 'मौग्ध्य' तहँ ठाइ॥ १६८॥

(२२) तपन

यथा—

कवित्त

आगम असाढ़ के उकाढ़ बढ्यौ ताप तन,
लाग्यौ नेह गाढ़ हिय अब कैसे नाखिये?

करि गयौ परबस, सरबस हरि गयौ,
हरि गयौ ब्रज तें, "कुमार" कासों भाखिये ?
हियौ होत टूक-टूक कूकत कलापिनि के,
कोकिल-अलापनि क्यां जीवौ अभिलाखिये।
धीरज हिरात घन गरजि-गरजि उठै,
प्यारे-बिन बरजि बरजि प्रान राखिये ॥ १६६ ॥

(२३) मौग्ध्य

यथा—

सवैया

मालती-मंजुकलीनि को हार,"कुमार" रच्यौ पिय सौतिन आगे।
मानिक-मौतिन-माल के संग, हिये पहिरायौ अली अनुरागे ॥
मेरे हुलास बढ़्यौ अति ही, चहुँ पास विकास सुवाससों जागे।
हौं समुझी मुकताहल ये फल हेली चमेली के फूलनि लागे ॥२००॥

(२४) विक्षेप-लक्षण—

दोहा

आधे भूषन-रचन, अध वचन, डीठि, गति मानि।
तिय जो कौतुक सों रचति, सो 'बिच्छेप' बखानि ॥२०१॥

यथा—

कवित्त

देखति तमासौ पिय-देखन के मिस प्यारी,
झाखति झरोखे में बिलोकी सखी वृंद में।
आधी कहै बात, आधे भूषन सुहात गात,
आधौ दीन्हौ जावक है पगनि अनंद में ॥

अध खुल्यौ घूँघट, "कुमार" आधी चितवनि
चित्त बनि चुभ्यौ सुखकंद नँदनंद में।
बादीगर ख्याल रचै नजरि के बंद वौ, ये
होति है नजर-बंद प्यारी मुखचंद में ॥ २०२ ॥

(२५) कुतूहल-लक्षण

दोहा

नीकी बात सुनै, लखै चित जो चंचल होत।
तहाँ 'कुतूहल' नाम को तिय में भाव उदोत ॥ २०३ ॥

यथा—

सवैया

'आवत कान्ह "कुमार" इतै गली' काहू अली यह बोल सुनायौ।
त्यौंही चली उठि भौन तें भामिनि, अंजन एक ही नैन लगायौ ॥
हार बनावत हाथ लिए मुकतागन अंगन लों छुटकायौ।
प्रीतम-आगम-आतुरमानौसुचातुरचौक-सोपूरि बनायौ ॥२०४॥

हसित तथा चकित-लक्षण—

दोहा

जोवन में हँसि-हँसि उठै 'हसित' भाव यह लेख ॥
भय संभ्रम तें चौंकिबो, 'चकित' भाव सु विशेष ॥ २०५ ॥

(२६) हसित

यथा—

सवैया

आँचर ऊँचे उरोज चलें, अँग गोरे खुले हियरा तरसावै।
झूलति हेली हिंडोरे इतै, सुधि भूलति-सी मिस बात बनावै ॥

मोसों "कुमार" मिलै भरि अंक, निसंक भई उत नैन मिलावै।
बेर हि बेर कहै न हहा,हरि हेरि हि हेरि कहा हसि आवै॥२०६॥

(२७) चकित

यथा—

सवैया

केलि-समै रस में रद-रेख गई लगि प्यारी-कपोल में ऊढि कै।
पीठि दै रूठि रही परजंक ही, अंक-भरी न खरी रस लूटि कै॥
जो लौं"कुमार"मनाइये तो लगि गाजिउठ्यौ घनघोर है टूटिकै।
सो सुधि छूटिसकै नहिये,जु अचानक चौंकलगी,छन छूटिकै॥२०७॥

(२८) केलि-लक्षण

दोहा

प्रीतम-रसबस प्रेम सों रचति विलास अनेक॥
'केलि' भाव तंह तरुनि को बरनत सुमति विवेक॥ २०८॥

यथा—

कवित्त

ढारति, भरति, छिन गागरि कों नागरि! तू
रीझति खिझति ईठि दीठि झर लाई है।
विहसत कंज-सो "कुमार" तेरो मुख सोहै
भूली बुधि सुधि फूली निधि मनो पाई है॥
कासों सतराति, इतराति ठाढ़ी मो सों कहा?
नैननि चढ़ावे पिय नैननि चढ़ाई है।

नाहक मिलति कहा मेरे गरै डारि बाँह,
नाँह गरै डारि बाँह, बाँह ज्यों गहाई है ॥२०९॥

इति रस-चेष्टाभाव-निरूपण

दोहा

दूति, सखी, बाला तथा परिव्राजिका और।
धाय प्रभृति तिय पुरुष के गनि सहाय रस-ठौर ॥ २१० ॥

इनकी क्रिया मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ, परिहास, परस्पर-प्रशंसा, विनोद, मानापनोद, उपदेश; रहस्य-प्रश्न, प्रसादन प्रभृति जानिये। दिङ्मात्र यथा—

सवैया

तेरे विलास बिलोकि "कुमार" रतीक गनी रति रूपमनी है।
जौलौं मिली ब्रजनायक सों नहि,तौलों न तू गुन-रासि गनी है॥
बाउरी! साँउरो रूप रँगे बिन, नैननि बादि बड़ाई घनी है।
तैंही बिरंचि रची रुचि सों,रुचि सों रमनीय बनी रमनी है ॥२११॥

—:※:—

उद्दीपन भाव-लक्षण—

दोहा

उद्दीपन सहृदय-हिये जिहिं थाई रस पूरि।
ते उद्दीपन भाव गनि, सकल रसनि में भूरि ॥ २१२ ॥
ऋतु, सुगन्ध, भूषन, कुसुम, कवित, नाच, संगीत।
उपवन, उज्ज्वल बात सब, रस सिंगार के मीत ॥ २१३ ॥

जल, दोला, पांचालिका, कंदुक, नेत्र-निमील।
द्यूत, केलि, हल्लीस कों गनि उद्दीप सलील ॥ २१४ ॥

१ शृंगारोद्दीपन।

यथा—

कवित्त

बरसत मेह, सरसत नेह प्यारी पिय,
भरे सर सरित हरित वन पेखिकै।
अँग बनै बसन सुगन्ध घने रसरंग,
मोहत अनंग-बस संग ही बिसेखिकै ॥
चमकत चपला "कुमार" उर लागे दोऊ,
प्रीति रीति पागे, अनुरागे प्रेम लेखिकै।
होत सुख मगन अँगन ठाड़े महल के,
सघन घनाघन गगन छाये देखिकै ॥ २१५ ॥

दोहा

अँग-सोभा भुज दृग चलन, तिय पिय के अनुभाव।
तेई होत परस्परहिं, लखि उद्दीपन भाव ॥२१६॥

(१ नायिका के अनुभाव नायक को उद्दीपन) यथा—

सवैया

देखी सखीनि में जा दिन तें, जिय ता दिन तें दिन रैनि रटै ज्यों।
नेह बढ़ै, वह रूप चढ़ै दृग जीउ "कुमार" भौ चक्र चढ़ै ज्यों ॥
कुंज-गली मुसक्याइ चली, कहुँ फेरि चितै चितु वाही पढ़ै त्यों।
मैनमई मन मेरे गड़ी, गढ़ि ठाढ़े उरोज की काढ़े कढ़ै क्यों? ॥२१७॥

(२ नायक के अनुभाव नायिका को उद्दीपन)

यथा—

सवैया

आइ गयौ वनि वेष निमेष में कुंज-गली इहि कुंज-विलासी ।
छ्वै कढ़्यौ गातनि वातनि आनि "कुमार" सबै कुल-कानिविनासी ।
कैसे बनै मिलिबौ, मिलिये रहै नैन सलोने सरूप-विकासी ॥
लोचन-कोर लगाइगौ गाँसी-सी हाँसी में सो व्रजगाँउकोवासी॥२१८

इत्यादि जानिये ।

२ हास्योद्दीपन—

दोहा

विकृत वेष, भूषन, वचन, विकृत नाम, गति, अंग ।
विकृत हसी, चेष्टा प्रभृति, होत हास रस-रंग ॥ २१९ ॥

३ करुणोद्दीपन ।

दोहा

इष्ट-नाश, दाहादि लखि, वध, बँधनादि सु देखि ।
व्यसन, दुःख, दारिद प्रभृति, दीपन करुन विसेषि ॥२२०॥

४ रौद्रोद्दीपन ।

दोहा

मद, आयुध, भुज-बल-कथन, लहि रिपु-दल-संहार ।
क्रुद्ध जुद्ध-उद्धत वचन, दीपन रौद्र मँझार ॥ २२१ ॥

५ वत्सलोद्दीपन ।

दोहा

सुत-विद्या, शौर्य्यादि गुन, विविध पराक्रम लेखि ।
उद्दीपन वत्सल रसहिं, भाव अनेक विसेषि ॥ २२२ ॥

६ भयोद्दीपन ।

दोहा

विकृत सत्व,रव सून्य गृह,रन,वन,निरखि मसान ।
नृप, मुनि, गुरु अपराधहू दिपन भयानक न्यान ॥ २२३ ॥

७ अद्भुतोद्दीपन ।

दोहा

लोक अपूरब कर्म, वच, रूप, कला-गुन लेखि ।
इंद्रजाल, माया प्रभृति, दीपन अद्भुत लेखि ॥ २२४ ॥

इति उद्दीपन

—:❀:—

भाव के अन्य भेद

दोहा

सौतिन सों हितु परसपर, बंधु-विरह नृप भीति ।
गुरु, दैवत, हरि-भक्ति में भनत भाव रसरीति ॥ २२५ ॥
ज्येष्ठ प्रभृति के हास्य में, अचेतननि में शोक ।
पुत्रादिक पर क्रोध में, कहत भाव कवि लोक ॥ २२६ ॥
कार्य प्रभृति उतसाह में, जोध प्रभृति भय जानि ।
हिंसक प्रभृति हि घिनि लखै,ज्ञानी विस्मय मानि ॥ २२७ ॥
बंधु गेह-कलहादि तें भयौ जानि निर्वेद ।
मृग-छौनादिक-नेह में मनोभाव को भेद ॥ २२८ ॥

१ भाव-सन्धि । यथा—

सवैया

चंद-मुखी कुच-कुंभनिसों, परिरंभ-अरंभनि के सुखसारनि ।
लंक में राखस-जो धनि को चित चाहत है हितकेलि विहारनि ॥

होत इतै हिय उद्धत आतुर, सुद्ध है जुद्ध उछाह प्रचारनि।
जोर सुनै चहुँओर बढ़ी,रन दुंदुभि की घनघोर धुकारनि॥२२६

इहाँ धैर्य आवेग भाव की संधि है।

२ भावोदय। यथा—

सवैया

केलि के मंदिर दोउ मिले, मिलि कीन्हे "कुमार" विलास नवीनै।
प्यारी कहे रस के बस के, रत के मत के उपदेस प्रवीनै॥
प्यारे दए सुधि गौने की रैनि के, त्रास के भाव सबै हठ भीनै।
नैन-सरोज लजाइ, नवाइ, उरोज दुराइ दुओ भुज लीनै॥२३०॥

इहाँ धैर्य आवेग भाव को उदय है।

३ भाव-शवलता। यथा—

सवैया

चंद को बंस कहा यह सुद्ध है ? बात विरुद्ध कहा यह सोहै।
क्यों मुख देखौं पियूख मयूख-सो दूषनि हानिको ग्यानि जु मोहै॥
मोसों कहा कहिहैं बुध सन्त ये, कैसे लहौं हिय धारिये जोहै।
रे जिय ! धीरज क्यों न धरै,तरुनी-अधरै जु पिये धनिकोहै ?२३१॥

इहाँ शुक्रसुना पर आसक्त ययाति की उक्ति में वितर्क, उत्सुकता, मति, शंका, दैन्य, धैर्य, भाव की शवलता है।

समाप्तं उत्तमकाव्यप्रकरणम्।
इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते
रसिकरसाले आलम्बनोद्दीपनविभावव्यंग्य-
कथनं नाम पञ्चमोल्लासः॥५।

षष्ठ उल्लास

अथ मध्यम काव्य-प्रकरण

दोहा

व्यंग्य प्रगट१ अतिगुप्त कै२, व्यंग्य और को अंग३।
वाच्यसिद्ध को अंग४ पुनि, काकुकथित५ गनि संग॥ १॥
गनि सन्दिग्ध प्रधान६ को त्यों ही तुल्य प्रधान७।
व्यंग असुंदर८, आठ इमि मध्य काव्य कहि न्यान॥ २॥

(१) अतिप्रकट व्यंग्य

"राखति भूषन में रुचिरंग तोलाल मिलाउरी सोने-से अंग में॥"

इहाँ "मिलाइवौ" शब्द-शक्ति भव व्यंग्य प्रगट है। यथाच—

दोहा

लहि वन-वास, निवास दुरि, बसि विराट नृप-पास।
सरबस दै परबस बसत, बरबस जीवन-आस॥ ३॥

यहाँ "जीवन तें मरण भलौ" यह लक्षणामूल व्यंग्य प्रगट है।

(२) अतिगुप्त व्यंग्य

दोहा

देखत डर है विरह को, बिन देखैं चित-चाह।
देखे बिन देखे तुम्हैं नहीं चैन हिय-माँह॥ ४॥

इहाँ "मिलकै फेरि जिनि बिछुरो" यह अति गुप्त व्यंग्य है।

(३) अन्यांग व्यंग्य

सवैया

चाह विभूति की चित्त रहै, दिन रैनि हू सूल नजीक यहै है।
भारी जटानिको जूट पर्‍यौ सिर, सोमैं धर्‍यौ जियजानि हितै है॥
चिंतित भौ अरधंग हौं अंगनि देखी दिगम्बरता प्रगटै है।
सेवत तोहि भयौ सिवहौं पै विपाद यहै, न सखा धनदैहै ॥५॥

इहाँ 'विभूति' प्रभृति श्लेप तें सदाशिव रूप-प्राप्ति व्यंग्य है। सो "सिव हौं भयौ" यह वाच्यार्थ को अंग है।

एसें अलक्षितक्रम व्यंग्य लक्षितक्रम को (अरु) लक्षितक्रम व्यंग्य अलक्षित क्रम व्यंग्य को अंग जानिये।

एसें अन्य रसभावादि को अन्य रसभावादि अंग। यथा—

दोहा

हाथ यहै मीडत कुचनि, मनि-मुदरी उजियार।
यह रसना-गुन कंचुकी नीबी-खोलनहार॥ ६॥

इहाँ भूरिश्रवा को कट्यो हाथ देखि जुवतीनि के विलाप में करुणरस को शृंगार अंग है।

यथाच—

सवैया

वंदतु लोक "कुमार" सबै मुनि कुंभज के तप पुंज-उज्यारे।
दीनो घटाइ है विंध्य बढ्यो रवि रुंधत देव सबै डर डारे॥
पीवे को पानिय पानि-पुटी धर्‍यौ सिंधु के नीर है मध्यविहारे।
अंजुलि एक में एकहि बार दुओ हरि के अवतार निहारे॥ ७॥

इहाँ मुनि-प्रीतिभाव को अद्भुतरस अंग है।

यथाच—

सवैया

कानिनि वृंद बिलंद गिरिंदनि सिंधुनि हू धरि धीर सुभावै।
है धरनी बरनी धन एक तू, यों रसना भुव के गुन गावै॥
जौ लौं लखी नरनाह को चाह धरै भुवभार न आलस पावै।
है रहीगूँगीसीदेवीगिराजकि-सीथकि-सी नकछूकहिआवै॥ ८॥

इहाँ भुव की प्रीतिभाव प्रभु-प्रीतिभाव को अंग है। एसें और भेद अनेक जानिए।

(४) वाच्यसिद्ध—अंग व्यंग्य। यथा—

सवैया

ज्यों ज्यों चढ़ै त्यों बढ़ै मन में भ्रम जोर मढ़ै जिय मोह प्रचारै।
बूड़त जीउ घरी लों घरी घरी हेली हरी बिन कौन निवारै?
मंत्र न तंत्र कछू चलै यापर, अन्तर दाह निरन्तर धारै।
मेघ-भुजंगनिको विषमें विषदेखौ वियोगिनि बालनि मारै॥ ९॥

इहाँ विष कहे जल, तहाँ जु हालाहल व्यंग्य है। सो "मेघ-भुजंग" वाच्यसिद्ध को अंग है।

(५) काकुकथित व्यंग्य—यथा—

दोहा

हनत दुसासन वीर नहिं संघारत अरि-संघ।
चूरत हौ नहि गुरज सों दुर्जोधन को जंघ॥ १०॥

(६) सन्दिग्धप्रधान व्यंग्य

दोहा

लसत हसत-से दीह दृग, विहसत विमल कपोल।
चंद-मुखी मुखचंद लखि नँदनंदन चित लोल ॥ ११ ॥

इहाँ 'मुख देखत है' यह अर्थ प्रधान है कि 'कपोल चुंवन चाहत' यह व्यंग प्रधान है, यह संदेह है।

(७) तुल्य प्रधान व्यंग्य

दोहा

भले रूप गुन जाल को ख्याल पसारत लाल ?
खंजननैननि के बँधत दृग-खंजन इहि हाल ॥ १२ ॥

यहाँ पर हृदय-ग्राहक रूप गुण उदारता, वाच्य है। अरु मुख देखिवे ही में दृग-बंधन यह व्यंग्य है। यह दोनों तुल्य प्रधान हैं।

(८) असुंदर व्यंग्य

सवैया

भोरहीं प्रीतम को लखि दूरतें आदर भाव सुभाव जतायौ।
आसन दै निज पास "कुमार" हवा धरि पान सुगंध सुहायौ ॥
'प्यारो भयौ शाम आवत' यों कहि, लै कर वीजन आप डुलायौ।
सारसलोचनी आरसी दै कर, पानी सयानी सखीसों मगायौ ॥१३॥

इहाँ "रैन के चिह्न मेटौ" इह वाच्यार्थ तें व्यंग्य सुंदर है।

जद्यपि एसो विषय नाहीं जहाँ उत्तम अथवा मध्यम काव्य न

होय, पै ताही प्रधानता तें तौन उदाहरण है। अंगागी रस पै अंग प्रधान तें मध्यम है। अंगी के प्रधान में उत्तम है। इत्यादि जानिये।

इति श्रीयुत हरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते
रसिकरसाले मध्यमकाव्य-विचारो
नाम षष्ठोल्लासः ॥ ६ ॥

सप्तम उल्लास

अथ चित्र-काव्य-प्रकरण

शब्द-चित्र अनुप्रास

दोहा

तुल्य आखरनि को जहाँ रस अनुगुन है न्यास।
अनुप्रास कहि द्वै तरह छेक, वृत्ति, परकास॥ १॥

(१) छेकानुप्रास

दोहा

व्यंजन तुल्य अनेक जहँ एकै बार निहार।
छेकन को प्रिय 'छेक' यह अनुप्रास निरधार॥ २॥

यथा—

चैत चंद, सौरभ पवन, पिक कूकति कल वैनि।
मनौ भयौ मनभावती मनभावन-सँग रैनि॥ ३॥

इहाँ चैत, चंद, पवन पिक, कूकति कल, इत्यादि छेक हैं।

(२) वृत्त्यनुप्रास

दोहा

व्यंजन एक अनेक वा सम जहँ बार अनेक।
'वृत्ति' नाम को प्रास तहँ जानौं सुमति विवेक॥ ४॥

जैसे चंद, वृंद, मंद, गीत; मीत, भली, अली, सुगन्ध, निबन्ध यह वृत्तिप्रास है।

लक्षण

दोहा

मधुर आखरनि वृत्ति यह भनि 'वैदर्भी' नाम।
उद्भट 'गौडी', उभय सम 'पांचाली' अभिराम॥ ५॥

इनही सों उपनागरिका, कोमला, परुषा कहत हैं।

(१ वैदर्भी) यथा—

दोहा

ताप-कंद इक कंदरप, लहि मुख-चंद सहाय।
मलय बंध मिल गंध वह अंध कियौ जग हाय॥ ६॥

(२ गौडी) यथा—

खण्ड खण्ड भुव मण्डलहिं मण्डतु दण्डि अदण्ड।
चण्ड चण्डकर-सो तपै तुव परताप उडण्ड॥ ७॥

(३ पांचाली) यथा—

सवैया

दूरि तें भौंह कमान-सी तानिकै, बान-सी बंक चितौनि है दीन्ही।
ऐसी न चाहिये तोहि विलासिनि! बीस बिसैन दया दिल चीन्ही॥
कीन्हौ री! कान्ह निहारिभलेसुधि-हीन,अधीन नतू सुधि लीन्ही।
सूनी गलीचलि ओट अलीके, भलीदुरिचोटकटाछनि कीन्ही॥ ८॥

लाटानुप्रास—

दोहा

तातपर्य के भेद ही, अर्थ एक ही ल्याइ।
फेरि शब्द कहिये वहै, प्रास 'लाट' कहि जाइ ॥ ९ ॥

यथा—

सवैया

बोलति बैन "कुमार" सुधा-से सुधानिधि-सी मुख-कांति पसारी।
जोर जग्यौ तन में नव जोवन, जोवन में प्रिय नेह निसारी ॥
जीति लई अँग जेब सों केसरि, केसरि रंग बनी अँग सारी।
प्यारी भई हरि-नैन-वसीकर नैन-बसो बिसरै न बिसारी ॥१०॥

यथाच—

दोहा

जाके ढिग तिय, तासु है अनल ताप हिम-धाम।
जा ढिग तिय नहि, तासु है अनल-ताप हिम-धाम ॥११॥

यमक—

दोहा

अर्थ-सहित आखर बहुत, जहँ सुनियतु है फेरि।
भिन्न अर्थ के भेद ही 'यमक' नाम तहँ हेरि ॥१२॥

यथा—

सवैया

पूरन के सरिता सरसीउ, अपार बिसारद वारिद ये हैं।
कीन्हे हरे बन हैं नव ग्रीषम के रविसार दवारि दये हैं ॥
देखि इन्हें हिम-सैल प्रकास चे, तुच्छ बिसारद वारिद ये हैं।
सेत भये निज कीरतिसों अब सुच्छ बिसारद वारिद ये हैं ॥१३॥

यथाच—

चाह। सिंगार सवाँरन की, नव वैस बनी रति वारन की है।
सोभा "कुमार" सिवारन की सिर सोहति, जोहति वारन की है॥
हंसनि के परिवारन की पग जीति लई गति वारन की है।
याहि लखै सर वारन की इनकौ रति के पति वारन की है॥१४॥

यमक-भेद—

दोहा

चरन अंत, मधि, आदिहू सकल अर्ध आवृत्ति।
श्लोक अर्ध में सकल में बहुत यमक की वृत्ति॥१५॥

(१) चरण के आद्यन्त में शृंखला-यमक। यथा—

सवैया

घन के निरखे तन ताप तई, दिन वे ही भले हैं निदाघन के।
घनकेलि"कुमार"हिये सुधिके,सुधि भूलति आगम सावन के॥
वन के भर सोहैं भरी सरिता, अब क्यों मनभावन आवन के।
वन वे किनि कूकत हूक उठी हिय लागत घात,मनौं घन के॥१६॥

(२) मध्य में शृंखला-यमक। यथा—

दोहा

लेत जितौ हरि हरि बरस, दिनकर कर परकासु।
घरी एक जल जलद वर, बरसत सतयुग तासु॥१७॥

(३) सवै पद मिलै पंक्ति नाम यमक। यथा—

दोहा

धीरज के वल धारि नहिं, धीरज के वल धारि।
धीरज के वल धारि कहँ, धीरज के वल धारि ॥१८॥

(४) युग्मनाम यमक। यथा—

दोहा

लाल न सोहैं जोहि दृग, लाल नसो है जोहि।
काम दहै यह तोहि तें काम दहै यह तोहि ॥ १६ ॥

(५) पहिलो चौथो, दूजो तीजो पद मिलै, परिवृत्ति यमक।

यथा—

दोहा

जात कहा उत सैन दै, कै मनु हारि सुनैन।
कै मनु हारि सुनैन छवि जात कहा उत सैन ॥२०॥

(६) अर्द्धावृत्ति समुद्गक

दोहा

अवनो के वर सोहनै, भुव-हित संग रसाल।
अवनी के वर सोहनै, भुव हित संग रसाल ॥ २१ ॥

श्लोकावृत्ति, महायमक जानिये। चरन मध्य द्वै, तीन, चार, भाग करि यमक रचै समुच्चय नाम अनेक भेद हैं। दिङ्मात्र यथा—

सवैया

देखि "कुमार" अनूप अनूपम, रूप कहा हिय धीरज धारे।
हो तुम ही इक ताप-निवारक, वारक देखे ही नंददुलारे ॥

एहो ! विदेस कों जान कहौ, न कहौ रहै क्यौं करि प्रान हमारे।
मानत हौ तुम मोहित जो, मति मोहि तजो मति मोहि पियारे ॥२२॥

एसै और भेद नलोदय प्रभृति में देखिये।

पुनरुक्तवदाभास

दोहा

एकार्थक पुनरुक्त सों शब्द परत जहँ जानि।
'पुनरुक्तवदाभास' तहँ अलंकार पहिचानि ॥ २३ ॥

यथा –

सवैया

बाहु बली तुव सूरज तेज, प्रताप को पुंज जहान बखानै।
तू बर जोर सदा अरि वैरिनि, डारत है करिकै कतिलानै ॥
नैकु रिसात ही अत्र गहै जयपत्र लहै नृप भू पर न्यानै।
दीन करै परवाजनि कों, यह तो करवाल, कृपा नहि जानै ॥२४॥

इहाँ तेज प्रताप, बर जोर, अरि वैरिन, नृप भूप, करवाल कृपाल ये पुनरुक्तवत् हैं।

अथ बंधचित्र

(१) एकाक्षर

दोहा

सैसि सैसि साँसै ससै, सौ सौ सो ससु सोस।
सांसि सांसि संसौ सुसौ, संसु संसु ससि सोस ॥ २५ ॥

(२) द्वयक्षर

दोहा

सासु ससुर सारे सरस, सारी सो ससुरारि।
रसरूरौ रिस सार सिसु, रासि रोस सो रारि ॥ २६ ॥

की की कै कै के किका, कूकै केका काक।
कल का को कल कलकि कै, कीलै कोकिल काक ॥ २७ ॥

(३) त्र्यक्षर

रचत रोच चरचत चितै चितै चितै चितराति।
चारु चातुरी रुचि रचै, चोर-रीति रति राति ॥ २८ ॥

(४) चतुरक्षर

दोहा

कोपि कोपि लोपे कलपि, कलप लोक को पाल।
गोकुल-गोपी-गोपकुल-पाल, कृपाल, गुपाल ॥२९॥
है है हाहा हाह हो रारै रौरै रारि।
जीजै जोजै जैंज जौ, धूधं धोधी धारि ॥ ३० ॥

(५) एक वर्ग

दोहा

थिति, निधान निधि, थान निस, दीननि दीनै दान।
दुनी धनी नँदनंदनै, नीधन धनै निदान ॥ ३१ ॥

(६) निरोष्ठक

दोहा

सीतलकर हर-सिररतन, राजत कला-निधान।
नखत-राज निसि चरत नित, धरत कलंक निदान ॥ ३२ ॥

(७) गूढ चतुर्थपद

दोहा

हास कलोलनि फागु वस, अबला निवलनि पाइ।
रचत लाल ! मनभाइयै, हाल गुलाल चलाइ ॥३३॥

(८) प्रश्नोत्तर

दोहा

गनियतु पंचन में यहै पंच प्रपंच विवाद।
मिलै पंच में तीसरो, बात जानिये बाद ॥ ३४ ॥

(६) भिन्न प्रश्न

दोहा

बरन तीन में बसति यह, बरन तीन में और।
भूषन इक अरु राग इक कहौ सुकवि ! दिलदौरि ॥ ३५ ॥

एसे अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, अनुलोम, प्रतिलोम आदि भेद 'विदग्धमुखमण्डनादि' तें जानिये।

दोहा

खडग प्रभृति के आकृतिहिं, वर्ण रचत जहँ देखि।
तिहि बंधहि के नाम सों चित्र अलंकृत लेखि ॥ ३६ ॥

विस्तार-भय तें इहाँ न लिखे।

इति शब्दचित्रप्रकरण

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते
रसिकरसालग्रन्थे चित्रकाव्यनिरूपणम्
नाम सप्तमोल्लासः ॥ ७ ॥

अष्टम उल्लास

अथ अर्थचित्र-प्रकरण (अलंकार)

उपमालंकार—

दोहा

वरन्यौ है उपमेय जँह, तँह उपमान वखान।
दुहुँन धर्म इक ठानि कहि, समता वाचक ग्यान॥ १॥
इनि चार-यौं मिलि तुल्यता लसति चारु जिहि ठौर।
पूरन 'उपमा' कहत हैं, बुध जन बुधि की दौर॥ २॥
सकल चित्र-रूपहिं धरति, यौं उपमा यह एक।
हरति चतुर-चित ज्यौं नटी, धरि-धरि स्वाँग अनेक॥ ३॥

यथा—

सवैया

स्वान समान छुटे धुरवा, पुरवाई धुँधीरनि धूरि-सी छावै।
दुंदुभि-सी गजै घोर घटा, गजपाँति-सी बिज्जु कृपान-सी धावै॥
बूँदै बड़ी बरछी-सी लगैं, बिन नंद-"कुमार" यौं कौन बचावै?
छातीडराति,हिराति है धीरता,पावस-राति अराति-सी आवै॥४॥

उपमा-भेद

दोहा

इनि चार-यौं में एक, दो, तीन-हीन जँह देखि।
आठ भाँति 'लुप्तोपमा' अर्थ-चित्र में लेखि॥ ५॥

१ वाचकलुप्ता, २ धर्मलुप्ता, ३ उपमानलुप्ता, ४ धर्म-वाचकलुप्ता, ५ वाचकोपमेयलुप्ता, ६ वाचकोपमानलुप्ता, ७ धर्मोपमानलुप्ता, ८ धर्मोपमानवाचकलुप्ता।

क्रमते यथा—

कवित्त

छन छबि गोरी, भोरी१, बिधु-सो वदन२, तन-
सोहति मदन-तिय कांति ३ अभिराम है।
दृगनि ४ कपूर भई, निरखति मोहि गई,
हरिनी के नैननि ५ को सुषमा सुठाम है॥
रूप निरमल, दरपन छबिभाल६, मुख-
कंज-सो हसनि हरि निरखि सकाम ७ है।
कंठीरव-कटि,८ कल कंठी - कंठसुर, नील-
कंठ-केसपास नीलकंठ कैसी वाम है॥ ६॥

इहाँ छन छबि-सी गोरी, विधु-सी वदन, सुंदर तन, रति-तन-कैसी कांति, कपूर-सी-सीरी लगी, हरिनी के नैननि-कैसी नैननि में शोभा विशाल है, दरपन-छबि-सी भाल-छबि है, कंज विकसनि-सी मुख विहसनि सोहै, कंठीरव-कटि-सी कटि सूक्ष्म है, यह विवक्षित है। तहाँ तीन लोप जानिए।

(१) मालोपमा

दोहा

खंजन-से, वर कंज-से मनरंजन सुख-दैन।
सरफर-से, वर सफर-से, मंजु मुखी के नैन॥ ७॥

इत्यादि मालोपमा है।

(२) अभूतोपमा

दोहा

जो मयंक निज अंक ते डारे अंक निकारि।
तौ निहारि, अनुहारि ये, तुव मुख सों वरनारि ! ॥ ८ ॥

इत्यादि अभूतोपमा-भेद अनेक हैं।

अनन्वयालंकार—

दोहा

एकहि को उपमेयता उपमानता प्रमानि।
चित्र 'अनन्वय' कहत हैं, कवित माँह पहिचानि ॥ ९ ॥

यथा

सवैया

सुंदरि ! चंद-मुखी इक तोहि में, सुंदरता-सम सुंदरताई।
सील-सो सील, सयान सयान-सो, तोमें निकाई-सी न्यान निकाई ॥
प्रीतम के अनुराग-सो भाग-सो, तेरो सुहाग सुहाग-सो भाई।
रूप-सो रूप, अनूप बन्यौ बनी तो-सी तुही विधि एक बनाई ॥१०॥

इहाँ कहीं साधारण धर्म कहूं नाहीं, ताते द्वै भेद हैं।

उपमानोपमालङ्कार

दोहा

है उपमेय परस्परहिं, सोई है उपमान।
भनिये 'उपमानोपमा', अर्थ-चित्र तँह न्यान ॥ ११ ॥

१ वाचकलुप्ता, २ धर्मलुप्ता, ३ उपमानलुप्ता, ४ धर्म-वाचकलुप्ता, ५ वाचकोपमेयलुप्ता, ६ वाचकोपमानलुप्ता, ७ धर्मोपमानलुप्ता, ८ धर्मोपमानवाचकलुप्ता।

क्रमते यथा—

कवित्त

छन छबि गोरी, भोरी१, बिधु-सो वदन२, तन-
सोहति मदन-तिय कांति ३ अभिराम है।
दृगनि ४ कपूर भई, निरखति मोहि गई,
हरिनी के नैननि ५ को सुषमा सुठाम है॥
रूप निरमल, दरपन छबिभाल६, मुख-
कंज-सो हसनि हरि निरखि सकाम ७ है।
कंठीरव-कटि,८ कल कंठी - कंठसुर, नील-
कंठ-केसपास नीलकंठ कैसी वाम है ॥ ६ ॥

इहाँ छन छबि-सी गोरी, बिधु-सी वदन, सुंदर तन, रति-तन-कैसी कांति, कपूर-सी-सीरी लगी, हरिनी के नैननि-कैसी नैननि में शोभा विशाल है, दरपन-छबि-सी भाल-छबि है, कंज विकसनि-सी मुख विहसनि सोहै, कंठीरव-कटि-सी कटि सूक्ष्म है, यह विवक्षित है। तहाँ तौन लोप जानिए।

(१) मालोपमा

दोहा

खंजन-से, वर कंज-से मनरंजन सुख-दैन।
सरफर-से, वर सफर-से, मंजु मुखी के नैन॥ ७॥

इत्यादि मालोपमा है।

(२) अभूतोपमा

दोहा

जो मयंक निज अंक ते डारे अंक निकारि।
तौ निहारि, अनुहारि ये, तुव मुख सों वरनारि ! ॥ ८ ॥

इत्यादि अभूतोपमा-भेद अनेक हैं।

अनन्वयालंकार—

दोहा

एकहि को उपमेयता उपमानता प्रमानि।
चित्र 'अनन्वय' कहत हैं, कवित माँह पहिचानि ॥ ९ ॥

यथा

सवैया

सुंदरि ! चंद-मुखी इक तोहि में, सुंदरता-सम सुंदरताई।
सील-सो सील, सयान सयान-सो, तोमें निकाई-सी न्यान निकाई ॥
प्रीतम के अनुराग-सो भाग-सो, तेरो सुहाग सुहाग-सो भाई।
रूप-सो रूप, अनूप वन्यो बनी तो-सी तुही विधि एक वनाई ॥१०॥

इहाँ कहीं साधारण धर्म कहूं नाहीं, ताते द्वै भेद हैं।

उपमानोपमालङ्कार

दोहा

है उपमेय परस्परहिं, सोई है उपमान।
भनिये 'उपमानोपमा', अर्थ-चित्र तँह न्यान ॥ ११ ॥

यथा

तारे तुल तारे कुमुद, तारे कुमुद सँकास।
सरवर लसत अकास-सो, सरवर-सम आकास ॥ १२ ॥

प्रतीपालंकार—

दोहा

जहँ प्रसिद्ध उपमान जो, सो उपमेय रचाइ ।
तहँ 'प्रतीप' भूषन भनत, पंच प्रतीप सुभाइ ॥ १३ ॥

(१) प्रतीप । यथा

सवैया

चंदमुखी ! मुख-सो तुव चंद, सुपावस-वारिद-वृंद दुरायौ ।
नैन-से नीरज नीर दुरे, तुव गौन-सो हंसनि-गौन रचायौ ॥
देखि "कुमार" तिहारेई अंग-सी बातनि जो विसराम-सो पायौ।
तोसों वियोग दै वैरी विधाता अहो? इनहीं सो वियोग बनायौ ॥१४॥

(२) प्रतीप

दोहा

जहाँ अन्य उपमेय लहि, बर्न्य निरादर देखि ।
दूजौ भेद प्रतीप को जानौ तहाँ विसेषि ॥ १५ ॥

यथा—

रंचक ऊँचे उरज लहि, नहि गहि गरब गँमारि !
अतिरंगी नव नारँगी, बाग-बहार निहारि ॥ १६ ॥

(३) प्रतीप

दोहा

जहाँ वर्न्य उपमेय लहि, अन्य निरादर ल्याइ।
तीजौ तहाँ प्रतीप को तीजौ भेद बताइ ॥ १७ ॥

पूर्व प्रतीप तें तृतीय विपरीत है—दूजे में निरादर मात्र तैं भेद है—

यथा—

दोहा

कत दीपति! दामिनि दमक तकि घन-संग उमंग।
लखी स्याम निसि राधिका, तो-सम स्यामल संग ॥ १८ ॥

(४) प्रतीप

दोहा

जहाँ वर्न्य तें अन्य मँह, उपमा वचन-निषेध।
चौथो भेद प्रतीप को बरनत तहाँ सुमेध ॥ १९ ॥

यथा—

कवित्त

राखिये दुराय कौने-कौने, गौन आये देखि,
सोने-से सलौने अंग मौने तिय गहतीं।
गुन-गनआगरी ये नागरी 'कुमार' लखि,
नख सिख-रूप अनमिष नैन रहतीं ॥
जुरि जुरि आवतीं है सोभा के सराहिबे को,
हेली! ये गवेली न नवेली भेद लहतीं।
बाढ़त हँसी है, मेरे जिय में बसी है मेरे,
घर वसी ससी-सो वदन तेरो कहतीं ॥ २० ॥

(५) प्रतीप

दोहा

जहाँ वृथादिक शब्द कहि, कमी कह्यौ उपमान।
मानत तहाँ प्रतीप को पाँचौं भेद निदान॥ २१॥
तेरे गोल कपोल-सम होतु न पूरि मयंक।
जानि वृथा विधिहू रच्यौ ता मधि अंजन-अंक॥ २२॥

रूपकालङ्कार—

दोहा

जहँ रंजौ उपमेय को रचि उपमान अभेद।
कै भेदहि तद्रूपता, सो रूपक द्वै भेद॥ २३॥
गनि अभेद रूपक प्रथम, दूजो है तद्रूप।
अधिक, कमी, सम भाव तें ये द्वै त्रिविध सरूप॥ २४॥

(१) अधिक भाव-अभेद रूपक

सवैया

नेह हियै सरसावै "कुमार", विलोकै सुधारस कों बरसावै।
भाग तिहारौ निहारौअली!अनुरागिनि क्यों बस रीझि रिझावै॥
सुंदर आनन चंद है कान्ह को, लोचन कैरव लाजत छावै।
याहि लखै ब्रज-नीलबधू-दृगकौल कदम्ब बिकासहि पावै॥२५॥

(२) न्यून भाव अभेद रूपक

सवैया

है सनसार रच्यौ करतार पै, काम औ रोष तहाँ रिपु ठानै।
मोहिवे को सबके मन को धन त्यों जुवती जन द्वै तहँ मान॥

देखे तपोनिधि हौ तुम ही धन लेखे नहीं इनके बस न्याने।
सेवक कों वर देवे कों जू नर-देह धरैं हरदेव हौं जानै॥ २६॥

(३) समभावाभेद रूपक

सवैया

कज्जल स्याम वनै अभिराम घनै छबिधाम "कुमार" निहारे।
चारु बनी वरुनी दुति साँकर कोर ललामी सिंदूर सँवारे॥
प्यारी! ये सुंदर सारी अध्याँरी सों सोहत, मोहत मोहन प्यारे।
मैन-चमू चतुरंग-हरौल उतंग मतंगज नैन तिहारे॥ २७॥

(४) अधिकभाव तद्रूप रूपक

सवैया

गाढ़ परी-सी अषाढ़ के आगम देखि उकाढ़ घनाघन जागै।
औधि बिसूरि वियोग बिथा सों तच्यौ तिय को हिय है अनुरागै॥
ज्यौं बरसै जल त्यौं-त्यौं "कुमार" परै कल क्यों, पल क्यों पल लागै?
सो जड़-सी बड़वागि लगी तनताप बड़ी बड़वागिनि आगै॥२८॥

इहाँ तन-ताप बड़वाग्नि में भेद कहि तद्रूपता कही।

(५) न्यूनभाव तद्रूप रूपक

सवैया

एक सरूप सनातन हौ, गुरु ग्यान सनातन न्यान बखानै।
तीसरे नैन बिना हरदेव हौ, सेवक-मोष-विधायक मानै॥
द्वैभुज केसव के अवतार "कुमार" कहै गुरु हौ पहिचानै।
एक ही आनन चारहु वेद के गायक हौं कमलासन जानै॥२९॥

कमी भाव से शोभा है।

(६) समभाव तद्रूप रूपक

सवैया

कांति हरै अरविन्दनि की मुकता नखतावलि वृन्द बिहार्‌यौ।
नन्दकिसोर चकोर भयो मुसक्यानि सुधा हिय-ताप निहार्‌यौ॥
ऊँचे अटा पर आनि "कुमार" सुनील निचोल घटा तें उघार्‌यौ।
चंद अमंद धरै दुति है, इत सुंदर तो मुखचंद निहार्‌यौ॥३०॥

इहाँ चौथी तुक में चंद्र तें भेद कहि, मुख में चन्द्र-तद्रूपता कही। इहाँ निरवयव रूपक है।

(७) सावयव रूपक

कवित्त

मृदु मुसक्यानि में डुलत मोती बेसर को,
नचत रचत सो विधान छवि भारी कौ।
अलक झलक प्रतिबिम्बित "कुमार" दीप,
दरपन विमल कपोल दुति न्यारी कौ॥
अजब जवनिका है घूँघट विराजि रह्यौ,
काँकरेजी कंचन किनारीवारी सारी कौ।
झाँखी चहि पेखति तमासौ प्यारी पेखन को,
प्रीतम को पेखनौ भयो है मुख प्यारी कौ॥ ३१॥

परिणामालङ्कार

दोहा

जहँ उपमेय-सरूप ही परिणति ह्वै उपमान।
सकै साधि निज काज कों, तहँ 'परिणाम' विधान॥ ३२॥

यथा—

दोहा

फूल-माल करकंज गुहि, मंजु दई तुम लाल!
तुम तन दीन्ही ये लखी, तिय-दृग पंकज-माल ॥ ३३ ॥

इहाँ 'कर' उपमेय रूप है, उपमान कंज। गुहिबौ देबौ कार्य साधतु है। केवल नाहीं। ऐसे पंकज-दृग-रूप ह्वै साधतु है।

यथाच—

दोहा

केवटनाथहिं निज-कृपा दै उतराई दान।
गये पार सुरसरि उतरि, रघुपति कृपानिधान ॥३४॥

इहाँ उतराई उपमान कृपा उपमेय रूप भये, केवटनाथ· काजै कीन्हौ है।

उल्लेखालंकार

दोहा

एकै वस्तु अनेक कों भाँति अनेक दिखाय।
अर्थ-चित्र 'उल्लेख' कहि बरनै कवि-समुदाय ॥३५॥

(१) प्रथम उल्लेख, यथा—

कवित्त

ज्ञानिनि परम धाम, सेवकनि कामतरु,
कामिनिनि जानैं कामदेव घन जेवही।
नागर नरनि जानैं, तिहूँ लोक रूप भूप,
देवतनि जानैं देव-देव भजि सेव ही॥

कहत "कुमार" गजराज जानैं मृगराज,
मध्यनि प्रमानैं गाज रयाज अहमेव ही।
आवत खुसाल रंग-भूमै नंदलाल लखि,
कंस जानैं काल, बाल जानैं वसुदेव ही ॥३६॥

(२) द्वितीय उल्लेख

दोहा

एकै बात जु एक कों होय अनक विधान।
भेद और उल्लेख को मानत यहै निदान ॥ ३७ ॥

यथा—

कवित्त

सूधे ही सुभायनि सुधा है बचननि जानी,
आनन में सुधानिधि मानी छवि छाज में।
सीरी ये सकल सुंदरीनि में "कुमार" देखी,
देवी ये दिपति देव धरम के काज में ॥
भागमई सकल, सुहागमई सौतिनि में,
सीलमई सखिनि में सुख के इलाज में।
नेह-रस साजमई, रात रति-राजमई,
लाजमई जानी गुरु-नारिनि-समाज में ॥ ३८ ॥

स्मृति भ्रान्ति-सन्देहालंकार

दोहा

लहि सुधि कों, भ्रम कों तथा धोखो कछु चित धारि।
स्मृति, भ्रान्ति, सन्देह कहि भूपन तीन विचारि ॥३६॥

स्मृत्यलंकार, यथा—

सवैया

बोलि उठे बरही बरहो बिरही बरषा-निसि कैसे बितावै ?
देखि "कुमार" तहाँ घन दामिनि केलि में कामिनि कों चित ध्यावै ॥
स्याम घटानि के ओर दुर्यो कढ़ि चंद को ओर जहाँ छवि छावै ।
कंचुकी नील की कोर खुली कुच-कोरक-कांति तहाँ सुधि आवै ॥४०॥

भ्रान्ति, यथा—

दोहा

कठिन उरोजनि करज-छत ललित दियौ नँदलाल ।
कंज-कुसुम-केसर लग्यो जानि छुड़ावति बाल ॥४१॥

(१) अन्योन्य भ्रान्ति, यथा—

दोहा

दरी दुरे तुव दुवन नृप ! तिय वंदै मुनि मानि ।
वंदत वे निज तियनि हूँ वन-देवी जिय जानि ॥४२॥

सन्देहालङ्कार, यथा—

कवित्त

रसना रतन दीप स्याम रेख किधौं यह,
मदन को लेख है सिंगार रस भाव सों ।
कहत "कुमार" किधौं जमुना की धार मिली,
मुकता प्रवाल हार संगम सुभाव सों ॥

कंचन-सिढ़ीनि मनमथ के मनोरथ को,
पंथ बँध्यौ किधौं नीलमनि के बँधाव सों।
कैधौं छबि-राजी सों विराजी तन तरुनी के,
देखि रोम-राजी लाल राजी चित-चाव सों॥ ४३॥

यथाच—

दोहा

विधु-मधि नग विद्रुम किधौं, इंद्रवधू को जाल।
हौं जानी विहसत वदन, बाल रदन ये लाल! ४४॥

इहाँ निश्चयात् संदेह है।

अपह्नुत्यलङ्कार

दोहा

कछू वस्तु के धर्म को कीजे पहिल छिपाउ।
और धर्म ठहराय तहँ 'शुद्धापह्नुति' नाँउ॥ ४५॥

यथा—

कवित्त

संकति हरिन कोऊ, मानत कलंक कोऊ,
सागर-मथन-पंक लाग्यौ मानि लयौ है।
काहू ससांक, काहू मंदर को घाव लह्यौ,
कीन्हौ तम-पान सो भराव उर छयौ है॥
सुधानिधि माँह कोऊ वसुधा की छाँह कहै,
कहत "कुमार" ठहराव येक ठयौ है।

राहु के गिलत, उगिलत गल-बीच परै,
गाढ डाढ़ लागी, लील सोई परिगयौ है ॥ ४६ ॥

इहाँ हरिणादिक को मतान्तर तें छिपाव है ।

(१) हेत्वपह्नुति

दोहा

बात सहेतुक ठानि कै, कीजे जहाँ दुराउ ।
'हेतु अपह्नुति' नाम को भूषन तहाँ बताउ ॥ ४७ ॥

यथा—

सवैया

चंपक-बेली अकास न ऊगै, न द्यौस में दीप प्रकासहिं मेलै ।
दामिनि दीपति नाँहि "कुमार" लहै घन-संग जु अंग उधेलै ॥
सूर-प्रकास में चाँदनी नाँहि हिये यह काम की ताप उबेलै ।
संग सहेली सों कंदुक केली सों सौध के अंगनि अंगना खेलै ॥४८॥

(२) पर्यस्तापह्नुति

दोहा

निज गुन जासु दुराइये, वहै अनत ठहराय ।
'पर्यस्तापह्नुति' तहां मानत हैं कवि-राय ॥ ४९ ॥

यथा—

दोहा

नहीं हलाहल, विष विषय, विष हर खात सुचेत ।
विषय-ध्यान ही ग्यानमय होत अयान अचेत ॥५०॥

(३) भ्रान्तापह्नुति

दोहा

और बात को और के भ्रम यह जिय में होइ।
तत्त्व बात कहि मेटिये, 'भ्रान्तापह्नुति' सोइ ॥ ५१ ॥

यथा—

दोहा

देह छीन, हियरा कपत, तपत रुमंचित गात।
कहा चढ़्यो जुर? नाँहि सखि! अतनु-ताप अधिकात ॥५२॥

(४) छेकापह्नुति

दोहा

जहँ दुराइये तत्त्व निज, कहिये और बताय।
'छेकापह्नुति' नाम यह छेकनि सुनै सुहाय ॥ ५३ ॥

यथा—

पगनि लगति, प्यारो लगति बोलति मधुरसुर बानि।
अली! भली प्रिय-प्रीति कहि, नहिं पग-नूपुर जानि ॥ ५४ ॥

(५) व्याजापह्नुति

दोहा

छल प्रभृतिक शब्दहिं कहै, बात और ठहराय।
'व्याजापह्नुति' नाम तहँ भनत भेद, कविराय ॥५५॥

यथा—

सवैया

गाजत अंबर वाजत बंब सजै जदु-नायक फौज महा कों।
दीरन होत दरीभृत है, मिस झाँहिनि के कहि देत रुजा कों॥

बाजिन की खुर तार छरी, परी मूरछितै छिति देखि बिथा कों।
उच्छलि के जलरासि यहै जलबीचनिके छल सींचै धरा कों ॥५६॥

उत्प्रेक्षालङ्कार

दोहा

वस्तु, हेतु, फल, रूप कहि, कछु संभावन ठानि।
'उत्प्रेक्षा' भूषन यहै तीनि भाँति पहिचानि ॥ ५७ ॥
वस्तूत्प्रेक्षा विषयजुत, नहीं विषय कहुँ होय।
विषयसिद्ध, नहिं सिद्ध त्यौं फल हेतुहि में दोय ॥ ५८ ॥

(१) उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा, यथा—

कवित्त

'राम नरपाल' को निहारि रन ख्याल खग्ग,
खुलै बिकराल दिगपाल कसकात हैं।
मुंडनि की माल दै महेस मन रंजत,
दुवन-दल गंजत, कहाँ लौं गनै जात हैं ॥
बैरी-बरवारन हजारन विदारे भारे,
गिरि गये गिरि मानौं बज्र के निघात हैं।
उछलि उछलि परैं कुंभनि तें मोतीगन,
गगन-अँगन उडुगन-से दिखात हैं ॥ ५९ ॥

इहाँ उडुगन में मुक्ता संभावित हैं। करि-कुंभ-विदारण विषय उक्त है।

(२) अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा, यथा—

सवैया

मंद बयारि चलै दल अंगुलि, नूत लता मनौं नाच ठये हैं।
बिन्दु अमन्द पिये मकरन्द के, पान-छके अलि गान छये हैं॥
नैकु प्रकास गहै चहुँ पास विकास पलासिनि फूल नये हैं।
मानौं बनी बधू अंग बनै रति-रंग घनै नख-घात दये हैं ॥६०॥

इहाँ पलाश-फूल नख-घात रेख वस्तु संभावित है। वसन्त बनी-संगति विषय उक्त नाहीं।

दोहा

जहँ अहेतु को हेतु करि अफलहिं फल करि मानि।
तहाँ हेतु फल नाम कहि, उत्प्रेक्षा पहिचानि ॥६१॥

(३) सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा, यथा—

कवित्त

सुरुचि सुवास के निवास चारु निरमल,
चौंर भौंर-भीर मोर-पच्छनि सों तारे हैं।
तम-परिवार-से, सिवार-से निहारे बार,
छूटे छवि भारे, मखतूल वारि डारे हैं॥
जसुधा-कुमार बस कीबे कों "कुमार" कहै,
प्यारी सनमानि, मन मानि सिर धारे हैं।

ताही सों रिसानी कही मानी न अयानी-सखि,
यहै विनती कों पग लागत तिहारे हैं॥ ६२॥

इहाँ "पग लगिबे में" विनती-हेतु संभावित है। रिसैबो, बार छूटिबो सिद्धविषय है।

(४) असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा, यथा—

सवैया

संग सदा मिलि कीन्हौ निवास, "कुमार" विलास हुलास घनेरो।
संग मिलै निसि वासर न्यान न आन गन्यौ सुख दुःख निबेरो॥
भाई! चले परलोक तुमै नहीं दीरन भौ हिय मेरो करेरो।
जानि घनौ अपमान मनौ, दृग मूँदि न देखत आनन मेरो॥६३॥

इहाँ 'दृग मूँदिबे' में अपमान-हेतु संभावित कीन्हौ, सो अपमान असिद्धविषय है।

(५) सिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा, यथा—

दोहा

बिरहिनि के, कोकीनि के ढारतु दृग-जल जानि।
तिहिं पूरत पूरन ससी, वारिधि वारि प्रमानि॥६४॥

इहाँ 'दृग-जल-धार ढारिबे' में वारिधि-वृद्धि-फल संभावन कीन्हौ। पूर्ण शशी सिद्धविषय है।

(६) असिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा, यथा—

सवैया

पास हुतासन ज्वाल प्रकासिकै साँझ समै अथयो अधभान कों।
ऊँचै बँध्यो गुन मानौं मयूख सों नीचै रचै तम धूम के पान कों॥
द्वैज को चंद "कुमार" भनै, तन छीन ह्वै साधै समाधि-विधान कों।
तातें सखी! नख की, मुख को, छवि पावै मनौं बढ़ि हाल निदान कों॥६५॥

इहाँ तपोविधान में नख-मुख-समता फलउत्प्रेक्षित कीन्हीं असिद्ध-विषय है।

(७) गम्योत्प्रेक्षा, यथा—

दोहा

जानि, मानि, प्रभृतिक जहाँ व्यंजक शब्द न होय।
'गम्योत्प्रेच्छा' नाम तहँ, मानत हैं कवि लोय॥६६॥

यथा—

दोहा

साँझ गई बनि और छवि, भई और छवि भोर।
जगी रैनि अनुराग-रँगि भये लाल दृग-कोर॥६७॥

अतिशयोक्ति-अलंकार

दोहा

जहाँ दुर्‌यौ उपमान मधि, कहि उपमेय बताय।
'रूपक-अतिशय-उक्ति' तहँ, मानत कवि-समुदाय॥ ६८॥

यथा—

सवैया

आज कहूँ जब तें इत ओर भले मन-भावन दीन्ही दिखाई।
कौतुक भौ तबतैं निरखौ अरविन्द सों चंद है प्रीति लगाई॥
सौध के अंगनि भाग बड़े थिर देखी तजै चपला चपलाई।
है मन-रंजन खंजन के जुग, मंजुल मोतिनि की झरि लाई॥६६॥

अतिशयोक्ति-भेद

दोहा

होय अपहनुति सहित कै आन उकति कहि ठानि।
सापन्हव, भेदक तहाँ अतिशयोक्ति द्वै मानि॥ ७०॥

(१) सापह्नवातिशयोक्ति, यथा—

सवैया

लाल प्रवाल के बीच 'कुमार', बसै मकरन्द न फूल निबेरो।
सो है प्रवाल कलानिधि ही मधि नूत लता नि में ताहि न हेरो॥
है उदयाचल में न कलानिधि, कंबु पै होत उदोत उजेरो।
मानत न्यान, अजान तें न्यान न जानत जे तिय! आनन तेरो॥७१॥

(२) भेदकातिशयोक्ति, यथा—

कवित्त

सची में न मेनका में, मैन-कामिनी में ऐसी,
मन दामिनी में देखी दुति अधिकाई है।

कहत "कुमार" सब छमा की जमा है करी,
याही में निकाई, सुंदराई, सुथराई है॥
आन मुसक्यानि, आन सुधा तें मधुर बानि,
आनन में आनि छबि, पानि पग छाई है।
आन गुन, आन रूप, आन कला, आन कर,
आन विधि, न्यान आन विधि ही बनाई है॥७२॥

(३) सम्बन्धातिशयोक्ति

दोहा

जहँ अजोग में जोग कहि, जोगहि में जु अजोग।
'सम्बन्धातिसयोक्ति' कहि तहाँ द्विविध कवि लोग॥ ७३ ॥

(१ अयोग में योग), यथा—

सवैया

राम नरिन्द की सैन सजै, अरि-नारि अलंकनि संकती केती।
चंदमुखी भजि जोर बिलंद गिरिंद चढ़ै, न उसासनि लेती॥
आपनें पास "कुमार" तहाँ लखि चंद अनंग गहे हिय वेती।
जानि विहार को हंस निहार ता हारके मोतीअहार कों देती॥७४॥

(२) योग में अयोग, यथा—

कवित्त

कान सुनै कौन ? गुन-गान आन भूपनि के,
'राम'-सनमान पायो नैसुक रिझाये ही।

कहत "कुमार" दिन दान लहै न्यान रहै—
धनद गुमान मघवानि विसराये ही ॥
वसु बरषत निरखत गुनी हरखत,
कौन परखत ? देव-दरखत पाये ही।
चिन्तामनि, पारस सिपारस मैं आरस है,
काम को न मानै, कामधेनु धाम आये ही ॥७५॥

इहाँ आदर-योग में अयोग है।

(४) अक्रमातिशयोक्ति

दोहा

उपजत लखिये संग ही, जहाँ हेतु अरु काज।
अक्रमातिसय-'उक्ति' सो मानत हैं कविराज ॥७६॥

यथा—

सवैया

कानन ही सुनि तेरे पयान कों, कानन ही वे पयान विचारैं।
नैकु निसानहिं धारत ही, भजि दुज्जन तेरे निसा नहिं धारैं ॥
'राम कृपान गहैं' सुनि तेऊ कृपा न गहैं, सुत दार विसारैं।
त्याजत तोहिं छमा लखि कैं वर वैरी छमा अपनो तजि हारैं॥७७॥

(५) चपलातिशयोक्ति

दोहा

हेतु प्रसंगहि में जहाँ, उपजत काज विसेषि।
तहाँ 'चपल-अतिसय-उकति', अर्थ-चित्र में लेखि ॥७८॥

यथा—

सवैया

कैसे "कुमार" कहै सुकुमारता, लागै सुगन्ध लगै गरवाई।
केसरि-खोरि बनाउ की बातहिं, गातनि बाढ़ति आरसताई॥
जावक-दैन विचार सुनैहि, चढ़ै पग-पंकज आनि ललाई।
माल को मालती-फूलनि चाह ही, फैलति है अँगुरी अरुनाई॥७६॥

(६) अत्यन्तातिशयोक्ति.

दोहा

पहिले उपजत काज जहँ, पीछे लहियतु हेतु।
'अत्यन्तातिसयोक्ति' तहँ, मानत सुमति-निकेतु॥८०॥

यथा—

सवैया

आनि अगार अगारनि द्वारनि, दुग्ग-विदारन वारन बाधैं।
तापर कीरति की कविता को "कुमार" कहै कहिबौ कवि नाधैं॥
भौन परे पहिलै मनि-माल, निहाल धरा इह मालनि काधैं।
फेरि कविन्द विलोकत ताहि, पुरंदर-से वर वेष समाधैं॥८१॥

तुल्ययोगिता-अलंकार

(१) प्रथम भेद

दोहा

एक क्रिया, गुन-धर्म जहँ वर्न्य अवर्न्यहिं होइ।
'तुल्ययोगिता' नाम को अर्थ-चित्र है सोइ॥८२॥

(१) प्रथम भेद

(१ एक क्रियाधर्म) यथा—

दोहा

बसत लाल में बाल के लोयन रूप-उमाह।
चित हित में, मन मिलन में, तन वातायन माँह ॥८३॥

इहाँ वर्ण्यनि में बसिबौ क्रियाधर्म एक है।

(२ एक गुणधर्म) यथा—

दोहा

दिन-दिन बढ़त प्रमानिये, मन, धन, दान, विभूति।
राम नृपहिं ऊँचौ कर्यौ कर कुल-जस करतूति ॥८४॥

इहाँ ऊँचौ करिबौ एक गुणधर्म है।

(३ अवर्ण्य में एक धर्म) यथा—

दोहा

संग चमू चतुरंग बढ़ि, चढ़त तोहि नरपाल!
सूर छार सों, भार सों दबत फनी-फन जाल ॥८५।

इहाँ वर्ण्य राजा है, तहाँ अवर्ण्य सूर में फनी में 'दबत' एक धर्म है।

(२) द्वितीय भेद

दोहा

हित में त्यों ही अहित में, वृत्ति तुल्यता देखि।
तुल्ययोगिता को यहो भेद दूसरो लेखि ॥८६॥

यथा—

सवैया

मानत तोसों विरोध जे गव्वर, सव्वर भूलिकै गव्व गहे हैं।
जे नर देव तजे अहमेव कों सेवत पाय उपाय चहे हैं॥
त्यों इन दोउन को करि देत ज्यों भारी विभूति ही पूरि रहे हैं।
रोषत, तोषत तोहि अमित्रनि, मित्रनि हू सुख वास लहे हैं॥८७॥

(३) तृतीय भेद

दोहा

गुनि अधिकै सो तुल्यता रचै एकता हेत।
तुल्ययोगिता को तहाँ भेद और कहि देत॥ ८८॥

यथा—

सवैया

धारत हौ जू महेसुरता, भुव-इंद्र नरिंद्रनि माँह बने हो।
पावक हौ जग प्रान लखै, धन दै तुम ही धन-दानि घने हो॥
दंड धरौ जु अदंडनि पै, पति जीवन के, सु दया हि भने हो।
एकै सबै दिग-पालनि के गुन-जाल धरै, नर-पाल गने हो॥८९॥

दीपकालंकार

दोहा

एकै वर्न्य अवर्न्य में साधारन जहँ धर्म।
तहँ 'दीपक' भूषन भनत जिनके कविता कर्म॥ ९०॥

इहाँ वर्ण्य उपमेय है, अवर्ण्य उपमान है, तातें तुल्योयोगिता भेद है।

यथा—

सवैया

वंदत लोक अनंदित है, गुन-वृंदनि 'रामनरिंद' सो को है ?
सारद चंद, बिसारद किति तिहारि ये, एक हरै तम मो है ॥
तेग सों पच्छ-विहीन करौ अरि-भूधर वज्र सों वासव जोहै ।
छाये दिगंतनि ही दल सों, तुम नद्ज़सों ऋतु पावस सोहै ॥६१॥

दीपक-भेद

दोहा

दीपक साधारन धरम जहँ आवृत्ति दिखाइ ।
तहँ दीपक आवृत्ति जुत, तीन भेद कहि जाइ ॥ ६२ ॥

(१) शब्दावृत्ति, यथा—

दोहा

सज्जन हैं तुमको भजत, तिनहिं सुधा-निधि तूल ।
दुज्जन हैं तुमतें भजत, लगै पवन ज्यों तूल ॥ ६३ ॥

इहाँ 'भजत' शब्द आवृत्त है ।

(२) अर्थावृत्ति, यथा—

दोहा

दग तेरे प्रिय-प्रेम वस, विकसत मोद अतूल ।
त्यों सखीनि के हिय-कमल फूलत सुख अनुकूल ॥६४॥

इहाँ 'विकसत', 'फूलत' यह अर्थ आवृत्त है ।

(३) उभयावृत्ति, यथा—

दोहा

खिरकी लौं आवति, फिरति, फिरकी लौं गुरु-त्रास।
तन फेरति गृह-काज तन, मन फेरति पिय पास ॥६५॥

प्रतिवस्तूपमालंकार

दोहा

कह्यौ भिन्न पद धर्म जहँ, वाक्य दुहुनि में एक।
जानौ 'प्रतिवस्तूपमा' भूषन तहँ सुविवेक ! ॥६६॥

यथा—

सवैया

कीन्हौ "कुमार" कहा कछु टौना-सो ? संग लग्यौ फिरै नंद-ढुठौना।
जीति कपोलनि चंद लियौ,मनौ चंद कियौ पर्यौ कान तर्यौना ॥
सुंदर भाल की कुंकुम-खौरि में राजत अंजन मंजु डिठौना।
कंचन पंकज केसर बीचहिं छाजतु है छवि सों अलिछौना ॥ ६७ ॥

इहाँ राजत, छाजत पद सों कह्यो, शोभा एक धर्म है।

दृष्टान्तालंकार

दोहा

जहाँ बिम्ब प्रतिबिम्बता वाक्य दुहुनि में लेखि।
अर्थ-चित्र दृष्टान्त तहँ मानत सुकवि बिसेषि ॥ ६८ ॥

यथा—

सवैया

पूरन चन्द की चाँदनी छाजति, छीर-सो छाइ रही चहुँ पास है।
जीततु ताही कों चंदमुखी! तुव सुंदर अंग-गुराई प्रकास है॥
रूप तिहारो निहारि "कुमार" न धारत और तिया दृग-पास है।
वास गुलाब सुवास में पावत, भौंर के और न फूल की आस है॥९९॥

निदर्शनालंकार

दोहा

वाक्य दुहुँनि आरोपिकै जहाँ एकता ल्याइ।
'निदर्शना' सुबताइये, 'जद', 'तद' सों ठहराइ॥१००॥

यथा—

तजत भजन-सुख, भजत जो विषय-वासना नीच।
तजि सुरसरि, चाहैं सुजल मरु-मरीचिका बीच॥१०१॥

यथाच—

सवैया

सो थल में जलजात लगायो है, गायो उजारि में गीत सुगाह्यो।
स्वान की पूंछ है सुद्ध करी, जनु काइर कूर है जुद्ध उमाह्यो॥
कान में मंत्र कह्यौ बहिरे कहँ, ऊसर में बरषा झर वाह्यो।
दर्पन दीनो असूझत कों, जु अबूझ नरेस रिझावन चाह्यो॥१०२॥

इहाँ 'सो' 'जो' कहे एकता है।

निदर्शना के भेद

दोहा

(१) जहँ पदार्थ को धर्म कछु, कह्यौ और में ल्याइ।
(२) बोध असत सत अर्थ को 'निदर्शना' ठहराइ ॥१०३॥

प्रथम यथा—

दोहा

होत उदोत जु चंद में सखी लखी सुख-कन्द।
भोर वहै दीपति दिपति तुव मुख माहँ अमन्द ॥१०४॥

इहाँ उपमेय में उपमान को धर्म है।

दोहा

छवि जो गोल कपोल में लसति रदन-छत जागि।
कनक-तरयौना-दुति यहै धरत लाल नग लागि ॥१०५॥

इहाँ उपमान में उपमेय—धर्म है।

द्वितीय यथा—

(१ असदर्थ निदर्शना)

दोहा

अहित चाहि कै आन को न्यान सुपावत ताहि।
भई पूतना प्रान-बिन प्रान कान्ह के चाहि ॥१०६॥

(२ सदर्थं निदर्शना)

दोहा

उद्धित ह्वै निज पच्छ में, कीज लच्छि प्रकास।
यहै सिखावत रवि उवत, कौलनि देत विकास ॥१०७॥

व्यतिरेकालंकार

दोहा

जहँ विशेष उपमेय में उपमान में दिखाइ।
भूषन सो 'व्यतिरेक' है उपमा में कहि जाइ ॥१०८॥

यथा—

सवैया

मंद करै अरविंद के वृंदनि, मंद हसी में सुधा बरसावै।
आली गुविन्द को आनन सुन्दर, पूरन चंद-सो देखत भावै॥
यामें "कुमार" अपूरव है निसि-द्यौस ही कांति कला बढ़ि पावै।
याके कलंक को अंक नहीं, इहि देखत लोग कलंक लगावै॥१०६॥

(१) इहाँ उपमान में विशेष है।

यथाच—

सवैया

तू वृषभानु-कुमारि ! महा-सुकुमारि उजागर रूप धर्‌यो है।
तेरो सखी, तन भूषन ही बिन सोहतु, भूषन भार हर्‌यो है॥
गालनि छाई गुराई "कुमार" जु कंचन न्यान समान कर्‌यो है।
हारि डर्‌यो नित नूपुर है, यह पाइ पर्‌योई निहारि पर्‌यो है॥११०॥

(२) इहाँ उपमेय में विशेष है। उपमान निकर्ष में है।

यथाच—

सवैया

आजु कलिन्दी अन्हात में कांति खरी निखरी तन नैंननि धारिये।
बाँधत वार निहारी 'कुमार' तिहारी भुजा मनु वारिही वारिये॥

चारु सरूप महासुकुमार, ये क्यों सम काम कृपान-सो तारिये।
याके लगे हिय नंद-कुमार की, मार की पीर, सबै हर डारिये ॥१११॥

(३) इहाँ उपमेयमात्र उत्कर्ष को हेतु है। ऐसे उभयत्र सहेतु, निर्हेतु जानिये।

सहोक्ति विनोक्ति अलंकार

दोहा

जहँ शोभा सह भाव में तहँ 'सहोक्ति' कहि जाइ।
विना भाव कहि बरनिये तहँ 'विनोक्ति' ठहराइ ॥११२।

सहोक्ति, यथा—

सवैया

ग्यान घट्यौ डर संग अयान है, आनि कर्यौ भर चातुरी अंग ही।
सौने-से गात सलौने सुहात गुराई मिली तरुनाई-तरंग ही॥
केलि-विलास हुलासनि-संग "कुमार" बस्यौ अब आइ अनंग ही।
प्रेम-उमंग, उरोज उतंग बढ़े पिय-संगम-चाह के संग ही ॥११३॥

विनोक्ति, यथा—

दोहा

अनल-ज्वाल बिन धूम ज्यों, बिन घन सारद चन्द।
सैसव बिन तिय-तन लखौ, त्यों जोवन नँदनन्द ॥११४॥

समासोक्त्यलंकार

दोहा

प्रस्तुत में भासति जहाँ अप्रस्तुत है बात।
'समासोक्ति' मानत तहाँ पण्डित गुन-अवदात ॥ ११५ ॥

यथा—

दुरि उघरी सुघरी लखौ, निर्मल सलिल विसेखि।
नहिं अघात लोइन अली, कंजकली-बन देखि ॥११६॥

इहाँ उरोज-वृत्तांत्त भासत है।

यथाच—

कवित्त

दरपन विमल कपोलनि पै डोलतु है,
कंचन तरयौना तातें चंद गन्यौ चेरौ है;
साँस वे सन्हार त्यौं "कुमार" मोतीहार उर,
चलन निहारि न चलतु मन मेरौ है।
अलक झलक मुख-जलज पै छाजि रही,
श्रम जल-बिन्दु-वृंद राजत घनेरौ है;
ऐसों अरविन्द-मुखी रचत अनंद-केलि,
वंदियतु कंदुक! विलंद भाग तेरौ है ॥११७॥

इहाँ विपरीत रतासक्त नायिका-वृत्तांत भासत है।

परिकर तथा परिकरांकुर अलंकार—

दोहा

साभिप्राय विशेषनहिं 'परिकर' भूपन मानि।
साभिप्राय विशेष्य-जुत, 'परिकर-अंकुर' जानि ॥ ११८ ॥

परिकर, यथा—

सवैया

गोपनि तें पलु न्यारौ न पाइये प्यारो "कुमार" कहूँ रसभीनौ।
तासों मिलाप-विचार, सुचारु बनै उपचार कछू न प्रवीनौ॥
बूँद बचावन कों वन ओर तें आयौ हरी बरषै हित कीनौ।
जीवन-दानि घनैघनजानै, जोमोघरहीघनसुंदरदीनौ॥ ११६॥

परिकरांकुर, यथा—

दोहा

जग-वंदित, आनंद-कर, संकर के सिर-ताज।
वध कीवौ विरहीन कों नव राजत दुजराज॥ १२०॥

इहाँ द्विजराज विशेष्य साभिप्राय है।

श्लेषालंकार—

दोहा

अनेकार्थयुत शब्द की रचना जहाँ निहारि।
'श्लेष' नाम भूषन तहाँ अर्थ-चित्र निरधारि॥ १२१॥

(१) प्रकृत श्लेष

दोहा

सुरुचि, स्याम चित के हरन, कोकहि बरनि समान।
नारिकेलि-जयके करन, तुव कुच कच सम न्यान॥१२२॥

इहाँ कुच, कच दोऊ वर्ण्य हैं।

(२) अप्रकृत श्लेष, यथा—

दोहा

जल-भव भव-भूषन सहज, लच्छि बास सुख-कंद।
चंद यहौ अरविन्द लखि, तिय तुव मुख तें मंद॥ १२३॥

इहाँ मुख वर्ण्य है, चंद, अरविन्द अप्रकृत है।

(३) प्रकृताप्रकृत श्लेष, यथा—

सवैया

जाहि लखे पर भीति लहै, जिय जो मरजाद गहै नित छाजै।
जाहिर है रतनाकर जो, उपजावत लच्छि सबै सुख छाजै॥
लच्छनि जीवनि रच्छन-दच्छ, सपच्छ महीभृत पाल निवाजै।
राम-भुजा वर किस्ति उजागर,सागर-सो गुन आगर राजै॥१२४॥

इहाँ राम-भुजा प्रकृत है, सागर अप्रकृत है।

अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार—

दोहा

प्रस्तुत बात बताइये अप्रस्तुत में ल्याइ।
'अप्रस्तुत-परसंसिका' सो अन्योक्ति कहाइ॥ १२५॥
कहुँ सामान्य, विशेष, तें हेतु, काज, तें होत।
त्यों सरूप तें, पाँच विधि प्रस्तुत बात उदोत॥ १२६॥

(१) सामान्य तें, यथा—

दोहा

प्रीति कनकरेखानि को खोटौ, खरौ विवेक।
प्रगट हि देत बताइ है, काज कसौटा एक॥ १२७॥

(७) विशेषण-विशेष्य-श्लेष तें, यथा—

दोहा

द्यौस छपत, निसिचर अपत, विरहिनि तपत निसंक।
कुमुद-मीत दुजराज! तू बढ़ि बढ़ि धरत कलंक ॥१३३॥

इहाँ दुर्जन द्विजराज-स्वरूप जतायो।

(८) सरूप निबंध में सदृश को आरोप कहूँ आवश्यक है, कहूँ कहूँ नाहीं। यथा—

दोहा

रच्यौ न सिर-पट बध कहुँ आदर सों वर कूप।
सूखे सरवर, एक तुहि जीवन-दानि अनूप ॥१३४॥

इहाँ कूप-वर्णन सप्रयोजन है, तातें सदृश को आरोप अत्यावश्यक नाहीं।

यथाच—

सवैया

काँधे में बाँधे बनाइ के केसर, केसरी जान्यौ अजाननि जैसें।
तैसे ही चाल चलै, अरु बैठे, कहा भयौ सोर करै कहु तैसें॥
स्वाँग-विधान बनाइ सवै, मृगराज रच्यौ कहुँ स्वान जु ऐसे।
तौ वह कुंजर-कुंभ-विदारन दारुन विक्रम पावत कैसे? ॥१३५॥

इहाँ श्वान-वर्णन निष्प्रयोजन है, तातें तत्सदृश को आरोप आवश्यक है।

प्रस्तुताङ्कुरालंकार

दोहा

प्रस्तुत वर्णन में जहाँ प्रस्तुत और जताइ।
'प्रस्तुत-अंकुर' नाम तहँ अर्थ-चित्र ठहराइ ॥ १३६ ॥

यथा—

सवैया

लाल प्रवाल लसै रस-अंचित कोकिल चंचु चुभै अति पैनी।
हंसनि सों लरि घाइल अंग, विलोकिये कोक सरोरुह-नैनी ॥
खेलति बाग की बाउरी-बीच सहेली की बात सुनै पिक-बैनी।
पानिसोंआननअंचलसोंउर,ढांकि लियो लहिलाजकी सैनी ॥१३७॥

इहाँ सबै प्रस्तुत है।

पर्य्यायोक्त्यलंकार

(२) प्रथम लक्षण

दोहा

व्यंग अर्थ कहिबे वहै भंगि वचन रचि फेरि।
कहिए सो पर्य्याय सों, 'पर्यायोक्ति' निवेरि ॥ १३८ ॥

यथा—

जासु अचल रथ, चल चका हरि सर सिंधु तुनीर।
रूप दोइ इक देह धरि, हरैं सुपुर-हर-पीर ॥ १३९ ॥

इहां जो अचल रथादि कहि, व्यंग 'पुर-हरै' सोइ पर्य्याय तें कह्यो।

(२) द्वितीय लक्षण

दोहा

चित चाह्यौ हित साधिये, पर्यायहिं रचि बात।
दूजौ पर्य्यायोक्ति को भेद, तहाँ कहि जात ॥ १४० ॥

यथा—

कुंज विजन पियतन रचौं, सजनी ! विजन-बयारि।
मलयसार घनसार-सँग ल्याउ गुलाबहिं गारि ॥ १४१ ॥
चोरि धरी बिच कंचुकी मेरी कंदुक बाल !
छैंकि रहै, छतियाँ गहै, छैल छबीलो लाल ॥ १४२ ॥

व्याज-स्तुति-अलंकार

दोहा

निंदा तें स्तुति जानिये, स्तुति तें निंदा जानि।
'व्याज-स्तुति' भूषन तहाँ, दोइ भाँति पहिचानि ॥ १४३ ॥

यथा—

हरी ! करी यह नहिं भली सब गुन-गनके गेह।
दारिद सों जु सुदान सों तोर्‌यौ सहज सनेह ॥ १४४ ॥
न्यान जानिये कृपन जन, बड़ौ दानि इहि हेत।
जोरि-जोरि धन कोरि धरि, मरत तुरत तजि देत ॥ १४५ ॥

व्याजनिंदा—अलंकार

दोहा

निंदा तें जहँ और की निंदा जानी जाय।
कहत 'व्याज-निंदा' तहाँ भूषन कवि-समुदाय ॥ १४६ ॥

यथा—

कवित्त

काम के सहाई इकहाइ दुखदाई भये,
सबै सुखदाई है 'कुमार' पिय-संग के।
बीति गये औसर इलाज नहिं लहियतु,
दहियतु दाहनि विरह-अभिषंग के॥
दीजियतु दोष, परिपोष पसुपति ही कों,
रोष सों न देखै ये न लेखै अरि-अंग के।
भाल-दृग-पावक की झार सों न छार करै,
विधु मधु गंधवाह संग ही अनंग के॥ १४७॥

आक्षेपालंकार

दोहा

जहाँ आपनी उक्ति को करि प्रतिषेध विचारि।
भूषन तहँ आक्षेप कहि अर्थ-चित्र निरधारि॥ १४८॥

(१) भावी अर्थ को आक्षेप, यथा—

कवित्त

किलकि-किलकि कोकिला को कुल कितहू तें
काकली सुनाइ चित चेतना को खोइगो।
मलय-निलय गंधवाह त्यों "कुमार" कहि,
मंद-मंद लागि आगि आँगनि समोइगो॥
रैनवधू-नाइक हरैगो तन-ताप मेरी,
नैसुक दिखाइ दै दिवस सब गोइगो।

कैधौं सुख-कंद चंदमुखी - मुखचंद बिन
एरे जड़ चंद ! दुख-दंद तुही होइगो ॥ १४६ ॥

इहाँ भावी अर्थ को आक्षेप है।

भूत अथ को आक्षेप, यथा—

दोहा

कही नहीं, कहिहौं नहीं तिय की दसा निदान।
तुमहिं कंठ लागे बिना कंठ रहे लगि प्रान ॥ १५० ॥

द्वितीय तथा तृतीय आक्षेप

दोहा

जहँ निषेध-आभास है, यह आक्षेपै जानि।
गुप्त निषेध जु विधि वचन, तीजो भेद प्रमानि ॥ १५१ ॥

(२) द्वितीय आक्षेप, यथा—

तिय न कहति, नहिं हौं कहौं तिय को विरह-कलेस।
घरी द्वैक में होइगो दुर्लभ वचन-सँदेस ॥१५२॥

(३) तृतीय आक्षेप, यथा—

सवैया

प्रात हौं जात विदेस को, प्रीतम ! जैयो भले निज काज हितै है।
मेरी हिये सुधि राखियो, एहो ! रहौ सुख सों सिख बात यहै है॥
चाँदनी रैनि, वसन्त को वासर, मोहिं "कुमार" कहा दुख दैहै ?
काम कसाइ कलानिधि पाइ अहो ! हिय-ताप सबै हरि लैहै ॥१५३॥

इहाँ "जिन जाउ" यह निषेध गुप्त है।

विरोधाभास अलंकार

दोहा

जान्यों जात विरोध—सो, समुझै नहीं विरोध ।
कहत 'विरोधाभास' तहँ, जिनके कविता-बोध ॥ १५४ ॥

यथा—

रहत अवनि में वैरि तुव, वन में रहत विसूरि ।
भजत पगनि तुव नाहिं ते भज तप गनि है दूरि ॥ १५५ ॥

यथाच—

मिले परनि सों परनिसों, मिले दूर कढ़ि जात ।
जानै वज्र-समान तुव बान अमान दिखात ॥ १५६ ॥

विभावना अलंकार

दोहा

हेतु विना ही काज जहँ उपजत वरन्यौ जाइ ।
कै अहेत तें काज इमि विभावना ठहराइ ॥ १५७ ॥

(१) हेतु विना कार्य, यथा—

सवैया

भूषन हू बिन भूषित अंग, तिहारे निहारे सरूप विभा ही ।
पंकज-से पग लाल न जावक दीन्हौ "कुमार" लसै चहुँघा ही ॥
घूँघुट सारी रहै घिरि है घनौ घाइ करै हथियार विना ही ।
घूमत-से मद पीवें नहीं, वे छके मद सों दृग देखे सदा ही ॥१५८॥

(२) अहेतु तें कार्य; यथा—

दोहा

चम्पक-लतिका में लगीं लखि गुलाब-कलिकानि।
लाल लालची दृग-अलिनि ठई नहीं पहिचानि॥ १५९॥

तृतीय तथा चतुर्थ विभावना

दोहा

हेतु सकल नहिं होत तहँ उपजत देखौ काज।
प्रतिबन्धक हूँ काज तहँ गनौ भेद कविराज॥ १६०॥

(३) तृतीय, यथा—

लखत दूरि ही गगन में नूत कुसुम की धूरि।
दूषत दृग विरहीनि के, ढरत नीर भरिपूरि॥ १६१॥

इहाँ 'लखत दूरि' यह हेतु पूरन नाहीं।

(४) चतुर्थ, यथा—

सवैया

जे नित ही रचि मंत्रनि, जंत्रनि, तंत्रनि सों निज साधत रच्छन।
ताहि नरिन्दनि राउरो खग्ग-भुजंग रचै जुरि जुद्ध में भच्छन॥
राम नरेस! तिहारे प्रताप में देख्यौ "कुमार" प्रभाव विलच्छन।
राखै सपच्छ महीभृत को थिर, देत उड़ाइ विपच्छ को तच्छन॥ १६२॥

इहाँ नरिंद = विष वैद्य, सपच्छ = पाँख-सहित, विपच्छ = पच्छ-रहित इत्यादि प्रतिबंध है।

पञ्चम तथा षष्ठ विभावना

दोहा

काज विरोधी हेतु तें होत सुपंचम भेद ।
हेतु होत जहँ काज तें छठौ तहाँ विच्छेद ॥ १६३ ॥

(५) पंचम, यथा—

सिसुता-निसि बीते जग्यौ जोवन गात प्रभात ।
सौति कमल-बदनीनि के वदन-कौल कुम्हिलात ॥ १६४ ॥

इहाँ प्रभात हेतु तें कमल कुम्हिलैबौ विरुद्ध कार्य है ।

(६) षष्ठ, यथा—

तुम विन कान्ह "कुमार !" लखि सूने केलि-निकुंज ।
तरुनी - नैनसरोज तें होत सरोवर - पुंज ॥१६५॥

विशेषोक्ति अलंकार

दोहा

हेतु होय पूरन जहाँ उपजत काज न देखि ।
'विशेषोक्ति' भूपन तहाँ अर्थ-चित्र में लेखि ॥ १६६ ॥
(१) कहूँ कह्यो है हेत तहँ, (२) कहूँ कह्यौ नहिं हेतु ।
(३) कहुँ अचिंत्य है हेतु इमि तीन भेद तहँ चेतु ॥ १६७ ॥

(१) उक्त निमित्ता, यथा—

दोहा

हरत देह हरि नहिं हर्‌यौ तुव सुभाव खल ! क्रूर ।
गल बिनहू अनिवार बल गिलत राहु ससि-सूर ॥ १६८ ॥

इहाँ, 'अनिवार बल' हेतु कह्यो है ।

(२) अनुक्त निमित्ता, यथा—

सवैया

ज्यौं-ज्यौं चहूँ दिसि तें तन दुज्जन घेरि कृपाननि घातनि छान्यौ।
त्यौं-त्यौं हिये तुम सौतिय के गुन नेह को जोर उजुग्यो डिठ जान्यौ॥
ज्यौं-ज्यौं "कुमार" सखा बरजै, तरजै डर बोइ सिखावन ठान्यौ।
धोयोतियाहग-नीरज-नीरहूत्यौं-त्यौंबढ़्यौअनुराग प्रमान्यौ॥१६६॥

(३) अचिन्त्य निमित्ता

सवैया

कामी कर्यौ गुरु नारि को गामी, यहै द्विजराज में छीनता छाई।
इन्द्र सों गौतम-नारि रमाई, गमाई गई विधि की बुधताई॥
ग्यान समूल करै उनमूलन, फूल के बान निकाम कसाई।
नैन जराई जरी तन ताकी, हरी न गई हर सों खलताई॥१७०॥

असम्भव अलंकार

दोहा

है सकि है संभव नहीं, यहि कहि वरनै बात।
तहाँ 'असम्भव' नाम को अर्थ-चित्र कहि जात॥ १७१॥

यथा

रस-वस पिय ही नवल तिय सुखद सिखायो मान।
जानै को बढ़ि दुवन लों है दुखद अमान॥ १७२॥

यथाच—

सवैया

यामें भर्‍यो यथा-पूर अपूरब जाके न पारहिं डीठि रचै है।
क्यों बडवागिनि सोखि सकै ? न प्रलैहू को पूषन याहि तचै है ॥
सेयौ सपच्छ गिरिन्दनि आस यों, बासव के डर पास बचै है।
जानी न हाल जो कुंभको बालक ख्यालहीसागर लेतु अचै है॥१७३॥

असङ्गति अलंकार

दोहा

हेतु असंगत अनत ही, होत अनत ही काज।
तहाँ 'असंगति' नाम कहि, अर्थ चित्र कवि-राज ॥ १७४ ॥

यथा

ललित स्वेद-जल झलक मुख, वलित मुकतमय माल।
थकी हिडोरे झूलि तिय, भरत सांस नंदलाल ॥ १७५ ॥

अन्य भेद

दोहा

कर्‍यौ अनत ही चाहिये अनतहिं काज विसेखि।
भेद गनौ कै रचत जहँ काज विरुद्धै लेखि ॥१७६॥

(१) अन्यत्र कार्य, यथा—

कवित्त

भूप-सिरमौर राम दौरत "कुमार" कहि,
उजरत दुज्जन के दुग्ग है पलक में।

बैरि-तरुनीनि के नवीन लखे भूषन है,
भूषन विहीन लखौ जीरन ललक में ॥
चुरी हिय माह वन-बीच दुख दाह डरी,
जावक को रंग जगै लोचन-फलक में।
पानि में वसन, दसननि रसना है, गति-
नथ की पगनि, पत्र-रचना अलक में ॥१७७॥

(२) विरुद्ध कार्य, यथा—

दोहा

मुदित करत जग उदित ह्वै हरत तिमिर को वृंद।
मेरे हिय ही रचत कत ? अधिक अँधेरो चंद ॥१७८॥

विषमालंकार

दोहा

होत नहीं सम रूप तहँ, रचिये घटना ठानि।
कै विरूप है काज जहँ, विषम नाम पहिचानि ॥१७९॥

(१) असम घटना, यथा—

दोहा

बिछुरि न कीन्ही तनक सुधि निपट कठिन-हिय लाल !
दुसह विरह बड़वागि कत ? कत कोमल-तन बाल ॥१८०॥

(२) विरूप कार्य, यथा—

सवैया

ऊधौ ! कहा कहि दीजै उराहिनो ? हाय हरी न हिये सुधि धारी।
देखि परै विपरीत सबै, बिन देखे ही नंद-"कुमार" विहारी ॥

ज्यौं-ज्यौं धरौं हिय साँवरे रूपहिं त्यौं-त्यौं चढ़ै अनुराग महा री।
आनन-चंद कीआवतहीसुधि,छावत आँखिनि आइ अँध्यारी॥१८१॥

अन्य भेद

दोहा

चाह्यो इष्ट न पाइयें, होय अनिष्टै आय।
केवल होय न चाह तौ, विषम भेद द्वै ल्याय ॥१८२॥

(३) इष्ट में अनिष्ट, यथा—

दोहा

जाही डर विधु-मधि हरिन वन तजि रच्यौ निवास।
भयौ तहाँ विधु-सहित ही सिंही-सुत को त्रास ॥१८३॥

(४) अनिष्ट में इष्ट, यथा—

दोहा

नहिं सुगन्ध, नहिं मधुर रस, भ्रमत भौंर लहि भूल।
है विचित्र यह चित्र को कनक-कमल को फूल ॥१८४॥

(५) केवल अनिष्ट होय सो पंचम भेद

दोहा

मुगध तरुनि जनि स्याम-छवि दृग-अंजलि रचि पान।
मोहिं दसैं यह धारिहैं विष लौं विषम निदान ॥ १८५ ॥

समालंकार

दोहा

जहँ घटना सम रूप लहि, तहँ 'सम' भूषन जोग।
हेतु काज सम रूप हू, भेद कहैं कवि लोग ॥१८६॥

(१) उत्कर्ष में सम, यथा—

सवैया

ज्यौं पगपंकज ईंगुर-से, तहँ मंजुल जावक को रँग राजै।
ज्यौं कुच-कोरक ये तरुनी तहँ हार "कुमार" कदंब को छाजै॥
सोने-से अंग सलोने तहाँ मुकता-मनि-भूषन है सिरताजे।
जैसी लसै तन कुंकुम-खोरि त्यौं सारी रँगी रँग पीत विराजै॥१८७॥

निकर्ष में सम, यथा—

दोहा

जैसी नारि गँवारि त्यौं सन वन-फूल निहार।
ज्यौं भूषन, तैसे तरुन जन गवाँर रिझवार॥ १८८॥

(२) हेतु कार्य-सम रूप सम, यथा—

सवैया

वास लह्यो बड़वानल पास, हलाहल को सहजात कहावै।
संकर-भाल के लोचन में बसि पावक-ज्वाल कराल मझावै॥
राहु गिल्यो उगिल्यो पुनि सूरज-संग मिल्यो जु कलंक सुभावै।
सो गुरु-साप डर्‌यो नहिंपापनिसा-पतिक्योंनहिं तापबढ़ावै॥१८९॥

(३) विना अनिष्ट के सिद्ध सम

दोहा

बिन अनिष्ट लहि सिद्ध वह तीजो सम चित-धारि।

यथा—

चित चाही याही लहौं यों सेवत नृप दानि।
जगतु यहै मेरे चढ़ी अंग विभूति सु आनि॥ १९०॥

विचित्रालंकार

दोहा

हित उद्दिम-विपरीत फल, तहँ 'विचित्र' निरधारि ॥१६१॥

यथा—

ज्यौं तन लोचन लगत हरि भूषन धरति उतार।
त्यौं लोचन लागन लगे लगि लालच दिसि चार ॥१६२॥

यथाच—

चाहि उचाई सिर नवत दुख देखत सुख-ध्यान।
तजत जीव चहि जीविका सेवक मूढ निदान ॥ १६३ ॥

अधिकालंकार

दोहा

अधिक चित्र जु अधार तें, अधिकौ जहँ आधेय।
और भेद आधेय ही अधिक अधार अधेय ॥१६४॥

(१) प्रथम, यथा—

दोहा

लख्यौ जसोदा सकल जग जा मुख-बीच-समात।
तिहि मोहन-मुख राधिका मिलत मोद अधिकात ॥ १६५ ॥

(२) द्वितीय, यथा—

सकल समानौ हाल जहँ तुव बिलास जस-जाल।
इहि अनुमानहिं जगत यह जान्यौ निपट बिसाल ॥ १६६ ॥

अल्पालंकार

दोहा

अल्प अलप आधेय तें अति सूछम आधार।

यथा—

हियो तिहारो जानिये अति ओछौ नँदलाल !
अतनु करी अतितनु सुतनु यहौ समाति न बाल ॥ १६७ ॥

अन्योन्यालंकार

दोहा

जहाँ परस्पर उपकरत, तहँ अन्योन्य विचार ॥ १६८ ॥

यथा—

लसत चंद सों चाँदनी, चाँदिनि ही सों चंद ।
तुम ही सों कीरति लसत, कीरति सों रघुचंद ॥ १६६ ॥

यथाच—

बैन सुनायौ मधुर सुर, कुंज-सदन नँदलाल ।
सिर नहिं धारी गागरी भारी कहि कहि बाल ॥ २०० ॥

विशेषालंकार

दोहा

बिन अधार आधेय कै थल अनेक इक लेख ।
इक अरंभ आरंभिये, और सु त्रिविध बिसेख ॥ २०१ ॥

(१) प्रथम, यथा—

दोहा

गई छबीली झाँकि इत, छनछवि-सी छन छाइ ।
छाजि रही अजहूँ यहै छजनि-माँह छवि छाइ ॥ २०२ ॥

इहाँ बिन तिय आधार, छवि आधेय है ।

(२) द्वितीय, यथा—

सवैया

कुंज-गलीनि अली है यहै, जमुना-तट बाट "कुमार" यहै री।
नेह निरंतर गेह के अंतर, नैननि में हिय में सु बसै री॥
देखि परै दसहूँ दिसि में, निसि द्यौस हरी न घरी बिसरै री।
तासों वियोग दै हेली हहा करिहै कहा? मेरौ महाविधि वैरी॥२०३॥

इहाँ एक बात अनेक थल है।

(३) तृतीय, यथा—

दोहा

तुमहिं लखत सब बखतमय कामद रघुकुल-राज!
काम, काम तरुवर लख्यौ, सुर-गुरु, सुर-पुर-राज॥ २०४॥

इहाँ एक दर्शन आरंभ में अनेक दर्शन आरंभ है।

व्याघातालंकार

दोहा

जो साधन है अन्यथा तथा जु साधत बात।
कै विरुद्ध साधन करै तहँ जानौ 'व्याघात'॥ २०५॥

(१) अन्यथा साधन, यथा—

नैननि ही सों ज्याउती, नैन-जरायो काम।
वामदेव कों जीतती ये वामा अतिवाम॥ २०६॥

(२) विरुद्ध साधन, यथा—

ये ई सुखदायक सदा, दुखदायक ते न्यान।
अद्भुत गुन है सुमन के मदन! तिहारे बान॥ २०७॥

यथाच—

तिय प्रवीन विन मधुर तुव हँसि हँसि बोल रसाल।
सौतिन के हिय विष लगे, गनै सुधा नँदलाल ॥२०८॥

अन्य भेदः—

जो है काज-विरोधिनी क्रिया यहै फिरि ल्याइ।
हेतु सुकर जहँ कीजिये व्याघातै सुवताइ ॥ २०९ ॥

यथा—

दारिद हू है इहि डरहिं सूम देहि नहिं त्याग।
होइ न दारिद इहि डरहिं देत त्याग बड़ भाग ॥ २१० ॥

यथाच—

देवी देव मनाउतीं जा सनेह को नारि।
ताही कान्ह-सनेह को निकसति ठुरति गँवारि ॥ २११ ॥

हेतुमालालंकार

दोहा

पूर्व पूर्व जहँ हेतु है, उत्तर उत्तर काज।
कहौ हेतुमाला कि तहँ पूरब-पूरब काज ॥ २१२ ॥

(१) पूर्व पूर्व हेतु, यथा—

बुध-संगहि बुधि, बुधि बढ़ै सुनय, सुनय तें राज।
राजहि तें धन, धन लहै दान, दान जस-काज ॥ २१३ ॥
इहाँ उत्तर उत्तर कार्य है।

(२) पूर्व पूर्व कार्य, यथा—

नरक होत है पाप ते, पापनि विपति प्रमान।
विपति होति बुध-हानि तें, हरि विसरे बुधि-हानि ॥२१४॥

इहाँ उत्तरोत्तर हेतु है।

एकावली अलंकार

दोहा

उत्तर उत्तर वाक्य में पूर्व पूर्व कों ल्याइ।
जहाँ विसेषन दीजिये 'एकावलि' सुवताइ ॥ २१५ ॥

यथा—

दृग काननि लौं कान तुव, सोहत लगि भुज-मूल।
दीह ज़ानु लग भुज, भुजनि विजय-सिरी अनुकूल ॥२१६॥

यथाच—

मन-सम राज, सुराज-सम राज, सिरी-तुलदान।
दान-तुल्य जस, जस-सरस तुव गुन-गान जहाँन ॥२१७॥

मालादीपकालंकार

दोहा

मिलि दीपक एकावली 'मालादीपक' जानि।

सवैया

बाल नवेली में लाल रसाल बसैं दुति जाल बिसाल उज्यारे।
त्यौं दुति में बसौ जोबन है, नवजोबन मौंह विलास निहारे॥

देखौ "कुमार" बिलासनि में चित, याके बसौ चित में तुम प्यारे।
प्यारे बसै तुममें, बस ह्वै गन-आगर रूप उजागर भारे ॥२१८॥

इहाँ बसिबो एक धर्म है, यातें दीपक है।

सारालंकार

दोहा

उत्तर-उत्तरु उतकरष, 'सार' अलंकृति मानि ॥ २१६ ॥

यथा—

पय तें मधु, मधु तें मधुर दाख, दाख तें ऊख।
ऊखहि तें अति मधुर है तिय! तुव अधर-पियूख॥ २२० ॥

यथासंख्य अलंकार

दोहा

क्रम-जुत बातनि को जहाँ क्रम तें अन्वय लेखि।
'यथासंख्य' यह नाम कहि अर्थ-चित्र तहँ देखि ॥२२१॥

यथा—

सवैया

हेम के गंजनि, वैरि के पुंजनि, पानि में पानी कृपानी को धारे।
लेखत हो कन-से, त्रन-से, विधि दान रचे मयदान विचारे॥
दुज्जन के गन, सज्जन के मन, मानिनि मान रचे हठ भारे।
गंजत हौ, अनुरंजत हौ, मद भंजत हौ, दृग-कोर निहारे ॥२२२॥

पर्यायालंकार

दोहा

थल अनेक में एक की थिति जहँ क्रम तें देखि।
इक, सधि तथा अनेक थिति, तहँ 'पर्याय' बिसेखि ॥२२३॥

(१) अनेक में एक की स्थिति, यथा—

सिरी सखी में निसि बसी, लसी सरोजहिं प्रात।
यहै आजु तिय-दृगनि मधि देखत दृग न अघात ॥ २२४ ॥

यथाच—

सवैया

केलि चरित्र-विचित्र विलासिनि चित्र चढ़ी, चित चाह चढ़ी है।
चारु "कुमार" सुने गुन कान्ह के कान चढ़ी, अभिमान चढ़ी है॥
प्रीतम हू निसि द्यौस रटी, मन चोप चढ़ी, तन ओप चढ़ी है।
मैन-गढ़ी रस-बैन पढ़ी तू चढ़ाए-से नैननि नैन चढ़ी है ॥ २२५ ॥

(२) एक में अनेक की स्थिति, यथा—

दोहा

गन्यौ तनक मग कुँज को, जो पिय-पास हिं जात।
कोस सहस सोई भयो, फिरि आवत घर प्रात ॥ २२६ ॥

यथाच—

जहाँ लखे निरभर सुरभि पंकज, वकुल, रसाल।
विकट कंटकी विटपि तहँ अजौं न वेऊ जाल ॥ २२७ ॥

परिवृत्ति अलंकार

दोहा

घटि बढ़ि को जहँ बदलिवौ तहँ 'परिवृति' प्रकासु।

(१) प्रथम (अधिक सों कम लीबौ) यथा—

हसि लीन्ही हरि हाथ तें चंपक-कलिका नौल।
चितै इतै तिय दै गई फूले लोचन-कौल ॥ २२८ ॥

(२) द्वितीय (कमी सों अधिक लीबौ) यथा—

सवैया

राम-वधू हर लै चल्यौ रावन, तासों लर्यौ घन घायनि छायौ।
भाग "कुमार" जटायुष को रघुनायक को जु सहाय कहायौ ॥
कीजिये याकी सराह कहाँ लगि ? गिद्ध गौ उद्धरि सिद्धनि गायौ।
जोर जरा-जुर जीरन देह दए, अजरामर ह्वै जस पायौ ॥२२६॥

परिसंख्यालंकार

बरजि वहै कहि अनत थल, तहँ कहि 'परिसंख्या' सु ॥ २३० ॥

(१) प्रथम, यथा—

भ्रकुटी अलकनि कुटिलता, कठनाई कुच ठान।
नहिं तेरे हिय, ताहि तू कत चाहति ? गहि मान ॥२३१॥

(२) द्वितीय (बिन ही बरजै अन्य थल में कहिबौ) यथा—

राम ! तिहारे राज में तिय-केसनि दृढ बंध।
कंप ध्वजनि में, हयनि में कसाघात-सनबन्ध ॥ २३२ ॥

विकल्पालंकार

दोहा

जहाँ तुल्य बल बरनिये, दोऊ बात विरुद्ध।
तहँ 'विकल्प' भूषन कहै कवि जे सुमति प्रबुद्ध ॥२३३॥

यथा—

छनक छमा धरि औधि भरि अहे अहेरी काम।
आजु हरत घनस्याम दुख, कै हरि हैं घनस्याम ॥ २३४ ॥

यथाच—

सवैया

'राम नरेस' के संगर-धाकहिं धीरिनि में रहै धीरज काको ?
वैरि-वधू इमि कंत सों वैठि, सिखापन देती इकंत कथा को ॥
'राजहिं त्यागि भजौ' वनकों, कै भजौ वन कों तक सेवन याको,
आपने मीच-उपायनि ताकौ, कै लै लै उपायनि पायनि ताको'॥२३५॥

समुच्चयालंकार

(१) प्रथम

दोहा

भेद रीति सतपत्र के होय एक ही वार।
विन विरोध जहँ वहुक्रिया, सु 'समुच्चय' निरधार ॥२३६॥

यथा—

सवैया

जानि परी, कहुँ कान परी धुनि वाँसुरी, वाल के लाल ! तिहारी।
भूलि गयो मन, डोलैं कहूँ तन, वूझै न वोलै "कुमार" विहारी ॥
जागत लागत नैन नहीं, छवि छाकति, झाँकति झाँकिनि प्यारी।
खीझि हसैं नहिं, रीझि सकै नहिं, योंकसकै रस के वस डारी ॥२३७॥

(२) द्वितीय

दोहा

जहाँ परसपर वहस सों हेतु वहुत इक ठौर।
काज एक साधत तहाँ, भेद समुच्चय और ॥२३८॥

यथा—

जोवन, रूप, सुहाग, वर-भाग, कला, गुन, ग्यान।
तोहिं विधाता सब दिए, न्यान बढ़ावत मान ॥२३६॥

कारक दीपक अलंकार

दोहा

क्रम ही सों बहुतै क्रिया गुंफित कीजे ल्याय।
'कारक दीपक' नाम कहि अर्थ-चित्र सु बताय ॥२४०॥

यथा—

सवैया

सोवत जागत है, तन भूषन धारत खेलत सार रचै कै।
प्रात लों आवत जात विकार, "बिहार" रचैं नित रैनि बितै कै॥
यों खिझि क्रूर दुवारक द्वारहिं जात निवारत दंडनि लै कैं,
दीन दुनी में गुनी इमि लच्छिकै लच्छि तू रच्छि दया-हग दैकै॥२४१॥

समाधि अलंकार

दोहा

सधतु काज जहँ सुकर ह्वै, अकस्मात तहँ और।
साधतु बात सहाय की कहि 'समाधि' तिहिं ठौर ॥२४२॥

यथा—

सवैया

खोलै निचोल न बोलै "कुमार" क्यों आदर बोल हिये रिस तीरे।
मानी न सीख सयानी सखीकी, लखी नहिं चातक कोकिल भीरे॥

प्रीतम पायँ पर्‌योई चह्‌यौ न नहीं हसि, प्यारी कह्यौ पिय नीरे।
तौलगि सीरो समीरो बह्यो, न रह्यो बरज्यो गरज्यो घन धीरे॥२४३॥

प्रत्यनीकालंकार

दोहा

प्रबल शत्रु के पच्छ में जहाँ पराक्रम लेखि।
अर्थ-चित्र तहँ कहत हैं 'प्रत्यनीक' सुविसेखि॥२४४॥

यथा—

मो सरूप जिहि जीतियौ ताहि धरै हिय वाम।
इहि वैरहिं पिय तुव त्रियहिं हनत वधिक यह काम॥२४५॥

इहाँ शत्रु-पच्छ साच्छात् है, कहूँ परम्परा तें है :—

यथा—

सवैया

राम के पानि "कुमार" कहै करवाल कराल लसै रन कासैं।
याही हनै घनै कंत महीपति, संगर-रंग में लेत उसासैं॥
कज्जल याको धरै रँग स्याम, यौं लेखि दरीनि दुरी हैं निरासैं।
वैरि-वधू धरि वैर यहै दृग-अंजन आँसुनि धोए विनासैं॥२४६॥

काव्यार्थापत्ति अलंकार

दोहा

कहा अर्थ कहि साधिये काज सुकर जहँ और।
'अर्थापत्ति' सुकाव्य को कहत सुकवि-सिरमौर॥२४७॥

यथा—

सवैया

नीर सों भीजिगो सूछम चीर है, गातनि कांति अनूपम सारी।
नंद "कुमार" निहारत ही छवि, मोह छके उर ढाँकि हहा री॥
जे उर आपनों भेदि कढ़े तुव जोर कठोर उरोज हैं प्यारी!
औरनि के उर-भेदत में कहि पाई कहा? इनि नेक दया री!॥२४८॥

काव्यलिङ्ग अलंकार

दोहा

अर्थ-समर्थन जोग्य जो कहि समर्थिये हेत।
'काव्यलिंग' भूषन रहाँ, मानत सुमति सचेत॥ २४९॥

यथा—

सवैया

प्यार बढ़ावत पीर न पावत, कैसें कहावत? प्रान-पियारे।
नैकु तिहारे निहारे "कुमार"! सखी सब हैं सुधि-सार बिसारे॥
बैन बजावत, चैन भुलावत, नैन चलावत बान बिसारे।
देखत हौ किधौं देत अहो? विष, देखे अनौखे हौ देखनहारे॥२५०॥

इहाँ जो मोह-दशा समर्थनीय है, सो "बिसारे, विषदेत" यह हेतु कहि समर्थन कियो।

अर्थान्तरन्यास अलंकार

दोहा

जहँ सामान्य समर्थिये कहि विशेष को न्यास।
कै विशेष सामान्य सों, सो 'अर्थान्तरन्यास'॥ २५१॥

(१) प्रथम (सामान्य-समर्थन विशेष) यथा—

सवैया

जे लघु हैं तिन नीचनि सों अति ऊँचनि की सधै कैसे निकाई ?
काज बड़ेनि के साधनहार "कुमार" बड़ेई हैं, जानें बड़ाई ॥
स्यार, ससा, मृग, स्वान हजार जुरैं, सब विक्रम जानौ वृथाई ।
कीच की आपति बीच परे गजराजनि कों गजराज सहाई ॥२५२॥

(२) द्वितीय (विशेष-समर्थन सामान्य) यथा—

दोहा

तेरे दीरघ नैन बसि, अंजन मंजु सुहाय ।
लघु मलिनौ सँग बड़िनि के कांति लहै अधिकाय ॥ २५३ ॥

इसमें साधर्म्म तें समर्थन है ।

वैधर्म्य तें समर्थन, यथा—

दोहा

सिंधु-बंधु में लघु तजे, ते गिरि अब गिरि-राज ।
विपति बड़े ही सहत हैं, लहत बड़िनि के काज ॥ २५४ ॥

विकस्वरालंकार

दोहा

कहि विसेप सामान्य कों, फिरि विसेष जिहि ठाम ।
अर्थ-चित्र मानत तहाँ, सुकवि 'विकस्वर' नाम ॥ २५५ ॥

यथा—

सवैया

मानसरोवर-हंसनि में बसै तोहि अहे बक ! हंस बखानै ।
सार विसारन कों निरधार "कुमार" कहै कहा ? जाने अयानै ॥

होत बड़ौ सब सँग बड़ेनि के, थान बड़े को बड़ाई निदानै।
राजनिके लखि काननि काँचके-मौतिनकौं,तिनि साँचु न मानैं२५६॥

प्रौढोक्ति अलंकार

दोहा

जहां हेतु उतकर्ष लहि काजहिं को उतकर्ष।
अर्थ-चित्र 'प्रौढोक्ति' तहँ मानत सुमति-प्रकर्ष ॥२५७॥

यथा—

सुंदर केस सुवेस है, जमुना सलिल-सिवाल।
अधर सधर रँग सरसुती, विद्रुम बेलि-प्रवाल ॥ २५८॥

संभावनालंकार

दोहा

यौं जो कहि संभावि कछु तहँ 'सँभावन' ठानि।

यथा—

'विधि वियोग दैहै' यहै जो हौं जानौ जाय।
तौ हर लौं अरधंग कै राखौं तियहिं मिलाय ॥ २५९॥

मिथ्याध्यवसित अलंकार

मिथ्या ही ठहराव सब 'मिथ्याध्यवसित' मानि ॥ २६०॥

यथा—

सवैया

तोही सों प्रेम "कुमार" सदा, तिय के जिय को यह नेम बिसेखै।
जोवन, रूप, सुभाव, गुमान सों प्यारी ! न तू उत सूधेई देखै॥

ताहि कहै बस आन वधू के, सु तू बिन भींतिहि चित्र उलेखै।
आँखिनि मूँदि अहे दिसि ग्यारहीं,मावसि को ससि पूरन पेखै२६१॥

ललितालंकार

दोहा

'ललित' कह्यौ मधि प्रस्तुतहिं वर्न्य अर्थ की छाँह।

यथा—

देखि दुर्‌यौ सहजहिं घननि-बीच दिवस को नाँह।
नाहक ही पट तानि कत कीन्हौ चाहति छाँह ?॥ २६२॥

प्रस्तुतांकुर में प्रकट बताइओ है। इहाँ प्रतिबिम्बभाव ते कहिबौ है, यह भेद है।

इहाँ जो 'दुरायो चाहति' सो सहज ही भयौ, यह वाक्यार्थ-प्रतिबिम्ब है।

यथाच—

दोहा

दिसि दिसि निसि के कौल की दसा तियनि मुख देत।
भले भये पिय मौनपन कुमुद सुमुद के हेत॥ २६३॥

इहाँ "ज्यों औरनि तजि आये त्यों मोहि तजिहौ" यह अर्थ प्रतिबिम्बित है।

प्रहर्षणालंकार

बिना जतन चाह्यौ अरथ मिलै 'प्रहर्षन' माँह॥ २६४॥

यथा—

सवैया

मीत के भौन तें प्रीतम काहू "कुमार" चलै सुनि प्रीति पहेली।
आवत है निसि में निज धाम कों, जामक बीते अँध्यारी ज्यों मेली॥
ताहि गली में नवेली सहेली सों, सीखति ही अभिसार अकेली।
मैन मिली,बस नैन मिली,रस-वैन मिला,मिलि कीन्ही है केली२६५॥

प्रहर्षण-भेद

दोहा

अधिक सिद्धि के, जतनमधि सिद्धि भेद द्वै सुद्ध।

(१) प्रथम (अधिक सिद्धि) यथा—

श्यौ पंथ-श्रम सों पथिक, चाहै विजन-समीर।
ह्यौ तहाँ दच्छिन पवन,सुरभि,सुखद, हिम धीर॥ २६६॥

(२) द्वितीय (जतनवीचिही सिद्धि) यथा—

जेहि अंजन, निधि मिलति, वह खनत औषधी-मूल।
सोई निधि तामधि मिली, विधि-रचना अनुकूल ॥२६७॥

विषादन अलंकार

कह्यौ 'विषादन', चाह तें जहँ लहि वात विरुद्ध ॥२६८॥

यथा—

गई सरोवर लेन हौं फूले कौल प्रभात।
जात ढिगहिं मुदिजात सो यह दुख कह्यौ न जात ॥२६९॥

उल्लासालंकार

दोहा

गुन-दोषहि तें और के जहँ गुन - दोष-प्रकाश।
दोषहि तें गुन, गुनहि तें दोष, सु कहि 'उल्लास'॥२७०॥

(१) अन्य के गुण तें अन्य को गुण, यथा—

दोहा

सोनजुही पिय कर गुही पहिराई उर माल।
कुच-कोरक प्रीतम परसि, धन्य सराहति बाल॥ २७१॥

(२) अन्य के दोष तें अन्य को दोष, यथा—

सवैया

चंदन मीत! अभीत रहै कहा? तू मलयाचल-वास बिसारै।
तेरौ "कुमार" तहाँ न निवास बनै, जहँ तो गुन नाहिं बिचारै॥
है इतमें अति क्रूर कुवंस जे, वंस दवागि लगाइ सँघारै।
एक कहा? अपनौ कुल पै कुल ये खन में बन जारि उजारै॥२७२॥

(४) अन्य के दोष तें अन्य को गुण, यथा—

दोहा

प्रीतम पाइ पर्‌यौ, तरुनि धर्‌यौ रोष हिय हाल।
हानि जानि निज लाल यह, तिय-हिय भूषन लाल॥२७३॥

(३) अन्य के गुण तें अन्य को दोष, यथा—

दोहा

कुसल यहै, गज-मुकत जो बिंध्यौ न गुंजनि-साथ।
बिगुन भयौ जिनि दुख धरै, पर्‌यौ भील-तिय हाथ॥२७४॥

अवज्ञालंकार

दोहा

जहाँ दोष गुन और के दोष न गुन नहिं
तहाँ 'अवज्ञा' नाम को चित्र गन्यौ कवि-गोत ॥ २७५ ॥

(१) अन्य के गुण तें अन्य के गुण को अभाव। यथा—

सवैया

जाके सुनै गुन चातुर रीझत, जानत न्यान सुधा तिहि फीकी।
सोई अहो! रस की कविता सुनि, बूझै अबूझनि रीझनि जी की ॥
होय रिझावनहार "कुमार" मनोरम नागर के हिय ही की।
नैन-विहीन कों नीकी न लागति, बंक विलोकनि है तरुनी की ॥२७६॥

(२) अन्य के दोष तें अन्य के दोष को अभाव, यथा—

दोहा

ईसुर ह्वै वाहन वरद, भख विष कीन्हौ जानि।
तो दिगदंतिन की कहा ? कहा ? सुधा की हानि ॥ २७७ ॥

अनुज्ञालंकार

दोहा

जानि लाभ गुन दोष की चाह 'अनुज्ञा' जानि।

यथा—

इंद्र साहिबी चाह नहिं, द्वारप-दंडनि - त्रास।
होय पिसाच निसाचरौ वर है हर ! तुव पास ॥ २७८ ॥

यथाच—

भली न संपति, राज हरि ! भली विपति, वन-वास ।
जहाँ सदा सुधि रावरी, नित चित चरननि पास ॥ २७६ ॥

लेशालंकार

दोषै गुन, गुन दोष जहँ, तहाँ 'लेश' पहिचानि॥ २८० ॥

(१) दोष-गुन, यथा—

दुखित सुजन सुभ आचरत, धरि विचार सब ठौर ।
सुखित भलै जड सत असत, करत निडर निज दौर ॥२८१॥

(२) गुन-दोप, यथा—

रीझत ये नहिं ग्राम-जन, जुवति धरै तुव नाँउ ।
बंक विलोकि न बाल ! तू बसि अजानजन-गाँउ ॥२८२॥

मुद्रालंकार

दोहा

प्रकृत अर्थ में सूचिये बात, सु'मुद्रा' नाम ।

छन्द

अली कहुँ कुंज-गली धरि काम ।
मिली नँद-नंदन सों सखि वाम ॥
लसै उलटौ पटलौं अभिराम ।
महा छवि-धाम जु मोतिय दाम ॥ २८३ ॥

इहाँ चार जगण रूप मौक्तिकदाम छन्द-नाम सूचित है। ऐसे नाटकादि प्रस्तावना में मुद्रा नाम है।

रत्नावलि अलंकार

प्रकृत अर्थ क्रम-न्यास जुत, 'रतनावलि' इहि ठाम ॥२८४॥

यथा—

सवैया

देह भई अचला, जल-धार अधार बिलोके विलोचन मीनौ ।
गात गुलाब-पटीर उसीर, लगावत तेज को पुंज है कीनौ ॥
जान्यौ "कुमार" समीर उसास, अकास निसून हिये लखि लीनौ ।
पंचहु भूतनि को परपंच, वियोग विरंचि तिया-तन दीनौ ॥२८५॥

इहाँ क्रम सों न्यास है, तुल्ययोगिता भेद में क्रम नाहीं होत ।

तद्गुणालंकार

दोहा

निज रंगहिं तजि आन रँग, गहै सु 'तद्गुन' लेखि ।

यथा—

दोहा

घरी घरी निरखति कहा ? लगी पीक जिय जानि ।
बेसर-मुकता अधर-रँगि धरत लाल रंग मानि ॥ २८६ ॥

पूर्वरूपालङ्कार

निज गुन प्रापति फेरि जहँ 'पूर्व-रूप' जु बिसेखि ॥ २८७ ॥

(१) प्रथम भेद, यथा—

सवैया

धूरि कपूर की पूरि कै अंजन मंजु दियौ, पिय ही अनुरागै।
स्याम की लोइनि की पुतरी बरुनी-रँग स्याम भयो छवि जागै॥
आरस सों मलयागर राग मिलाय "कुमार"; रच्यौ रस पागै॥
केसरि को अंग-राग यहै, निज राग भयौ तिय-अंगनि लागै॥२८८॥

(२) द्वितीय भेद।

दोहा

विकृतिहि में पूरव तरह, भेद दूसरो ठानि।

यथा—

बढ़ो कियो दीपक तरुनि, तुरत सुरत में लाजि।
अंग-अंग भूषन-रतन रहे दीप-छवि छाजि॥ २८९॥

यथाच—

द्वारनि गज, खड्गी अगन, मनिधर, कंचुकि गेह।
सूनेहू अरि-मंदिरनि बढ़े राज-थिति एह॥ २९०॥

अतद्गुणालङ्कार

संगति को गुन नहिं गहै, यहै 'अतद्गुन' मानि॥ २९१॥

यथा—

सवैया

मान-नसीली, रसीली अहै अभिमान गहै, अनुखानी सयानी।
त्यों-त्यों "कुमार" कहै पिय के जिय प्यारी लगै अतिप्रेम-पगानी॥

नैसुक ज्यों रिस की कटुता गहै, तेरे सलोने सुभाय की बानी।
त्यों अधरा मधुराई मिले ही सुधारस तें सरसानी सुहानी॥२६२॥

अनुगुणालङ्कार

दोहा

सिद्धि गुननि को उतकरष, अति-अति 'अनुगुन' मानि।

यथा—

बानर अरु बीछू डस्यौ, छ्वै कि बाछकौ अंग।
भूत गह्यौ, मधु-मद लह्यौ, कहा ? कहौं गति-रंग॥२६३॥

मीलितालङ्कार -

सदृश द्रव्य में मिलि न जहँ भेद 'सुमीलित' मानि॥२६४॥

यथा—

भूषन जानि अहे धरति, स्रौन असित जलजात।
नैन बड़ाई मिलि रहे, लहे न न्यारे जात॥ २६५॥

सामान्यालङ्कार—

दोहा

सदृस मिले गुन सों जहाँ, नहिं विशेष लहि जात।
अर्थ-चित्र 'सामान्य' तहँ, कविता रचत सुहात॥ २६६॥

यथा—

शेष अशेष फनी भये, राम-सुजस-परगास।
चंद्र परै पहिचानि नहिं, किय सत चंद अकास॥ २६७॥

उन्मीलित तथा विशेष अलङ्कार

दोहा

मीलित में, सामान्य में भेद विसेषक मानि।
'उन्मीलित' भूषन कह्यौ, तथा 'विशेषक' जानि ॥२६८॥

उन्मीलित, यथा—

सवैया

रैनि दिना परताप बढ़ावत, बाढ़त यों पर-ताप तिहारे।
नाँम सुनै ही अगार अगार तजै, अरि दुग्ग-दरीनि विहारे॥
वैरि वधू कमलाऽऽकर दौरि दुरीं। पिय खोजत द्यौसनि हारे।
होत ही चंद उदोत तहाँ, अरविन्दनि में मुख-कंज निहारे॥२६६॥

विशेष, यथा—

दोहा

वढ़्यौ, वरयौ, सँग काक के रँग सुभाय सों लीन।
दै सुर मधुर, वसंत ही कोकिल जाहिर कीन॥ ३००॥

गूढोत्तरालङ्कार

दोहा

वचन-रचन साकूत जहँ, तहँ 'गूढोत्तर' धारि।

यथा—

थक्यौ पंथ ग्रीपम पथिक, सघन वेतसी-तीर।
मंजु कुंज बसि, परसि हौं सीतल सुखद समीर॥ ३०१॥

चित्रालङ्कार

दोहा

उत्तर प्रश्न जु एक कै भिन्न, सु 'चित्र' विचारि॥ ३०२॥

(१) प्रथम (एक प्रश्न-उत्तर), यथा—

मोहत कामै सबनि कों, मनु यह कहि निरधारि।
मुनि तपसी जप-सील कों को है? वैरि-विचार ॥३०३॥

(२) द्वितीय (भिन्न प्रश्न-उत्तर), यथा—

तिमिर मिटावत को कहा? प्रजनि दुखद, अविवेक।
कौलि-मित्र कहि दिन करैं, उत्तर एक अनेक ॥ ३०४ ॥

और भेद 'विदग्ध-मुखमण्डन' प्रभृति में देखिये।

सूक्ष्मालङ्कार

दोहा

जानि और को भाव निज-चेष्टा साभिप्राय।
अर्थ-चित्र 'सूछम' तहाँ मानत कवि-समुदाय ॥ ३०५ ॥

यथा—

सवैया

वेनु बजावत माधुरी-तान, 'कुमार' कहूँ निकस्यौ हरि भोरहिं।
गावत गीत, रिझावत मीत, सकेत को हेत कह्यौ, चित-चोरहिं॥
ठाडी झरोखे तिया मुसक्याय, रिझाय, चली लखि नैन के कोरहिं।
कंधसखी के धरै भुज-बंध, कह्यौ चलि खेलिये बाग के ओरहिं ॥३०६॥

इहाँ पूर्वार्द्ध में इंगित, उत्तरार्द्ध में शरीर-चेष्टा और इंगित है।

पिहितालङ्कार

दोहा

गूढ और की बात लहि रचिये बात जु गूढ।
अर्थ-चित्र तहँ 'पिहित' कहि बरनै सुमति-विरूढ ॥ ३०७ ॥

यथा—

सवैया

लागि रही स्रम-नीर वही, तरुनी के कपोल सिंदूर-ललाई ।
पीतम-संग पिया रति-रंग रमी, त्रिपरीत सुरात है पाई ॥
जानै न आन सखी, इहि हेत 'कुमार' जताइ रची चतुराई ।
भाँतिकृपान की, पानि-सरोज में ठानिसरोज-मुखीकोंदिखाई॥३०८॥

गूढोक्ति-अलङ्कार

दोहा

वान और उद्देसि कैं औरहि सों कहि जाय ।
तहाँ कहत 'गूढोक्ति' है, अर्थ-चित्र ठहराय ॥ ३०९ ॥

यथा—

दिन-नायक कहुँ दूरि गो कलानाथ निसि पाय ।
भैंटि भलै सियरे करनि, हियरे ताप बुझाय ॥ ३१० ॥

विवृतोक्ति-अलङ्कार

दोहा

गूढ उकति कवि प्रगट कहि तहँ 'विवृतोक्ति' गनाय ।

यथा—

'रैनि रमै बँधिहै अली, कौल-कली-रस छाकि' ।
तिया कहति यों मीत सों, गृह-जन आवत ताकि ॥३११॥

युक्ति-अलङ्कार

दोहा

'युक्ति' कहौं वंचन-क्रिया, पर तें मरम दुराय ॥ ३१२ ॥

यथा—

प्रात सखिनि में राति-रति-बात कहत, सुनि बाल ।
दाडिम-छल सुक-चंचु बिच रंचक दिय मनि लाल ॥३१३॥

यथाच—

सवैया

कानन-कुंज तें कान परी बसुरी-सुर माधुरी तान सचाई ।
प्यारी के अंग 'कुमार' रहे थकि, स्वेद रुमंच की पाँति खचाई ॥
सात्विक भाव दुरायो चह्यो, कह्यो हेली सों 'आतप-ताप तचाई' ।
गातनि सींचि गुलाब के वारिसों वारिज-पातसोंवात रचाई ॥३१४॥

लोकोक्ति-अलङ्कार

दोहा

लोक विदित कछु उक्ति जो, सोई कहि 'लोकोक्ति' ।

यथा—

प्यारी अनियारे नयन अंजन-रेख रचाय ।
देत बाउरी ! बाउरे-हाथ हथ्यार गहाय ॥ ३१५ ॥

छेकोक्ति-अलङ्कार

दोहा

अर्थान्तर-गर्भित यहै लोक-उक्ति छेकोक्ति ॥ ३१६ ॥

यथा—

कहति कहा अभिषंग इत लखि पिय के बहु रंग ।
हेली ! चरन भुजंग के, जानै वहै भुजंग ॥ ३१७ ॥

वक्रोक्ति-अलङ्कार—

दोहा

श्लेषहि तें, कै काकु तें अर्थ कल्पिये और।
अर्थ-चित्र 'वक्रोक्ति' तहँ मानत कवि-सिरमौर ॥३१८॥

(१) श्लेष वक्रोक्ति, यथा—

को हो जू? हम गोप हैं, ल्यावो गाय चराय।
हरि हैं जू, हरि हो कहा? लीन्हे चीर चुराय ॥ ३१९ ॥

(२) एसे ही काकु तें जानौ।

स्वभावोक्ति-अलंकार

दोहा

जातिहि प्रभृति स्वभाव कहि 'स्वभावोक्ति' में अर्थ ॥

यथा—

लखि अनलखि कै हरिहिं तिय, उर दिखाइ अँगिराति।
सैन दई, सखि मीडि कर, मुख धरि अँगुरि लजाति ॥३२०॥

यथाच—

सवैया

रावन मूढ! अरे सिर नाय अजौं रघुनायक-पायँ दुहूँ पर।
वानर घेरे फिरैं चहुँघा, नहिं फेरे फिरे सब लंक-चमू पर ॥
दै किलकारिनि, तारिनि, नारिनि, देखि चिरावत, धावत भू पर।
आवत तू रन, कूँदि हो बैठत, क्रूर लँगूर कँगूरनि ऊपर ॥३२१॥

भाविकालङ्कार

दोहा

'भाविक' तहँ वर्तत, जहाँ भूत, भविष्यत, अर्थ ।। ३२२ ।।

(१) भूतार्थ की वर्तमानता, यथा—

मिल्यौ त दिन बिसरै न पिय हियहिं बसत बहु भाँति ।
लैन लग्यौ घनसार-सों घन-सरूप, घन-कांति ।।३२३।।

(२) भविष्यत की वर्तमानता, यथा—

सुन्यौ सखी-मुख गौन-दिन-मंगल गीत रसाल ।
पियहिं गही सी थकि रही, डीठि सजल लहि बाल ।।३२४।।

उदात्तालङ्कार

दोहा

अधिक रिद्धि-बर्नन जहाँ, कहि 'उदात्त' तिहिं ठौर ।
बड़ी बात उपलच्छनौ कहि उदात्त यह और ।। ३२५ ।।

(१) प्रथम, यथा—

भीखहुँ को दुज दुखित लखि, दिय संपति, हरि हेरि ।
मनि मुकता गृह जासु तिय देहि, भिखारिनि टेरि ।।३२६।।

(२) द्वितीय, यथा—

कवित्त

बार एक बीसक 'कुमार' कहै वैरिन के
सीस काटि कठिन कुठार सों न हारि गौ ।
राम दुजराज तात-हेत याही कुरु-खेत,
लोहू-ताल तर्पन के बैरहिं बिसारि गौ ।।

भाविकालङ्कार

दोहा

'भाविक' तहँ बर्तत, जहाँ भूत, भविष्यत, अर्थ।। ३२२ ।।

(१) भूतार्थ की वर्तमानता, यथा—

मिल्यौ त दिन बिसरै न पिय हियहिं बसत बहु भाँति ।
लैन लग्यौ घनसार-सों घन-सरूप, घन-कांति ।।३२३।।

(२) भविष्यत की वर्तमानता, यथा—

सुन्यौ सखी-मुख गौन-दिन-मंगल गीत रसाल ।
पियहिं गही सी थकि रही, डीठि सजल लहि बाल ।।३२४।।

उदात्तालङ्कार

दोहा

अधिक रिद्धि-बर्नन जहाँ, कहि 'उदात्त' तिहिं ठौर ।
बड़ी बात उपलच्छनौ कहि उदात्त यह और ।। ३२५ ।।

(१) प्रथम, यथा—

भीखहुँ को दुज दुखित लखि, दिय संपति, हरि हेरि ।
मनि मुकता गृह जासु तिय देहि, भिखारिनि टेरि ।।३२६।।

(२) द्वितीय, यथा—

कवित्त

बार एक बीसक 'कुमार' कहै वैरिन के
सीस काटि कठिन कुठार सों न हारि गौ ।
राम दुजराज तात-हेत याही कुरु-खेत,
लोहू-ताल तर्पन के बैरहिं त्रिसारि गौ ।।

हेतु-अलङ्कार—

दोहा

हेतवंत को संग कहि, 'हेतु' सुहेतु विचारि।
भूषन इमि सब एकसै बरनौ हैं निरधारि ॥ २३४ ॥

यथा—

उर-उछाह सब सुजन के, दुर्जन के उर-दाह।
मुनि-मन आनँद गाह नित, एक तुमहिं रघुनाह ! ॥२३५॥

यथाच—

नेह-लता उलहति हिये, रस बरसनि दृग हाल।
तन मन फूलति ब्रजतियनि,तुव चितौनि नँद-लाल!॥२३६॥

दोहा

प्राचीनै अरु आधुनिक कविता मत-निरधारि।
अर्थ-चित्र इमि एकसै बरनै इहाँ विचारि ॥२३७॥

अथ अष्टप्रमाण-अलङ्कार

(१) प्रत्यक्ष प्रमाण, यथा—

दोहा

हार सुधारि, सिंगारि तन, मलय-सार रचि अंग।
चिह्न दुरावति दुरत क्यों ! लोचन रोचन-रंग ॥२३८॥

यथा—

हरि के लोचन हरि सिरह रतन सुधा रस-कन्द ।
करत कुमुद को समुद इमि कहै कलाधर चंद ॥ ३३० ॥

प्रतिषेधालङ्कार

दोहा

अनुकृति सिद्धि निषेध की, तँह 'प्रतिषेधै' होइ ॥

यथा—

सवैया

हौं बरजी जनि छैल छबीले के देखन को चढ़ि झाकिनि झाँकौ ।
बूझत बात दुरावति ही, कहि कैसो है कान्ह,'कुमार'कहाँ कौ ॥
बाउरी ! क्यों बचिहै रचि प्रीति, डरै कहा ? घैर सुनै चहुँघा कौ ।
खेलन ही यह संग सहेली के हेली सनेह को रंग है बाँकौ ॥ ३३१ ॥

इहाँ नेह में 'खेल नहीं' यह प्रसिद्ध निषेध को अनुकरण है ।

विधि-अलङ्कार

दोहा

सिद्ध बात ही कों बहुरि करि विधान, 'विधि' सोइ ॥३३२॥

यथा—

असम-कुसुम मधु-भर सुरभि दीन्ही दल दुति लाल ।
अवनि वाजि रितुराज तुहिं कियौ रसाल रसाल ॥ ३३३ ॥

हेतु-अलङ्कार—

दोहा

हेतवंत को संग कहि, 'हेतु' सुहेतु विचारि।
भूषन इमि सब एकसे बरनौ हैं निरधारि ॥ २३४ ॥

यथा—

उर-उछाह सब सुजन के, दुर्जन के उर-दाह।
मुनि-मन आनँद गाह नित, एक तुमहिं रघुनाह ! ॥२३५॥

यथाच—

नेह-लता उलहति हिये, रस बरसनि दृग हाल।
तन मन फूलति ब्रजतियनि, तुव चितौनि नँद-लाल! ॥२३६॥

दोहा

प्राचीनै अरु आधुनिक कविता मत-निरधारि।
अर्थ-चित्र इमि एकसे बरनै इहाँ विचारि ॥२३७॥



अथ अष्टप्रमाण-अलङ्कार

(१) प्रत्यक्ष प्रमाण, यथा—

दोहा

हार सुधारि, सिंगारि तन, मलय-सार रचि अंग।
चिह्न दुरावति दुरत क्यों ? लोचन रोचन-रंग ॥२३८॥

यथा—

कवित्त

सुकवि 'कुमार' भोर ही तें कर आरसी लै,
साजती सिंगार बार बिसती सुबास हौ।
बातें मन-भावती बतावती न सखी हू सों,
राति रति-रंग पति-संग परिहास हौ॥
मृदु मुसक्याती प्रेमराती रिस ठानती हौ,
आनती हौ मिस-बस जानती बिलास हौ।
प्रीति-मदमाती, न समाती फूलि अंगनि हौ,
काहे को लजाती, क्यों न जाती पिय-पास हौ? ॥१६॥

दोहा

वक्ता अर्थ प्रबंध-बस नायक उचित प्रमानि।
वृत्ति वर्न-रचना कहूँ गुन-विरुद्ध पहिचानि॥ १७॥

भीम प्रभृति नायक में उद्धत रचना है। अभिनय में, पुराण में, रौद्रादि हू में लघु समास है। आख्यायिका प्रबंध में, शृङ्गारादि में दीर्घ समास है।

श्लेषादिक दस गुण, शब्द, अर्थ के न्यारे गनै तें, इनही गुननि तें अन्तर्गत मानिये।

इति श्रीहरिवल्लभ भट्टात्मज कवि कुमारमणिकृते
रसिक रसाले गुण कथनं नाम
नवमोल्लासः ॥ ९॥

दशम उल्लास



अथ काव्य-दोष

दोहा

मुख्य अर्थ के बोध में करै विघात सुदोष।
गन्यौ मुख्य रस ताऽँग रु शब्द अर्थ-परिपोष ॥ १ ॥
तातें दूषन तीन विध शब्द, अर्थ, रस माँह।
शब्द अर्थगत नीरसहु कहूँ दोष निरवाह ॥ २ ॥
शब्द फिरै जो फिरत सो, शब्द-दोष निरधारि।
शब्द फिरै हूँ थिर रहै अर्थ-दोष सु विचारि ॥ ३ ॥
पदगत त्यों ही वाक्यगत, शब्द-दोष द्वै भेद।
पद-अंसहु में कहुँ गनत, नित्य अनित्य विभेद ॥ ४ ॥

पदगत दोष

दोहा

श्रुतिकटु१, औ च्युतसंसकृत२, अप्रयुक्त३, असमर्थ४।
निहितार्थ५, अनुचितार्थ६, पुनि मानत और निरर्थ७ ॥ ५ ॥
अवाचकौ८, अश्लील९, पुनि भनि संदिग्ध१०, विशिष्ट।
अप्रतीत११, अरु ग्राम्य१२, गनि नेयार्थक१३, संश्लिष्ट१४॥६॥
अविमृष्टविधेयांश१५, त्यों गनि विरुद्ध-मतिकारि१६।
सबै दोष पद के कहे, गनि बारह अरु चारि ॥ ७ ॥

(१) श्रुतिकटु

दोहा

लगै दुसह स्रौननि सुनै, 'श्रुतिकटु' दोष सुजानि।

यथा—

सवैया

उच्च 'निकेत चढ़ी वर बाल सुभाल तिलक्क लसै अलबेली।
गोरी-सी देह सनेहसनी मनु है कल कंचन की चल वेली॥
ऐंड़िन की उपमा उपजी यों भरी मनौं जात्रक के जलबेली।
जादिन तें निरखी "जगदीस", लगी तन तादिन तें तलबेली॥८॥

इहाँ उच्च, तिलक्क, श्रुतिकटु हैं। वीर-रसादि में दोष नाहीं, अनित्य है तातें।

(२) च्युतसंस्कृत

सधतु न जो व्याकरन में 'च्युतसंस्कृत' प्रमानि॥ ६॥

यह दोष संस्कृत ही में है। यथा—

"तत्र हंसाः प्रतस्थुः," "अध्येता तदगार एव वसते"

इहाँ परस्मैपद आत्मनेनपद च्युतसंस्कृत है।

"यः पारदं स्थिरयितु क्षमते करेण"

इहाँ 'स्थापयितु' ऐसो चाहिये।

"तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्"

इहाँ पातयामास ऐसो चाहिये।

(३) अप्रयुक्त

दोहा

सच्यौ सास्त्र तें होत पै, न प्रयोगें कवि जाहि।
'अप्रयुक्त' दूषन कह्यौ कवि-रीतिहिं नहिं चाहि ॥ १० ॥

यथा—

"देखत उदधिजात देखि-देखि निज गात।"

इहाँ 'उदधि जात' है।

"केसव देव अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी।"

इहाँ 'अदेव' है।

"केसवदास अनुत्तम जो नर संतत स्वारथ-संजुत जो है।"

इहाँ अनुत्तम उत्तम—भिन्न में अप्रयुक्त है।

(४) असमर्थ

दोहा

है प्रयोग कहुँ अर्थ जिहि, सुप्रयोगौ तिहिं अर्थ।
बोध-समर्थन शब्द है सो दूषन 'असमर्थ' ॥ ११ ॥

यथा—

वृथा हनतु तीरथ कहा ? सजु भजु भजन समाज।
जग जाहिर जान्यौ हिये निज जन-भुज जदुराज ॥ १२ ॥

इहाँ "हन हिंसागत्योः" "भुज पालनाभ्यवहारयोः" इहि धातु को प्रघनादि में गमन अर्थ है। भूभुजादि में पालन अर्थ है, सो गमन अर्थ में पालन अर्थ में असमर्थ है। (यह) नित्य दोष है।

(५) निहतार्थ

दोहा

हनिये अर्थ प्रसिद्ध सों अप्रसिद्ध जहँ अर्थ।
'निहतार्थक' दूषन तहाँ मानत सुकवि-समर्थ ॥ १३ ॥

यथा—

रूसि रही निसि में सही, बाल मनाई लाल।
लगत पगनि लागी लसति रकत-रेख यह भाल ॥ १४ ॥

इहाँ "रकत"="लाल" अर्थ है। सो लोहू अर्थ सों निहत है। ऐसे "वदन विभाकर लसतु" इहाँ शोभाकर अर्थ सूर्य सों निहत है।

"खेलन में प्यारे कछू कर्‌यौ परिहास ताहि
सुनत ही भामिनी के लोचन ललाइगे।"

इहाँ 'लाल भये' अर्थ में 'ललाइगे' यह निहतार्थ है।

(६) अनुचितार्थ। यथा—

दोहा

पावत पद उत्तम तुरत, तजत सकल जग-सोक।
जुद्ध जग्य में पसु भए, बसत बीर सुर-लोक ॥ १५ ॥

इहाँ 'पशु' पद में कातरता अनुचितार्थ है। ऐसे—

सवैया

गज घट्ट सँघट्ट जुर्‌यौ अरि को दलसिंह दले लखि सो हटक्यौ।
करे कोप करेरी कमान कसीस तें कूकटा साँफ तें यों सटक्यौ ॥
लग्यो तीर महावत के उर सों अधकों गिरिकै कलदाँ अटक्यौ।
मनु बाँधि कै पायँ पहार के सृंग तें घूरत धूम जती लटक्यौ ॥१६॥

इहाँ 'सटक्यौ' यह अनुचितार्थ है, असावधानता को कहत हैं।

(७) निरर्थ

जैसें 'च हि तु' 'तथा' प्रभृति निपात वृथा होयँ। यथा—

"वचन की चातुरी देहु तथा तुम ग्यान।"

इहाँ 'तथा' निरर्थक है।

(८) अवाचक

दोहा

ताही धर्म विशिष्ट ह्वै शब्द न वाचक होय।
तहाँ 'अवाचक' दोप कों मानत पण्डित लोय॥ १७॥

यथा—

"पावत जाको पुरान न पार, न वेद-उचार सों हाथ अरै री।
सो हरि तेरेई भेंट के काजहिं मेरे अरी! नित पाँय परै री॥"

इहाँ "हाथ चढै" एसे अर्थ में "हाथ अरै" यह अवाचक है।

एसे ही—

"परी वैनी दुवौं कुच-बीच बिराजति उपम एक यहै निवह्यौ।
जनमेजय के जनु जग्य समै दुरि तच्छ सुमेर की संधि रह्यौ॥"

इहाँ 'तत्तक" में 'तच्छ' अवाचक है।

"तन तेरे कंटकित कंट किन लागे हैं?"

इहाँ कंटक में 'कंट' अवाचक है।

"पक्खरे पवंग वर बंधु जे बयारि के"

इहाँ घोड़े (अश्व) में 'पवंग' अवाचक है। (यह) नित्य दोप है।

(९) अश्लील

लज्जा, घृणा, अमंगल-व्यंजक त्रिविध अश्लील है।

(१ लज्जा-व्यंजक) यथा—

"गाढ़े गहे लपटाय नकारहिं बोलत हूँ कछु जीभहिं दावै ।"

इहाँ 'नकार' पद लज्जाव्यंजक है ।

(२ घृणा-व्यंजक) यथा—

"ढीले-से पेच वसीले-से वास रसीले-से नैन है आवत मींचे ।"

इहाँ "वसीले" "रसीले" यह घिनि व्यंजक हैं ।

(३ अमंगल-व्यंजक) यथा—

सवैया

मोहिबो मोहन की गति को गति ही पढ़यौ बैन कहा धौं पढ़ैगी ।
ओप उरोजनि की उपजै, दिन काहि मढ़ै अंगियान मढ़ैगी ॥
नैननि की गति गूढ़ चलाचल 'केसवदास' अकास चढ़ैगी ।
माई ! कहा ? यह माइगी दीपति, जो दिन द्वै इहि भाँति बढ़ैगी ॥१८॥

इहाँ "अकास" चढ़ैगी अमंगल-व्यंजक है । यथाच—

'आपु सितासित रूप चितैं चित स्याम सरीर रँगे रँगरातें ।"

इहाँ 'चितैं' यह अमंगल-व्यंजक है ।

"स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्या"

इत्यादि अमंगलादि-सूचन में दोष नाहीं । अनित्य दोष है ।

(१०) संदिग्ध

दोहा

उभय अर्थ संदेहकर पद 'संदिग्ध' गनाय ।

यथा—

अतनु-पीर तें तन तपन होत न होत विलम्ब।
लाल! तिहारी आस ही हाल भयौ अवलम्ब ॥ १९ ॥

इहाँ "आशा छुरी है कि चाह" है यह संदिग्ध है।

(११) अप्रतीत

और सास्त्र-परतीत पद, 'अप्रतीत' सु जनाय ॥ २० ॥

यथा—

हनत कुंभ कुंभीन के छतज छीर छविदार।
नभ-मधि अध ऊरध उवे मानहुँ रुधिर हजार ॥ २१ ॥

इहाँ "दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले" इत्यादि ज्योतिष शास्त्र ही में 'रुधिर' मंगल ग्रहवाचक है—काव्य में अप्रतीत है।

(१२) ग्राम्य—

जो पद केवल ग्राम्य जन कहै, वह ग्राम्य दोष है, यथा—

"परै तलवेली तन मन में छबीली राख,
छिति पर छिनक, छिनक पाय खाट में।"

इहाँ 'खाट' पद ग्राम्य है।

"जौ लौं तेरी डीठि न परत नंदलाल तौ लौं,
गरबीली ग्वालिन गवाँरि! गाल मारि लै।"

इहाँ 'गाल' शब्द है। कटि, दाँत इत्यादि (हू) ग्राम्य है।

(१३) नेयार्थ

दोहा

रूढि प्रयोजन बिन जहाँ, लच्छना सु 'नेयार्थ'।

यथा—

सम सुरि कैसे कीजिये मुकर-फलक, जलजात।
चंदहु कों तेरो वदन रचत चपेटापात॥ २२॥

इहाँ 'चपेटापात' में जीतिबो लच्छित है। बिन प्रयोजन नेयार्थ है।

दोहा

नहि अन्हाइ, नहि जाइ घर, चित चिहुर्‌यो तकि तीर।
परसि फुरहुरू लै फिरति, विहँसनि, धसति न नीर॥२३॥

इहाँ 'तीर' पद तीरस्थित मित्र में नेयार्थ है। अनित्य दोष है।

(१४) क्लिष्टपद

'क्लिष्टदोष' जहँ कष्ट सों समुझि परै शब्दार्थ॥ २४॥

यथा—

हरि भूपन परभव-परनि सिर पर धरैं अनूप।
खेलत कान्ह कदम्बतर, दामिनि-सहचर रूप॥ २५॥

इहाँ मोरपच्छ, घनस्वरूप इहि अर्थ में क्लिष्ट पद हैं।
प्रहेलिका में दोष नाहीं।

क्लिष्ट आदि तीन (क्लिष्ट 'अविमृष्ट-विधेयांश' विरुद्ध-मतिकार) समास ही में पद-दोष हैं। न्यारे भये वाक्य-दोष हैं।

(१५) अविमृष्ट-विधेयांश

दोहा

कह्यो चाहिये मुख्य करि वहै गौन कहि जाय।
'अविमृष्टविधेयांश' तहँ पद-दूषन समुझाय॥ २६॥

यथा—

दीपति है निसि द्यौस यह वाकी निसि ही जोति ।
राम ! तिहारी कित्ति सों असम चंद्र-दुति होति ॥ २७ ॥

इहाँ 'न सम होति' ऐसो न्यारे के मुख्य नञ् कहिये । समास भये गौण है । यातें अविमृष्ट-विधेयांश है ।

(१६) विरुद्ध-मतिकारी

दोहा

पद जु और पद-जोग तें रचै विरुद्ध प्रतीति ।
तहँ 'विरुद्ध-मतिकारि' यह मानत दूषन रीति ॥ २८ ॥

यथा—

"काम-कला-रस कामिनि सों विपरीत रची रति पी मन भाये ।"

इहाँ 'काम-कला-रस' यह विरुद्ध-मतिकारि है ।

यथाच—

"आनंद सों मिलि कंत सों, करति गलग्रह नारि ।"

इहाँ 'गलग्रह' है "भवानी-पति" "अकार्य मित्र" इत्यादि मानिये ।

इति पद-गत दोष वर्णन

——❀——

वाक्य-गत दोष

दोहा

च्युतसंस्कृति, असमर्थ, पुनि तथा निरर्थक छाँड़ि ।
कहे जु पद के दोष सब वाक्य माँहि ते माँड़ि ॥ २९ ॥

यथा—

(१) "मानहु जीति के तीनहुँ लोक उलट्टि धरे मनमथ्थ नगारे"

इत्यादि श्रुतिकटु वाक्य हैं।

(२) "किन्नरी नरी निहारि पन्नगी नगी कुमारि।"

इहाँ 'नरी' 'नगी' अप्रयुक्त हैं।

(३) निहतार्थ, यथा—

दोहा

सायक एक सहाय कर जीवनपति पर्यंत।
तुम नृपाल! पालत छमा जीति दुअन बवँत ॥ ३० ॥

इहाँ सायक=खड्ग, जीवनपति=समुद्र, छमा=पृथिवी, ये शब्द प्रसिद्ध वाण, यम, क्षान्ति अर्थ सों निहित हैं।

(४) अनुचितार्थ

नृप कुविन्द गुन वृन्द के पटह रचत दिन राति।
कीरति दिसि दिसि कहत ते लहत न गन जन जाति ॥२१॥

इहाँ 'कुविन्द'=भूपाल 'विस्तारन गुन भाट' यह अर्थ कुरिया प्रभृति बोध तें अनुचितार्थ है।

(५) अवाचक, यथा—

दोहा

प्राची दिसि में देखि के उवत द्यौस को नाँह।
पंक-जनम की नींद-संग भाजि गई निसि छाँह ॥ ३२ ॥

इहाँ 'पंक-जनम की नींद' 'निसि छाँह' ये कमल मूँदिबे में, अँधियारी में अवाचक है।

(६) त्रिविध अश्लील, यथा—

"सकल सुगंध सार सोभा परकार सु तो—
सरस सुहाग भाग दई दयो ठेलिकैं।
सोने की सुरंगताई अधर में मधुराई,
तिल की चिलक छाई तन नूर वेलिकै॥"

इहाँ 'परकार', 'दई दयो ठेलिकैं' यह व्रीडाव्यंजक हैं।

दोहा

पावत जे पर नीति को अवगाहत मैदान
नरकै तिनहीं जानि नहि, ते नर देव निदान॥ ३३॥

इहाँ 'नीति', 'मैदान', 'नरकै' ये घृणाव्यंजक हैं।

संग सकल परिवार लै पितृ-निवास में जात।
पावक-कुल में तुरत ही दुःख सबै मिटि जात॥ ३४॥

इहाँ 'पितृ-निवास', 'पावक-कुल' यह मरण (अमंगल) व्यंजक है।

"गंग कसोस हन्यो रन में रिपु कुंजर प्रान विमुच्चत ठाढ़े।"
यहौ है।

(७) संदिग्ध, यथा—

दोहा

बसत सुरालय में, सदा निज मति वारि नि संग।
सरबस हरि जान्यो तुमहिं धरि विभूति सब अंग॥ ३५॥

इहाँ निन्दा है के स्तुति है, यह संदेह है।

(८) अप्रतीति, यथा—

दोहा

साधि जोग की जुगति कों रचि अधिमात्र उपाय।
जतन धरैं दृढभूमि में जीतैं बैरि बनाय॥ ३६॥

इहाँ अधिमात्र = ज्ञान, दृढभूमि = दृढसंस्कार, वैरी = इंद्रिय, यह प्रतीति योगशास्त्र ही में हैं।

(९) ग्राम्य, यथा—

"हाहा कै हारि रहे हरि के सब पाँय परै जिहिं लातहिं मारे।"

यथाच—

"लोचन-सी बिझकाये बिना बिझकी-सी रिगै बिन रागमई है।"

इत्यादि ग्राम्य है।

(१०) नेयार्थ, यथा—

कवित्त

काली काढ़ि मार्‍यो सो कलिंदी को कलंक जानि,
कूल प्रतिकूल ह्वै त्रिसूल लै लरत हैं।
मघवा को मान हरि, महा मेघ कीन्हे अरि,
ब्रज पर बोजु लिये टूटेई परत हैं॥
मुकुट को पच्छ लिये काहे को विपच्छ किये,
मोर साँझ भोर यह बैर पकरत हैं।
गिरिवर-धारी सुधि लीजै न हमारी, ये
तिहारी जान प्यारी हमें मारै निवरत है॥३७॥

इहाँ 'त्रिसूल लै लरत है' यह नेयार्थ है।

(११) क्लिष्ट, यथा—

दोहा

आनन की को कहि सकै ? अवलोकत एकंत ।
मोहि रहे नँदनंद है सुन्दरता अतिवंत ॥ ३८ ॥

इहाँ आनन की सुन्दरता, अतिवंत, एकन्त, अवलोकत, मोहि रहे, इह वाक्य में क्लिष्ट है ।

"प्रीति कुम्हड़े की जाति जई सम होत तुम्हें अँगुरी पर रोही ।"

यहो है ।

(१२) अविमृष्ट-विधेयांश वाक्य में

तहाँ होत है, जहाँ—'अनुवाद कहि विधेयांश कहिये यह क्रम' है सो उलटो होइ । तादृश पद-रचना दोष बीज है, यातें पद-दोष है । अर्थ निर्दोष है । यथा—

"आलिनि के सुख मानिवे को तिय प्यारे की प्रीति गई चलिवागै।
छाइ रह्यो हियरें दुख है तहँ देख्यो नहीं नंदलाल सभागै ।"

इहाँ "देख्यो नहीं नँदलाल" यह कहि, 'छाइ रह्यो हियरे दुख' यह कह्यो चाहिये ।

यथाच—

सवैया

जीतिवे को रति-संगर आये हरौल मनोज महीपति के ह्वै ।
देखिये ठाढ़े कठोर महा जिन्हैं कातरताई भई न कहूँ छ्वै ॥

बीच हरामनि की किरनै न हथ्यारनि की जगि जोति रही च्वै।
जारी की आँगी कसी है उरोजनि, मानौं सिपाही सिलाह कसै द्वै॥३६

इहाँ "जारी की आँगी कसी" यह पहली तुक में कह्यो चाहिये उलटो कहै 'अविमृष्ट-विधेयांश' है।

यहाँ "हरामनि" यह विरुद्ध-मतिकारी दोषहू है।

प्रकरण में, प्रसिद्ध में, अनुभव में, 'तत' शब्द 'यत' शब्द को नाहीं चाहतु। अन्यत्र 'यत' शब्द बिन 'तत' शब्द कहै 'अविमृष्ट-विधेयांश' है।

यथा—

"कुच-अग्र नखच्छत स्याम दियौ सिर नाइ निहारति है सजनी।
सुमनौं ससि-सेखर के सिर तें निहरैं ससि लेत कला अपनी॥"

इहाँ 'जु निहारति सु-मनौं कला लेत' ऐसौ कह्यौ चाहिये।

(१४) विरुद्ध-मतिकारी

"देखी नहीं ससि सूरज हू ग्रह दासहु काहु सुनी नहि बानी।
रीति यहै 'सविता' नितहू अपने पति सों कबहूँ न रिसानी।"

इहाँ 'और के पति सों रिसानी' यह प्रतीत होत है।

"कचलावै लचै कुच-भार सो लंक, सबै तन कंचन रंग गन्यौ है।"

यहौ है।

इति वाक्य दोष

वाक्यांश्रंश पद-दोष

कहूँ ये दोष पद के अंश में होत हैं।

(१) पदांश में श्रुतिकटु, यथा—

"मिस नींद मुखप्पट ढाँकि लियो" इत्यादि श्रुतिकटु है।

(२) अंश में अवाचक, यथा—

सवैया

ज्यौं जिय जानि उद्यौ रवि को उठि कुंज तें भौन को गौन विचार्‌यौ
त्यौं 'सविता' कर की छतियाँ, छत जानि पर्‌यो जब गात सम्हार्‌यौ
हेरति ताहि सरोज-मुखी गिरि माँग ते फूल पर्‌यो मुख भार्‌यौ
कोपि मनौ सिर संकर के फिरि घाइ पे घाइ मनंमथ डार्‌यौ ॥४०॥

इहाँ 'भारो' अर्थ में 'भार्‌यौ' अवाचक है।

यथाच—

"बाउरी! जो पे कलंक लग्यो, तो निसंक ह्वै काहे ? न अंक लगाव...

इहाँ 'लगावति' एसो चाहिए (इहाँ आगिले तुकान्त 'गावत'...
जैसो 'लगावत' लिख्यो है)।

(३) पद-अंश में नेयार्थ

यथा—

"सविता सुमति करो दान औ कृपानता की,
कीरति विदित भूमि भूतल अकास में।"

इहाँ 'भूतल' रसातल में नेयार्थ है।

"गीर्वाण" में 'वचोवाणवत्' । (गीर्वाण शब्द को अर्थ देवता है । ये पद-अर्थवचोवाण में नेयार्थ दोष है) इत्यादि ।

इति वाक्यांश-पददोष-वर्णन

केवल वाक्य-दोष

केवल वाक्य ही के दोष बीस हैं । यथा—

दोहा

होहिं वर्ण प्रतिकूल हत,[1] लुप्तविसर्ग[2], विसंधि[3] ।
हतछंदरस[4], पुनि ऊनपद[5], अधिक[6], कथित पद वंधि[7] ॥४१॥
पततुप्रकर्ष[8], समाप्तपुनरात[9], कहत कवि लोग ।
अर्द्धान्तरैक वाचकै[10], गनि अभवन्मतिजोग[11] ॥४२॥
गनिये अकथित वाच्य त्यों[12], अपदस्थ पद[13],समास[14]।
संकीरन[15], गर्भित[16], तथा हतप्रसिद्धि[17], परकास ॥४३॥
भग्नप्रक्रम[18], अक्रमहिं[19], अमतपदार्थ[20] बखानि ।
गनै बीस ये दोष हैं वाक्यहि में पहिचानि ॥४४॥

(१) प्रतिकूल वर्ण

रस तें विपरीत वर्ण होइ सो प्रतिकूल वर्ण, यथा—
"नैकु अटै पट फूटत आँखि ।" इहाँ शृंगार में टवर्ग प्रतिकूल है ।

(२) लुप्तविसर्ग, उपहतविसर्ग तथा (३) व्रीडा, घृणा, अमंगल-व्यंजक तीन भाँति, विसंधि ये पाँच दोष संस्कृत ही में है।

४. हतछंदस

रसविरुद्ध छंद, होय कै लच्छण-हीन 'सो हतवृत्त' द्वै भाँति है।

(१ रसविरुद्ध छंद) यथा—

"वैनी उलट्टि परी कुच उप्पर चंपक-माल लगी लथ पथ्थिय।
कनक-जँजीर सुंड गहि झुम्मत मनहु मत्त मनमथ्थको हथ्थिय॥"

यह शृङ्गाररस-विरुद्ध छंद है। भरतोक्त छंदोविभाग तैं तत्तन्नायक रसोपयुक्त छन्द जानिये।

(२ लच्छण-हीन छंद) यथा—

"हाथ तें चौसर छूटि पर्‍यो तहँ 'ब्रह्म' भनै उपमा यह जोई।
मनौ रस राहु निकास लियो ससि डारि दियो छिति में करि छोई॥"

इहाँ भगणात्मक सवैया की चौथी तुक में एक लघु अधिक है।
यद्यपि लघु अन्यत्र होत हैं कहूँ, चौथे पद में नीको नाहि लगतु।

"आपने आनन-चंद की चाँदनी सों पहिले तन-ताप बुझायो॥"

इहाँ यतिभंग है।

५. न्यूनपद, यथा—

"कोकिल कूकनि हूक उठै 'मुरलीधर' मोर मरूरनि मारी।"

इहाँ "मोर-सोर सुनै मरूरनि मारी" इतनौ 'न्यूनपद' है।

६. अधिक पद, यथा—

"काम जित्यौ जग कामिनी-नैनकमल लहि बान॥"

इहाँ "कमल" अधिक पद है।

यथाच—

"स्फटिकाकृति निर्मल" इहाँ 'आकृति' अधिक है।

दोहा

कहा दवागिन के पियैं कहा धरैं गिरि धीर।
विरहागिनि में जरत ब्रज, बूड़त नैननि नीर ॥ ४५ ॥

इहाँ "धीर" अधिकपद है।

७. कथित पद

"तेरी वानी वेद केसी वानी है" इत्यादि कथितपद है। यहै पुनरुक्ति-दोष है।

८. पतत्प्रकर्ष

दोहा

अनुप्रास-कृत, बंध-कृत, जहाँ कमो उतकर्ष।
वाक्य माँह दूषन तहाँ मानत 'पततप्रकर्ष' ॥ ४६ ॥

यथा—

सवैया

यह बैनी छवानि छुवै पिक-बैनीकी पैनी चितौनि सों को निब्रहै ?
रँग ओठनि एसो कछू अति लाल जु लाल औ विद्रुम ऊन लहै॥
मुसक्यानि में एसी मिठाई अनूप जु ऊख पियूखहु में न यहै।
कहुँ वा दिन देखी अटापे चढ़ी तबतें चित मेरे चढ़ी ये रहै ॥४७॥

इहाँ तीन तुक को बंधकृत प्रकर्ष चौथी तुक में मिटि गयौ।

"छार भरे छरहरे छगजे छरि तुच्छके छहरत मदछपनि छाइयतु है।"

इह कवित्त में अनुप्रासकृत क्रम कमी हैं।

९. समाप्त-पुनरात्त

दोहा

वाक्य समास भये 'जु कछु अप्रमान पद होय।
तहँ 'समाप्त-पुनरात्त' कहि दूषन है कवि लोय ॥ ४८ ॥

यथा—

मुकत-माल सों तू लखी, नखत-माल सों राति।
जगमगाति है सिंह-कटि आली नीकी भाँति ॥ ४९ ॥

इहाँ चौथी तुक में 'समाप्त-पुनरात्त' है।

यथाच—

"लागी मनौ तीर की परी है यों अहीर की
सम्हार न सरीर की, न चीर की, न छीर की।"

इहाँ "चीर की न छीर की" यह 'समाप्त-पुनरात्त' है। इहाँ—"लागी मनौ तीर की सम्हार न सरीर की न चीर की न छीर की परी है यों अहीर की" ऐसौ चाहिये।

१०. अर्थान्तरवाचक

दोहा

पूर्व वाक्य को पद जहाँ और अर्ध में जाय।
'अर्थान्तरेक वाचकै' तहँ दूषन ठहराय ॥ ५० ॥

यथा—

"खेलति साथ सहेलिनि के इक गोरकुमारि तहाँ चतुराई।
कीन्ही कछू 'सविता' इहि वेस में याहि इती मति कौने सिखाई ॥"

इहाँ "कीन्ही चतुराई" यह वाक्य को पद दूसरे अर्द्ध में कह्यो।

११. अभवन्मत योग

दोहा

चित चाह्यो जहँ वाक्य में होत न अन्वय जोग।
तहँ दोष मानत सुकवि यह 'अभवन्मत जोग' ॥ ५१ ॥

यथा—

सवैया

"चारि डवा भरि आन धरे जोई रीति गयो सोई फेरि भर्यौ री।
प्रात उठी रति-केलि किये "मुरलीधर" सों अधरारस ठौरी ॥
चोरी लगी जु सहेलिनि को जु तमोलिनि आन पर्यो झगर्यौ री॥
मान मनाय मवासिनि को भई पान खवाइ खवासिन बौरी ॥५२

इहाँ चारों तुक कों अन्वय जैसो विवक्षित है, तैसो नाहीं होइ सकै यातें 'अभवन्मतयोग' है। ऐसे ही—

"लाल के भाल में बाल विलोकत लाल दुवौं भर लोचन लीन्हौ।
सासनपीय सवासन सीय हुतासन में जनु आसन कीन्हौ॥"

इहाँ 'अभवन्मत योग' है, तथा अमंगलव्यंजक है।

१२. अनभिहित वाच्य-दोष

जहाँ द्योतक पद कमी होय सो 'अनभिहित' वाच्य-दोष है।

यथा—

"राति सुहाति न नैकु विलोकत प्रीतम की 'सविता' परछाँही।"

इहाँ "नवोढा कों अरु प्रीतम कों परछाँहियै न सुहाती" ऐसो अर्थ को 'अपि' (भी) को अर्थ कह्यौ चाहिये। (ताकी कमी तें अनभिहित वाच्य-दोष है। न्यूनपद में वाचक की कमी है। इहाँ द्योतक पद कमी है। यह भेद है)।

१३. अस्थानस्थ

यथा—

"ढीले से अंग लसैं 'सविता' भनि जाति लखी छवि कासों कही है ॥"

इहाँ "लखी छवि जात" यह अस्थानस्थ है। "कासों कही जाति" ऐसो कह्यौ चाहिये। बोधविलम्ब-दोष बीज है। ऐसें—

"गिरिं गज-गंड तें उड़ानौ सुवरन अलि
सीता-पद-पंकज मनौ कलंक रंक कौ।"

इहाँ "कलंक रंक" अस्थानस्थ है। ऐसे ही—

"अंचल दे नँदलाल विलोकत, री दधि नोखी बिलोवनहारी ॥"

इहाँ "दधि" अस्थानस्थ है।

१४. अस्थानस्थ समास

यह दोष संस्कृत में है।

१५. संकीर्ण

दोहा

"और वाक्य को पद मिलै कहि 'संकीरन' दोष।"

यथा—

"साथ सखी के नई दुलही को भयो हरि को हियो हेरि हिमंचल।"

इहाँ "दुलही को हेरि हेरि" यह पद दूसरे वाक्य में संकीर्ण है। अस्थानस्थपद दोष एक ही वाक्य में होत है। यह दूसरे वाक्य ही में होत है।

१६. गर्भित

और वाक्य-मधि वाक्य जहँ, तहँ 'गर्भित' कहि दोष ॥ ५३ ॥

यथा—

सवैया

पाइ प्रभावति बैठी गुपाल सों औंठनि ऐंठति रीझ भरी-सी।
चारु महाकवि की कविता लौं, लसै दुलही रस सों उलही-सी ॥
सीबी करै तरवानि के झावत देह दिये-भरी नेह ज्यौं सीसी।
दंतनि की दुति बाहिर ह्वै करि जाहिर होत जवाहिर की-सी ॥५४॥

इहाँ "सीबी करै", "दंतन की दुति जाहिर होति" इहि वाक्य में "देह दिये भरी नेह ज्यौं सीसी" यह वाक्य गर्भित है।

१७. प्रसिद्धि-हत

दोहा

लोकरीति, कविरीति की जहँ प्रसिद्धि हनि जाय।
दूषन तहाँ 'प्रसिद्धि-हत' मानत हैं कविराय ॥५५॥

यथा—

"आए न नंदकिसोर सखी ! अब मोर मलार गलारन लागे।"

इहाँ मोरनि में गलारिबौ प्रसिद्धि-हत है।

रनित सिंजित भूषननि में, रति में मणित, पखेरुनि में कूजित, मोरनि में केका, योद्धनि में सिंहनाद इत्यादि लोक-प्रसिद्ध है। उष्ण प्रताप, श्वेत कीर्ति, विरह में ज्योत्स्ना की ज्वाला इत्यादि कवि-रीति प्रसिद्ध हैं। यातें जो विरुद्ध सो 'प्रसिद्धि-हत' है।

१८. भग्नप्रक्रम

दोहा

प्रस्तुत पद के भंग तें 'भग्नप्रक्रम' जानि।

यथा—

बड़े आपने दृग कहौ सखि ! कहि सकौं सुमैन।
प्रीतम-नैननि में सदा बसत तिहारे नैन ॥ ५६ ॥

इहाँ दृग कहि फिरि नैन कहे यह 'भग्नप्रक्रम' है। जातें "प्रीतम-दृगनि में तुव दृग बसत सुचैन" ऐसो 'दृग' पद फेरि चाहिये।
उद्देश्य प्रतिनिर्देश्य में एक पद दोइ बार कहे गुन है।

यथा—

दोहा

प्रीतम ! एसी प्रीति कर, ज्यौं निसि चंदा हेत।
चंद बिना निसि साँवरी, निसि-बिन चंदा सेत ॥५७॥

इत्यादि।

१६. अक्रम—

द्योतक पदक्रम उचित नहिं, सो 'अक्रम' पहिचानि ॥५८॥

यथा—

"मुसक्यात आछी आत दंतनि की दुति दियें
तैसिये गुराई अति सुंदर सरीर की।"

इहाँ "अति" "दुति" दिये एसो नजीक 'अति' पदक्रम चाहिये। द्योतक पद ता पद के नजीक ही अर्थद्योतक है। एसे ही—

सवैया

जीवन ओज सरोजमुखी करि चाँदनी रैनि में केलि अलेखै ।
प्रात समै उठि अंचल ओट दै हेरि रही उर की नख रेखै ॥
आइ परे हरि याही समै 'सविता' भनि भौन में काज बिसेखै ।
यौं सकुचे दृग मित्रहिं देखत पंकज ज्यौं बिन मित्रहिं देखै ॥५९॥

इहाँ "बिन देखै" ऐसो चाहिये । द्योतक पद अन्यत्र भये तें अक्रम है ।

२०. अमत परार्थ

दोहा

प्रकृत रसादिक तें जहाँ होय विरुद्ध परार्थ ।
वाक्य-माँह दूषन तहाँ मानत 'अमत परार्थ' ॥ ६० ॥

यथा—

राम काम-बाननि हनी, सनी रुधिर अँग वास ।
निसि-चारिनि पहुँचीं तुरत जीवितेस के पास ॥ ६१ ॥

इहाँ शृङ्गार सों दूसरो रस विरुद्ध है ।

इति केवल वाक्य-दोषवर्णनम् ।

अर्थ-दोष

'अर्थ-दोष' द्वाविंशति (२२) हैं ।

दोहा

. . . अपुष्ट[१] है, कष्ट[२], विहत[३], पुनरुक्त[४] ।
दुष्क्रम[५], ग्राम[६], सुसंदिगध[७], नहीं हेतु संजुक्त[८] ॥६२॥
विद्या-लोक-विरुद्ध[९], त्यौं अनवीकृत[१०], औ श्लील[११] ।

नियम[12], माऽनि[13] यमविशेषविन[14], अविशेषहु, विनशील[15] ॥६३॥
अपद-मुक्त[16], साकांक्ष[17], सहचारि[18], प्रकाश-विरुद्ध[19] ।
विधि[20], अनुवाद-अजुक्त[21], पुनि स्वीकृत त्यक्त[22], जु सुद्ध ॥६४॥

१. अपुष्टार्थ

दोहा

अर्थ कहें हू बिन कहे तुल्य सु होय 'अपुष्ट' ।

यथा—

'गंग' कहै अगरै अरु चंदन, आगि को ईंधन और न कीजै ।

इहाँ "आगि को" यह अपुष्टार्थ है ।

यथा—

सवैया

सूरज तेज सरोज की सेज सुधाकर ज्योन्ह के ज्वालनि जारी ।
कोकिल कूकनि हूक उठै 'मुरलीधर' मोर मरूरनि मारी ॥
आँगन कुंज के गुंजत भौंर तिन्हें पिय-पास पठावति प्यारी ।
दै पतियाँ कहि यों बतियाँ अतना छतियाँ छतना करि डारी ॥६५॥
'केसव' सूधे विलोचन सूधी विलोकनि सों अवलोके सदा ही ।

इहाँ 'सुधाकर' 'विलोकनि', ये अपुष्ट हैं ।

२. कष्टार्थ

जो विलम्ब सों समुझिये अर्थ सु जानौ 'कष्ट' ॥ ६६ ॥

यथा—

दोहा

वृषभ-वाहिनी अंग उर वासुकि वसतु प्रवीन।
सिव-अरधंग सिवा किधौं पातुर राइ प्रवीन ॥ ६७ ॥

इहाँ "वासुकिः पुष्पहारः स्यात्सर्पराजस्तु वासुकिः" या प्रमाण सों पुष्पहार और सर्पराज दोउन को नाम वासुकि है, तासों कष्टार्थ है। ऐसे ही "जात नहीं कदली की गली" इत्यादि जानिये।

३. विहतार्थ

दोहा

करि प्रकर्ष, अपकर्ष कै तातें जो विपरीत।
'विहित अर्थ' द्वै विध कहै पंडित कविता-मीत ॥ ६८ ॥

(१) प्रकर्ष में अपकर्ष, यथा—

कवित्त

राग महा रंग महा कविता प्रसंग महा,
जाकी मजलस सदा सनी है सुवास में।
सविता' सुमति करी दान औ कृपान ताकी,
कीरति विदित भूमि भूतल अकास में ॥
ऐसे गुन साहिब कुमार कृष्णसाहिजू के,
फैले चहुँ ओर झारखंड आसपास में।
पंथनि पथिक कहैं, कथनि कथिक कहैं,
रानी कहैं अंदर खुमानी आमखास में ॥ ६९ ॥

इहाँ "भूमि, भूतल, अकास में" कहि "झारखंड आसपास में" यह (कहिवौ) अपकर्ष है।

"झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्यो मार,
हारी झकझोरति त्रिविध गति वात की।"

इहाँ 'झकझोरति' कहिबौ त्रिविध गति में अपकर्ष है।

(२) अपकर्ष में प्रकर्ष, यथा—

दोहा

विधि अदभुत अति ही रचे रुचै न चंदन चंद।
मेरे तो दृग-चंद्रिका त्रिय-मुखकांति अमंद ॥ ७० ॥

इहाँ चंद्र की निंदा (अपकर्ष) करि चंद्रिका प्रकर्ष कह्यो। यहै 'वदतोव्याघात' है।

यथा—

दोहा

सिह विरह जा नारि कों और नारि नाह जाइ।
दूध पिये, सरबत पिये, जल बिन प्यास न जाइ ॥ ७१ ॥

इहाँ "सरबत पिये कहि 'प्यास न जाइ" यह विरुद्ध है।

४. पुनरुक्त

दोहा

अर्थ कह्यौ 'पुनरुक्त' सो कह्यौ फेरि कहि जाइ।

यथा—

भलौ नहीं यह केवरौ, सजनी! गेह अराम।
वसन फटै, कंटक लगै निसिदिन आठौ जाम ॥ ७२ ॥

इहाँ 'आठौ जाम' अर्थ पुनरुक्त है।

७. संदिग्धार्थ जहाँ एक निश्चय न होइ, यथा—

दोहा

वर तिय के गिरिवरनि के सोहत विपुल नितम्ब।
कौन सेइवे जोग हैं, कहि विचार अवलम्ब ॥ ७७ ॥

इहाँ शृङ्गार है कि शान्त है, यह संदेह है।

८. निर्हेतुक जहाँ कार्य में हेतु चाहिये पै न कह्यो होइ।

यथा—

सवैया

काम-कला रस कामिनि सों विपरीत रची रति पी मन भाए।
जोवन-भार भरे 'सविता' भनि पीड़त अंग अनंग सुहाए॥
कैइक टूक भौ हार विराजत प्रीतम के मुख ऊपर आए।
टूटिगौ चाप मनौ रति-कंत को मीत कलानिधि देत चढ़ाए ॥७८॥

इहाँ 'मीत कलानिधि देत चढ़ाए' इतनौ निर्हेतुक है, ऐसे ही—

लाल सों बोलति नाहिनै बाल सु पोंछति आँखि,अगौछति अंगनि।

इहि कवित्त में आँखि पोछिवौ निर्हेतुक है।

९. प्रसिद्धि-विरुद्ध

(१) लोक-प्रसिद्धि-विरुद्ध, यथा—

दोहा

विधुमुखि विधु यह वर तरुनि, कर-कंकन नहिं मानि।
लियो काम कर चक्र है, जग जीतन को जानि ॥७९॥

इहाँ काम को चक्र हथ्यार लोकप्रसिद्धि-विरुद्ध है।

सवैया

रुद्रप्रताप के मंगदराय गिराइ गयंद दए इक ठौरी।
'गंग' कहै कटि कुंभ कपोलनि मौतिन भूमि भई रँगि धौरी॥
इक भुसुंड को छंडति जुगिनि इक भुसुंड गहैं भरि कौरी।
मानहुँ माँगि हिमाचल कों हित भूधर भैयनि भैटति गौरी॥८०॥

इहाँ "रँगि धौरी" यह युद्धप्रसिद्धिविरुद्ध है।

(२) विद्या (शास्त्र) तें विरुद्ध, यथा—

दोहा

चंदन रह्यौ जु फूलि है आये तें रितुराज।
फूलि रही त्यों मालती सखी! लखी हम आज॥८१॥
"झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्‌यो मार"

इत्यादि में चंदन फूलिबौ, मधु में मालती—फूल, रति को झुकिबौ कविशास्त्र-प्रसिद्धिविरुद्ध है।

यथाच—

दोहा

पढ़िबौ तथा पढ़ाइबौ दिन के साधन न्यान।
रैनि भये कीजतु सदा स्नान दान सुविधान॥८२॥

इहाँ रैनि में स्नान-दान धर्मशास्त्र-विरुद्ध है।

यथा—

"पैने पयोधर देखि 'गदाधर' यों अँगिया की तनी सरकाई।
जानि पुरातन वैर सदाशिव की मुसकैं मनों मैन चढ़ाई॥"

इहाँ 'पैने पयोधर' सामुद्रिकशास्त्र-विरुद्ध है। "ऊँचे पयोधर"

एसो कह्यौ चाहिये । एसे ही ज्योतिष वैद्यकादि विरुद्धहू विद्या-विरुद्ध जानिये । लोक-विरुद्धहू कवि-प्रसिद्धि में दोष नाहीं ।

१०. अनवीकृत

दोहा

फिरि फिरि कहिये अर्थ जहँ 'अनवीकृत' कहि सोधि ।

यथा—

सवैया

जाके लिये गृह-काज तज्यौ न सिखी सखियानि की सीख सिखाई ।
वैर कियौ सिगरे ब्रज-गाँउ सों जाके लिये कुल-कानि गँवाई ॥
जाके लिये घर बाहिर हू 'मतिराम' रह्यौ हँसि लोक चवाई ।
ताहरि सों हित एक ही बार गँवारि हौं तोरति बार न लाई ॥८३॥

इहाँ "जाके लिये" यह अर्थ अनवीकृत है । एसे ही—

"रूप-मद-मोचन, मदन-मद-मोचन कै
तियमद-मोचन ये लोचन तिहारे हैं ।"

यहहू है ।

११. अश्लील

त्रिविध कह्यौ अश्लील, घन, लाज, अमंगल रोधि ॥८४॥

(१) घृणा-व्यंजक

यथा—

"एक उसासहिं के मिस सें सिगरेई सुगंध बिदा करि दीन्है ।"

(२ लज्जा-व्यंजक) यथा—

"आइकै कहूँ ते मेरे सेज के समीप रह्यौ
ठाढ्योई करत मनुहार बड़ी वेर को।"

(३ अमंगल-व्यंजक) यथा—

दोहा

लाल कही इहि दुपहरी मिटति तृषा नहिं हाल।
यों सुनिकैं जल-अंजुली निज कर दीन्ही बाल ॥८४॥

यथाच—

"सासन पीय सवासन सीय हुतासन में जनु आसन कीन्हो।"

इत्यादि।

नियमादि परिवृत चार दोष—

१२. नियम-परिवृत, यथा—

नियम जहाँ चाहिजे, पै न कीजे, सो 'नियम-परिवृत'।

यथा—

"ता हरि सों हित एक ही बार गवाँरि हौं तोरत बार न लाई।"

इहाँ "ताही हरि सों" एसो नियम चाहिये।

यथा—

दोहा

रतन रतन आभास सों मनि कहियतु पाखान।
तिनि रतननि तिनि मनिनि हू पाखानता निदान ॥८५॥

इहाँ आभास हू सों तिनि रतननि सों पाखानता तुल्य है, एसो नियम चाहिये।

एसो कह्यौ चाहिये। एसे ही ज्योतिष वैद्यकादि ि
ज़ानिये। लोक-विरुद्धहू कवि-प्रसिद्धि में दोष नाहीं

१०. अनवीकृत

दोहा

।फारे फिरि कहिये अर्थ जहँ 'अनवीकृत' ः

यथा—

सवैया

जाके लिये गृह-काज तज्यौ न सिखी सखियानि ि
वैर कियौ सिगरे व्रज-गाँउ सों जाके लिये कुल
जाके लिये घर बाहिर हू 'मतिराम' रह्यौ ह
ताहरि सों हित एक ही बार गँवारि हौं तोरति ः

इहाँ "जाके लिये" यह अर्थ अनवीकृत है। ए
"रूप-मद-मोचन, मदन-मद-मोचन
तियमद-मोचन ये लोचन ि
यहहू है।

११. अश्लील

त्रिविध कह्यौ अश्लील, घन, लाज, अ

(१) घृणा-व्यंजक

यथा—

"एक उसासहिं के मिस सें सिगरेई सुगंध

१६. अपद मुक्त

दोहा

अनुचित ठानत जो अरथ 'अपदमुक्त' कहि जाय।

यथा—

सवैया

जासु सुडीठ सुरेस तकै तव लोचन आगम वेद विसेखे।
लंक-से दुग्ग में बास निसंक है संकर देव-से तोषित पेखे॥
बंस बिरंचि के संभव, गेह तिलोक की संपति के सुख पेखे।
ऐसो कहा? वरु पै यह रावन होत कहा? सिगरे गुन देखे॥८९॥

इहाँ "गुन कहिये यह रावन" यह निंदा कहि सीता नाहीं देवे है। तहाँ "होत कहा सिगरे गुन देखे" यह अनुचित ठानत ज्यौ यामें देवो ठहरायो।

१७. साकांक्ष

जहाँ चाह कछु अर्थ की 'साकांक्ष' सु बताय॥९०॥

यथा—

दोहा

ग्रीषम रितु की दुपहरी, चली बाल वन-कुंज।
अगिनि लपट तीखन लुवें मलय-पवन के पुंज॥९१॥

इहाँ "मलय पवन के पुंज" "जानी" इतनी क्रिया साकांक्ष है।

यथाच—

सवैया

देखि न क्यौं सुख मानि घनों मनि जा सुख मानि को सोर भयो है।
सुंदर साँवरो जो सिगरी ब्रजनारिनि को चित-चोर भयो है॥

आपने आनि अटानि भटू घनवारि घटानि को मोर भयो है।
नन्दीश सोर अली! यहि ओर सु तो मुखचंद-चकोर भयो है॥६२॥

इहाँ "तुव घनवारि घटानि को" इतनो अर्थ चाहिये। विवक्षित अर्थ की न्यूनता में 'साकांक्ष' है। अविवक्षित अर्थ की न्यूनता में न्यूनपद' है।

यथा—

दोहा

कहा रैनि, कह द्यौस हू करत रहत उद्योत।
तरुनि! तिहारो देखि मुख कुच-विघटन नहिं होत॥ ६३॥

इहाँ मुख-'चंद' कुच-'चक्रवाक', न्यूनपद है।

१८. सहचर-भिन्न

उत्तम में अधम और अधम में उत्तम अर्थ 'सहचर-भिन्न' है।

(१) प्रथम उत्तम में अधम, यथा—

दोहा

विद्या सों बुधि, बिसन सों मूरखता, मद नारि।
विधु सों रजनी, विनय सों धन, सोहत निरधारि॥ ६४॥

इहाँ 'व्यसन से मूर्खता' (यह) 'सहचर भिन्न' है।

(२) द्वितीय—अधम में उत्तम, यथा—

दोहा

अति उतायले वधिक-गन लीन्हे बागुर जार।
ठाकुर कूकर संग ही खेलन चले सिकार॥६५॥

इहाँ ठाकुर 'सहचर-भिन्न' है।

१६. प्रकाशित-विरुद्ध

जो प्रकाशित (अर्थ तें) विरुद्ध सो 'प्रकाशित-विरुद्ध' ।

यथा—

सवैया

राग भरी गरैं वैरिनि के लपटाति सु तेग सदा मन भाई ।
ता वस भूपति मोहिं सुदीननि दीन्हैई डारत हौं न सुहाई ॥
छीर-पयोनिधि तात सों बात-सँदेस अदेस को एसी तताई ।
राजसिरी इमि प्यारी सखी तुव कीरति वारिधि-पार पठाई ॥६६॥

इहाँ "तुव कीरति समुद्र-पार लों गई" यह अर्थ प्रकाशित है तहाँ 'राज्यश्री जाति' यह विरुद्ध प्रतीति होत है ।

२०. अयुक्त विधि

दोहा

रचौं पंडवनि-हीन जग आजु तिहारे काज ।
जतन जगाए रजनि में सुख सोवहु कुरु-राज ! ॥६७॥

इहाँ अश्वत्थामा की उक्ति में रजनि में 'सुख सों सोवत, जतन सों जगाइवी' यह विधि-युक्त है, सो न कही ।

यथाच—

सवैया

पावस-भीत वियोगिनी बालनि यों समुझाय सखी सुख साजै ।
जोति जवाहिर की 'मतिराम' नहीं धुरवा दिग ओजनि छाजैं ॥
दंत लसे बक-पाँति नहीं धुनि दुंदुभि की न घनाघन गाजैं ।
रीझ के 'भानु' नरिन्द दये कविराजन को गजराज बिराजैं ॥६८॥

एसो निषेध विधि घनाघन कह्यौ सो "घनाघन गाजैं" इहाँ गौण कह्यौ ।

२१. अयुक्तानुवाद, यथा --

दोहा

नौल कौल-दल-से नयन भेदि गए उर न्यान।
विहसि विलोकनि में तरुनि बस कीन्हे प्रिय-प्रान ॥६६॥

इहाँ "नौल कौल(नवल कमल)दल-से" यह अनुवाद "भेदि गये उर न्यान" यह अर्थ अयुक्त है।

२२. त्यक्त पुनः स्वीकृत

दोहा

तज्यो जु प्रकरन वाक्य में, कह्यो अर्थ पुनि ल्याय।
'त्यक्त पुनः स्वीकृत' तहाँ कविता-दोष बताय ॥१००॥

यथा—

कवित्त

सिखै हारी सीख, डरवाइ हारी कादंबिनी,
दामिनी दिखाइ हारी निसि अधरात की।
झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्‌यौ मार,
हारी झकझोरति त्रिविध गति वात की ॥
दई निरदई ! याहि काहे ? एसी मति दई,
जारत है रैन एन दाह भई गात की।
कैसे हू न मानति मनाइ हारी 'केसोराय'
बोलि हारी कोकिला, वुलाइ हारी चातकी ॥१०१॥

इहाँ दामिनी, कादंबिनी (मेघमाला) संग में त्यक्त है। "मनाइ

हारी" यह वाक्य समाप्त भये पर "बोलि हारी कोकिला, बुलाइ हारी चातकी" यह 'त्यक्तपुनःस्वीकृत' है।

इति अर्थ-दोषवर्णनम्।

——o——

रसभावादि-दोष

दोहा

रस थाई प्रभृतिक कह्यो नाम[1] न व्यंग्यहि बोध।
विभावादि प्रतिकूलता[2] कष्ट-बोध[3], तँह सोध ॥ १०२ ॥
फिरि फिरि दीपति रसहिं को[4], अकस्मात विच्छेद[5]।
अकस्मात विस्तार[6] त्यों, अँग-विस्तर को भेद[7] ॥ १०३ ॥
अँगि भूल्यो[8] कि विरुद्ध अँग[9], प्रकृति-विपर्यय[10] लेख।
शृंगारादिक रसनि के दूषन इतने देख ॥ १०४ ॥

१. स्वनाम-दोष

(१) रस को स्वनाम-दोष। यथा—

दोहा

चली उरोज दिखाइ तिय, भुज उठाइ, अँगिराइ।
इन प्रीतम के दृगनि में रस उपज्यो अधिकाइ ॥ १०५ ॥

(२) स्थायी को स्वनाम-दोष। यथा—

दोहा

अंगनि कांति अनंग की उरज उपज अब देखि।
प्रीतम के हिय नित नई उपजी तिय-रति लेखि ॥ १०६ ॥

(३) संचारी को स्वनाम-दोष । यथा—

दोहा

सडर भुजंग विभूषननि, सलज संभु-मुख ओर ।
नव संगम में गंग लखि सरुष गौरि-दृग-कोर ॥ १०७ ॥

(४) शृंगारादि स्वनाम-दोष । यथा —

दोहा

झाँखि झरोखे तिय गई नैकु मधुर मुसक्याय ।
लखि सिंगार-रस-पूर को पिय-हिय रह्यो समाय ॥ १०८ ॥

"नवरसमय ब्रजराज नित"

इत्यादि ।

तथाच—

तजि रिस कों, रस-केलि कर, परत पाँइ पिय हेरि ।
गयौ अरी जोबन हरिन नहिं बहुरेगो फेरि ॥१०९

एवंच—

'भयौ हिय बोध, किधा उपज्यौ प्रबोध'
'गाढ़ो अगेठि गढ़े से षयेनि त्यौं ठाढ़े उरोजनि ठाढ़िये जैहैं' ।

इत्यादि ।

२. विभावादि-प्रतिकूलता, यथा—

"मानौ गयंद के कुंभनि में रनसूर महावति जूझि पर्‍यौ है ।"

यहै है ।

३. विभावादि कों कष्ट-बोध, यथा—

सवैया

आँचर झीनै उरोजनि लच्छित लाल लखैं ललनै सुधि आवैं।
आनँद लाज लपेटी तहाँ लखि पैंच में जावक-दाग छिपावैं॥
जानि परे 'मनिकंठ' जितै तितहीं तकि रोकि रहै टकि लावैं।
कान्ह चुनैं तब हेरि हसै,तिय प्रेमपगी पिय-पाग-चुनावैं॥११०॥

इहाँ नायक-गत हास आदि को प्रकट नाहीं। यथाच—

"सोर भये सकुचैं, समुझैं 'हरवाह' कह्यो गरैं लागी सु पोरी"।

इहाँ अनुभाव को बोध कष्ट तैं है।

यथाच—

दोहा

धरै न धीरज सुधि हरैं, उलटै पलटैं फेरि।
हरि! वाकी ऐसो दसा, कैसे सकिये हेरि॥१११॥

इहाँ शृंगार-साधारण विभाव है।

४. पुनःपुनः दीप्ति

रस की प्राप्ति फिरि फिरि दीप्ति दोष कुमारसंभव-रतिविलाप में है।

५. अकस्मात् विच्छेद

रस को अकस्मात् विच्छेद 'महावीर-चरित' नाटक में है। (द्वितीय अंक में रघुनाथजी और परशुरामजी के वीररसात्मक संवाद में 'कंकणमोचनाय गच्छामि' यह रघुनाथजी की शृंगाररस-उक्ति रूप है)।

६. अकस्मात् विस्तार

रस को अकस्मात् विस्तार 'वेणीसंहार' में है। (दूसरे अंक में वीरनाश-प्रसंग में दुर्योधन को शृंगाररस वर्णन रूप है)।

७. अंग-विस्तार

अंग जो अप्रधान रस ताको विस्तार 'हयग्रीव-वध' में है।

८. अंगी-विस्मरण

अंगी (प्रधान नायकादि) को विस्मरण 'रत्नावली' (नाटिका) में है। (चतुर्थ अंक में नाटक की प्रधान नायिका सागरिका को विस्मरण है)।

९. विरुद्ध-अंग वर्णन

रस के अनुपकारी अंग को वर्णन 'कर्पूरमंजरी सट्टक' की प्रथम जवनिकान्तर में है।

१०. प्रकृति-विपर्यय

(१) दिव्य, (२) अदिव्य, (३) दिव्यादिव्य, यह तीन प्रकृति-विपर्यय हैं। तहाँ स्वर्गपातालगमन, समुद्रोल्लंघनादि दिव्य हैं। कदाचित् दिव्यादिव्यहू में संभोग, परिहास, शोक, परिताप दिव्य हैं। एसें दक्षिण आदि चार तथा धीरोदात्त, धीरशान्त, धीरोद्धत तथा धीरललित तथा उत्तम, मध्यम, अधम भेद होत हैं। तातें जो विपर्यय होइ सो 'प्रकृति-विपर्यय' दोष है।

नायिका-चरणप्रहारादि में नायक को कोप, अनुचित कर इत्यादि दोष आपुतें जानिये।

अर्थदोष की अदोपिता

——:ॐ:——

दोहा

संचारी निज नाम कहि, कहुँ नहिं दोष विरुद्ध ।
कहुँ विरुद्ध संचारि यों वाध भये हू सुद्ध ॥११२॥

१. संचारी भाव द्वै भाँति, एकै व्यंग्य-संचारी के बोधक, एकै ताही के अर्थ के बोधक, तहाँ निज नाम दोष नाहीं ।

२. उत्सुकता, व्रीड़ा आदि शब्द में है। तातें दम(मद)यंती, किलकिंचित, "सलीलमावर्जित पादपद्म" इत्यादि निर्दोष है ।

३. विरुद्ध संचारी भाव, भावशवलता में दोष नाहीं । यथा—

दोहा

बहू ! दूवरी होत कत ? यों बूझति है सास ।
ऊतर कढ़्यौ न वाल-मुख, ऊँची लई उसास ॥११३॥

इत्यादि में दुःख साधारण भाव-शृङ्गार विरुद्ध नाहीं ।

दोहा

स्मृति, त्यों ही सादृश्य में नहिं विरुद्ध रस और ।
एक ठौर जु विरुद्ध है सो कीजे द्वै ठौर ॥११४॥

यथा—

भेंटति आपु वरंगननि चढ़े विमाननि-संग ।
वीर लखत हैं आपने स्यारनि भेंटे अंग ॥११५॥

५. विविध निर्दोषिता

दोहा

होत नहीं अनुकरन में दूषन सबै विचार ।
वक्तादिक औचित्य तें दोषै गुन निरधार ॥११६॥
कहूँ न गुन नहिं दोष है, नीरस में यह जान ।
करणादिक अवतंस जे, ते सहितार्थ प्रमान ॥११७॥

कर्णावतंस, शिरःशेखर, धनुर्ज्या, पुष्प-मालादि शब्द सन्निधि अर्थ में हैं। तातें अपुष्टार्थादि दोष नाहीं ।

वैयाकरण वक्ता श्रोता होइ, तो अप्रतीति, कष्टार्थ आदि (दोष हू) गुण है ।

विदूषक-उक्ति में, सुरतादि गोष्ठी में 'अश्लील' ग्राम्य, भय हर्षादि में 'अधिक पद', लाटादि (अनुप्रास) में पुनरुक्त, उपदेशादिक में 'गर्भित दोष' गुन जानिये ।

इति काव्य-दोष-वर्णनम्

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज-कुमारमणिकृते
'रसिकरसाले' दोषविचारो नाम
दशमोल्लासः ॥ १० ॥

ग्रन्थ-पूर्ति

दोहा

सब रस - सागर कृष्ण - गुन-
ग्यान - ध्यान धरि प्रीति ।
हरिवल्लभ - सुत इमि रची
कविताई की रीति ॥ १ ॥
रस सागर रवि - तुरग विधु
(१७७६) संवत मधुर वसन्त ।
निकस्यो 'रसिक रसाल' लखि
हुलसत सुहृद व सन्त ॥ २ ॥

इति श्रीकविकुमारमणिकृतौ

'रसिकरसालं'

सम्पूर्णः



शुद्धि-पत्रक

पत्र	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
३	१७	ब्यंग	ब्यंग्य
४	४	यह	इहि
,,	६	सिघनि	सिंघनि
६	५ से १३	ब्यंग	ब्यंग्य
७	१२	वाच्याथ	वाच्यार्थ
,,	१५	संगद्बोध	संगबोध ८
,,	२०	डीठ,	डीठ--
८	१६	मैं	में
,,	२०	ब्यंग	.ब्यंग्य
९	१५	जाने	जानैं
११	१५	कौ	को
१२	१७	ब्यग्य	ब्यंग्य
१३	१६	त्तेहि	तेहिं
१५	१०	ब्याखान	ब्याख्यान
१६	५	रसहूँनि	रसनिहूँ
,,	१२	कै	के
			कीन्हौ
			रैन
			विरह
			हरी न
			भविष्यत्
			सुगंधि
			पेखत

पत्र	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
३०	२	दशा-सो	दया सो
३६	११	बठि	बैठि
"	१५	व्ंग्य	व्यंग
३८	१२	हँसा	हँसी
३९	७	मंकर	शंकर
४१	१४	पावै	पाये
५२	१६	वोधजगिवो	वोध =
५५	४	संकर-सेस	शंकर शेष
६५	१	उल्लस	उल्लास
६८	२१	ढीठँ	ढीठ
६९	१६	नाह	नाँह
७०	७	साचा	साँचो
७१	१८	कहु	कहुँ
७२	१३	गये	भये
७४	१०	नाह	नहिं
७५	१७	वरजा	बरजो
७७	६	जिए	जिय
"	१३	सौं	सों
८०	२३	सौ	सों
८४	११	नायिका	नायिकाः
९५	१२	दमयन्यादि	दमयन्त्या०
९६	२२	स्यारे	प्यारे
९९	२	चीन्ह	चिन्ह
१०१	७	पाय २	पाँय २
१०७	३	को	के

पत्र	पंक्ति	अशुद्धि	
११५	२	की	को
११७	१३	गरे	गरैं
१२९	५	अतिगुप्त कै२	अतिगुप्त २ कैं
१४०	६	दृगनि ४	दृगनिकपूर २६४
१४५	२३	कमा	कमी
१५७	२१	मन	मैं न
१६६	२२	उद्धित कीज	उद्धित कीजे
१८०	१३	निक	विह
१८८	१४	बंधु	बंध
२०७	१८	अतद्गुन	अतद्गुण
२०४	८	रैनि	रैन
२१६	३	सिरह	सिरहिं
२१८	२१	गूढोत्त	गूढोत्तर
२२३	१७	पस्मैपद	परस्मै
,,	,,	आत्मनेन	आत्मने
,,	१८	यतु	यितुं
२३८	२	वाक्यां अंश	वाक्यांश
२४७	६	सुमैन	सुमैंन
२४९	२	निय १२	नियमा १२
,,	,,	ऽनि१३यम	ऽनियम १३
२५१	१५	यह विरुद्ध	यह कहिबौ विरुद्ध
२५५	१८	रैनि	रैन
२५६	११	हस	हँसि
,,	१८	घन	घिन

अवशिष्ट

पत्र	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
४२	२१	पार	पीर
१८२	४	यथा	पूर
१८५	१८	जनि	-जन
१९२	१२	तनक	तनिक
२०३	१८	पाइ	पाँय
२०८	९	सिद्धि	सिद्ध
"	८	वीछू	बीछी
"	"	छ्वै कि	छ्वैकि
"	"	वा छकौ	वा छकौ
२१२	१५	प्यारी	प्यारे
२१७	५	एक सै बरनौ	एक सौ बरनै
२२६	८	ताही	जाही
२४४	८	आन	पान
२४६	६	पाइ	पाँय
२४८	२	जीवन	जोवन
२६४	१६	किया	किधौं
२६९	१२	रसालं	रसालः

योजना, दृष्टि-दोष, मशीन तथा प्रूफ-संशोधन की असावधानी से रह गई इन अशुद्धियों को पाठक कृपया सुधार लें। सम्पादक

घ

च

थ

ल

व

ह

इति रसिकरसाल-पद्यानुक्रमणिका

पद्य-संख्या

प्रथम उल्लास	१५	सप्तम उल्लास	३६
द्वितीय उल्लास	३४	अष्टम उल्लास	३४८
तृतीय उल्लास	८१	नवम उल्लास	१७
चतुर्थ उल्लास	१३९	दशम उल्लास	११७
पञ्चम उल्लास	२३१	ग्रन्थ-पूर्ति	२
षष्ठ उल्लास	१२		१०३३

इतिश्री

पो० कवि कुमारमणि शास्त्रिविरचितः

रसिकरसालः सम्पूर्णः

मुद्रण सं० १९९४

पद्य-संख्या

प्रथम उल्लास	१५	सप्तम उल्लास	३६
द्वितीय उल्लास	३४	अष्टम उल्लास	३४८
तृतीय उल्लास	८१	नवम उल्लास	१७
चतुर्थ उल्लास	१३६	दशम उल्लास	११७
पञ्चम उल्लास	२३१	ग्रन्थ-पूर्ति	२
षष्ठ उल्लास	१३		१०३२

इतिश्री

प्रो० कवि कुमारमणि शास्त्रिविरचितः

रसिकरसालः सम्पूर्णः

मुद्रण सं० १९९४

श्री द्वा० ग्र० माला का दशम पुष्प,

रसिक-रसाल

सम्पादक

पो० कण्ठमणि शास्त्री विशारद

प्रकाशक

(श्री द्वारकेश कवि-मण्डल)

श्रीविद्या विभाग

कांकरोली

५०० प्रति } दशाब्दी महोत्सव सं० १९९४ { मूल्य २)